TEXT FLY WITHIN
THE BOOK ONLY

TEXT PROBLEM
WITHIN THE
BOOK ONLY

UNIVERSAL LIBRARY
OU_186697
UNIVERSAL LIBRARY

OUP—23—4-4-69—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H301.243 A27M Accession No. P.G. H3886

Author अग्रवाल, लालकृष्ण

Title मानव और मशीन.

This book should be returned on or before the date last marked below.

मानव और मशीन

(MAN AND MACHINE)

प्रथम खण्ड

ले० लाल कृष्ण अग्रवाल

—"मानव और मशीन में भेद केवल इतना ही है कि, मानव चैतन्य है और मशीन जड़। मानव के स्थूल शरीर यन्त्र में सुख दुःख का अनुभव करने वाली आत्मा का निवास है, जब कि मशीन इससे शून्य व चेतना रहित है।"

—लेखक

प्रकाशक
एल० के० अग्रवाल
A2/88A त्रिलोचन, बनारस

मूल्य २॥)
(ALL RIGHTS RESERVED BY THE PUBLISHER)

मुद्रक
आर० एस० धवन
कमर्शियल प्रिंटिंग वर्क्स,
गायघाट, बनारस।

श्री राम

चेतन हूँ मैं

झुका सकेगा मुझे कभी तू ? कर्त्ता का केतन हूँ मैं,
मरण ! नित्य नव-जीवन हूँ मैं, तू जड़ है, चेतन हूँ मैं।

मेरे पीछे लाख पड़ा रह, आगे आ न सकेगा तू,
रोया कर जी चाहे जितना, मुझसा गा न सकेगा तू,
छद्म रुप धारण कर जा तो भी भव को भा न सकेगा तू,
सड़ा गला भी कभी पेट भर दुर्भर, पा न सकेगा तू।

रह रुखा सूखा उजड़ा तू, हरा भरा उपवन हूँ मैं,
मरण, नित्य नव जीवन हूँ मैं, तू जड़ है चेतन हूँ मैं।

नये नये पट परिवर्तन कर, प्रकट नाट्य शाला मेरी,
वंचित ही उस स्वर लहरी के रस से रसनाएँ तेरी।
फणि, कोई मणि है तो वह भी चोरी की ही हथ फेरी,
सरक वहीं तू, जहाँ नरक से कूड़े घूड़े की ढेरी।

देख दूर से क्रूर रोग तू, योग सिद्ध धन जन हूँ मैं,
मरण, नित्य नव जीवन हूँ मैं, तू जड़ है चेतन हूँ मैं।

मैथिली शरण

(नवनीत, हिंदी डाइजेस्ट, नवम्बर, १९५३, पृ० ४१)

उपपातक – "सर्वाकरेष्वधी कारो—
महा यंत्र-प्रवर्त्तनम् ।"
—भगवान मनु

भावार्थ :—एक आदमी का सब खानों पर अपना इजारा कर लेना और एक आदमी का बहुत बड़े-बड़े कल-कारखाने बनाना, यह दोनों उपपातक अर्थात गिराने वालों में से हैं ।

(खद्दर का सम्पत्ति शास्त्र, ले० रिचार्ड बी० ग्रेग, अनु० श्री रामदास गौड़, पृ० २६५)

"सम्पत्ति का अर्जन करने के बाद तुम बराबर बराबर बाट नहीं सकते। इस बात पर मनुष्यों को राजी करने में तुम सफल नहीं हो सकते। परन्तु तुम सम्पत्ति इस तरह पैदा कर सकते हो कि, पैदा करने के पहले ही बराबर की बाँट सुनिश्चित हो जाय। यही खादी है।"
—श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

(खद्दर का सम्पत्ति शास्त्र, ले० रिचार्ड बी० ग्रेग, अनु० श्री रामदास गौड़, पृ० १०४)

किंचित—

दुर्बलताओं पर विजय पाने के लिए मानव उठता है। उसे संघर्ष करना पड़ता है। प्रकृति और मानव संघर्ष का परिणाम, बन जाती है संस्कृति एवं सभ्यता।

रक्षा निमित्त मानव कुछ सिद्धान्त स्थिर करता है। तत्व ज्ञान का आश्रय लेता है। तत्व ज्ञान के प्रकाश में 'दर्शन' का उसे दर्शन होता है। प्रज्ञा मुसकराती है शान्ति निमित्त उसके मस्तक पर वरद् हस्त रखती है। लोग कहते हैं, मनुष्य आत्म-दर्शन करता है। दर्शन कागजों पर फैल जाते हैं।

अपना अन्तिम अध्याय मानव स्मशानों एवं कब्रों में बन्द होता देखता है। नग्न सचाई सामने नाच उठती है। नैराश्य का गम्भीर वातावरण फैल जाता है। वह विरक्त हो उठता है। धर्म हँसकर उसका दामन पकड़ लेता है, उसमें आशा की हल्की लहर हिलोरें ले उठती है।

एक चीज़ और है। मानव के साथ उसका न भरने वाला पेट है। उसके साथ यह डोलने फिरने वाला मांस पिण्डमय शरीर यन्त्र है। इञ्जन के कोयले पानी की तरह उसे अन्न एवं जल चाहिए वह इस भयंकर क्षुधा के साथ पैदा होता है। मरता है। क्षुधा शान्ति निमित्त मांस-मज्जा अस्थिमय प्राणियों की हत्या करता है। प्राणी भक्षी मनुष्य संहारशील होता है! उसकी दुर्वा, अन्दर बैठी, हिंसक प्रवृत्ति जाग उठती है। वह अपने सुख के लिए अपने ही जैसे जीवों से संघर्ष मोल लेता है। इतिहास की रचना होने लगती है। हम एक को फूलों सी सजाने और दूसरे को भूलने लगते हैं।

तृप्त न होकर मानव भौतिक साधनों का आश्रय लेता है। भौतिक साधन उसकी तृप्ति निमित्त अभियान करते हैं। किन्तु उनका अभियान

नदी की धारा के समान है, जो अपने तटों के प्यास को बुझाने में कभी सफल नहीं होती। अनवरत आर्द्र रहने पर भी कूल धारा की जीवन-श्री सोखते तृप्त नहीं होते। इस प्यास से मानव भी परेशान होता है। वह प्यास के शाश्वत तृप्ति निमित्त खोज करता है। उसका अन्वेषण विकसित होता जाता है। वह भौतिक साधनों पर अधिकार प्राप्त करता है। प्रकृति पर शासन करना चाहता है। प्राकृतिक साधनों को उपयोगी बनाता है। सुलभ बनाता है। किन्तु प्यास बढ़ती जाती है। साधन बढ़ते जाते हैं। वह भौतिक साधनों को भौतिक साधनों से ही संघर्ष कराकर अपना काम निकालता है। लोहा लोहे को काटता है। अग्नि, अग्नि को शान्त करती है। जल अग्नि पैदा करता है। इन साधनों का नाम प्रसन्नता पूर्वक लोगों ने रखा मशीन। **भगवान की बनाई मानव मशीन और मानव की बनाई जड़ मशीन का संघर्ष इस पुस्तक का प्रतिपाद्य विषय है।**

जड़ सृजन करेगी जड़ता। मानव पैदा करता है, अपने जैसा हँसता खेलता चेतनामय मनुष्य काया। जड़ चेतन का द्वन्द्व दर्शन का विषय है। किन्तु यह पुस्तक न जड़वादी है, न चेतन। इसमें मध्यम मार्ग अपनाया गया है। दूसरे शब्दों में भगवान बुद्ध की वाणी में, दो प्रतिकूल भावनाओं के मध्यम का मार्ग है। बीच का रास्ता है। भगवान की वाणी ने बहुजन सुखाय शब्दका प्रयोग किया है। सबका उपकार, सबका भला नहीं हो सकता है। जिसमें बहुजन का भला हो वही सुन्दर मार्ग है। पुस्तक में इसी बहुजन सुखाय के निमित्त कुछ विचार वीथियों का सृजन किया गया है।

युवक लेखक श्री लालकृष्ण अग्रवाल आयु की सीमा के कारण युवक हैं। उनमें प्रौढ़ पाठक प्रौढ़ता का अभाव पा सकते हैं। किन्तु वह स्वाभाविक है। आज का युवक कल का प्रौढ़ है। यह विकास क्रम

श्लाघ्य है। युवक लेखक सम्भ्रान्त कुलीन वंश परम्परा की एक कड़ी होने पर भी प्रज्ञा का वरण किया है, यह स्वयं बड़ी चीज है। आज हमें इसी की अपेक्षा है। स्वतन्त्र विचार प्रकट करना स्वतः देश की सेवा एवं लोकतन्त्र की मेरुदण्ड है।

पुस्तक एवं लेख केवल विचारधारा है। धारा का गुण अवगुण, धारा में स्नान करने से ही अनुभव होता है। पुस्तक के पृष्ठों एवं पंक्तियों में विचरण करने के पश्चात् पाठक अनुभव करेंगे कि उनका परिश्रम व्यर्थ नहीं गया है। वे यह भी शायद अनुभव करेंगे—सस्ते उपन्यास के समान पृष्ठों को एक बार उलटने के पश्चात् इन पन्नों की उपयोगिता नष्ट नहीं हुई है। यह पुस्तक अलमारी की शोभा की अपेक्षा मस्तिष्क की शोभा बढ़ाने में, मैं समझता हूँ, अधिक समर्थ होगी।

औरंगाबाद }
काशी }

श्री रघुनाथ सिंह
(M. P.)

विषय-सूची

१.	विषमता	१
२.	जब मशीनें न थीं	११
३.	मशीनों का पदार्पण	२६
४.	वर्तमान में मशीनों का प्रभाव	४५
५	मशीनों की पूर्णावस्था	६१
६.	प्रजातन्त्र बनाम...	८४
७.	साम्यवाद	१०७
८.	आदर्श-व्यवस्था	१४६
९.	मशीन और जनसंख्या वृद्धि	१७१
१०.	भारत का महत्व विशेष	१९४
११.	महात्मा गांधी के आर्थिक सिद्धान्त	२२९
१२.	आँकड़े और अंकगणित	२६८
	उपसंहार	३१७

कवर–शिल्प : लाल कृष्ण अग्रवाल

१

विषमता

आज संसार की दशा यद्यपि कई अर्थों में पहले से अच्छी है, लेकिन अभी पूरा सुधार नहीं हुआ है। मानव स्वभाव कुछ विचित्र है। जहां एक ओर वह अध्यात्मवाद का पण्डित बन बैठता है, वहीं दूसरी ओर वह बर्बर, जंगली व निर्दयी भी बन जाता है। एक ओर तो मानव सौहार्द, त्याग व प्रेम का परिचय देता हुआ इस सिद्धान्त की पुष्टि करता है कि 'जो मैं हूँ सो वह भी है,' वहीं दूसरी ओर इन सभी गुणों को त्यागकर वह हिंसा, स्वार्थ, द्वेष व घृणा का वातावरण उत्पन्न कर देता है। वह अपने ही बन्धु-बान्धव का घातक व शोषक हो जाता है। इन सभी विषमताओं को आत्मा का गुण कहा जा सकता है, यद्यपि वास्तव में ऐसा है नहीं, क्योंकि आत्मा तो निर्गुण, नित्य व शाश्वत है। इन दोनों में से जिस तरफ भी वह अपना मुँह मोड़ लेता है, ठीक वैसा ही वह अपनी पूरी शक्ति से बन जाता है। जिस समय वह परमार्थ, धर्म, सत्य व अहिंसा तथा आस्तिकता पर उतर आता है, उस समय वह अपने जीवन का लाभ उठाता है। वह एक सत्य जीवन की ओर अग्रसर करता है, जो उसे हर कदम पर ईश्वर के निकट पहुँचाता है।

इसके विपरीत, उसके सांसारिक प्राणी बन जाने पर या तो आस्तिकता का ढोंग रचकर भी वह नास्तिक ही रहता है या फिर खुले तौर से वह अपने को नास्तिक घोषित कर देता है।

धर्म, ईश्वर, सृष्टि और मनोविज्ञान आदि के संबंध में फेरियर के विचार बड़ेही विलक्षण थे। विचारों के अनुसार उन्होंने सिद्धान्त स्थिर किया था कि समाज की वर्तमान अशान्ति उसी समय मिट सकती है जब कि लोग वर्तमान सभ्यता को साष्टाँग प्रणाम करके उससे अपना पीछा छुड़ा लें और समाज की व्यवस्था इस प्रकार की हो जाय, जिसमें मानव-प्रकृति को ईश्वरेच्छा के अनुकूल रहकर अपना काम करने का पूरा पूरा अवसर मिले। (साम्यवाद, ले० बाबू रामचन्द्र वर्मा, पृ० ४१)

वह व्यक्ति जो आस्तिकता का ढोंग रचे रहते हैं, अपनी नास्तिकता को आस्तिकता का जामा पहना कर, केवल परम्परा-गत व्यवहारों व उत्सवों को मनाते हैं। वास्तव में उनमें धर्म की भावना नहीं रहती। आत्मिक ज्ञान उनमें नहीं होता। उनकी ढोंगी आस्तिकता भी सांसारिक स्वार्थों को ही दृष्टि में रखकर होती है। वह कोई मोक्ष नहीं चाहते। उन्हें परमार्थ नहीं चाहिए। उनको तो चाहिए क्षणिक सांसारिक सुख व भोग तथा इच्छा पूर्ति। यही कारण है प्रत्येक व्यक्ति स्वार्थमय भावनाओं से ओत-प्रोत हो उठता है। मुक्ति मार्ग से निवृत्त, सांसारिक भोगों में पड़ा मानव, धर्म की आड़ में खड़ा होकर, दूसरों का शोषण कर अपना भोग-विलास व स्वार्थ साधन करता है। उसके धर्म का ढोंग और दूसरों की अन्ध विश्वासिता के अन्दर उसकी सारी पिशाचिता व स्वार्थता छिप जाती है।

'धर्म जनता की अफीम है'—

कार्ल मार्क्स।

संसार दो समाजों में बटा हुआ है—शोषक और शोषित, भोग प्रधान व पीड़ित। एक समाज शोपक कैसे बन गया ? क्या कारण है जो कुछ व्यक्तियों का समाज एक ओर इतना धनवान हो गया और दूसरी ओर दूसरा समाज इतना गरीब व कंगाल रहा ? इतनी विषमता का कारण क्या है ?

यह सवाल करके आपने मेरे घाव को हरा कर दिया है। श्री रमेश-चन्द्रदत्त का लिखा हुआ 'हिन्दुस्तान का आर्थिक इतिहास' पढ़कर मुझे रुलाई आ गई थी। अब भी जब उसका ख्याल करता हूँ तो मेरा जी भर आता है। इन कल-कारखानों की बाढ़ ने ही तो हिन्दुस्तान को चौपट किया है। मानचेस्टर ने हमें जो नुकसान पहुँचाया उसकी तो कोई हद ही नहीं है। हिन्दुस्तान की कारीगरी जो लगभग नष्ट ही हो गई, वह मानचेस्टर की करतूत है।

—महात्मा गाँधी (यंत्रों की मर्यादा, पृ० १)

मशीनों ने विषमता की वृद्धि में चार चाँद लगा दिया है। मशीनों के रूप में शोषण करने का एक भीषण तरीका ईजाद किया गया है। विषमता अपनी चरम सीमा पर पहुँच रही है। एक व्यक्ति वस्त्रहीन, अन्न रहित व बिना गृह के पशुवत् जीवन व्यतीत करता है और दूसरा एशो आराम में ही भूला, फूलों की सेज पर भी उसे अच्छी तरह निद्रा नहीं आती।

आज से हजार आठ सौ बरस पहले संसार में जो विषमता थी वह आजकल की विषमता का पासंग भी न थी। वर्तमान विषमता की सृष्टि तो इधर ही कुछ शताब्दियों से, योरप में बड़े-बड़े कारखाने की स्थापना के समय से हुई है, और अब ये कारखाने सारे संसार में फैलकर दिन पर दिन विषमता की वृद्धि करते जा रहे हैं।

(साम्यवाद, ले० बाबू रामचन्द्र वर्मा, पृ० २)

'राजा भोज और कहाँ गंगू तेली' के विषमता की यह कहा-

वत प्रसिद्ध है। यह विषमता प्राचीन काल की थी। उस जमाने में मनुष्य ने मशीनों को कोई प्रोत्साहन नहीं दिया था। वह जानते थे शायद कि मशीनें उनकी वर्तमान विषमता को और भी बढ़ाकर तबाही उत्पन्न कर देंगी। कला व साहित्य के प्रेमी प्राचीन नर-नारी, मशीनों से उदासीन रहने में ही अपना सौभाग्य समझते थे। राजा भोज और गंगू तेली एक दूसरे से कितनी ही बातों में विषमता रखते हुए भी पूर्ण सुखी, सन्तुष्ट व सम्पन्न थे।

जिन सब कारणों से किसी समाज की उन्नति रुकती अथवा अवनति होती है, उन सब कारणों में अप्राकृतिक विषमता की अधिकता ही प्रधान कारण है। (साम्यवाद, ले० बाबू रामचन्द्र वर्मा, पृ० ६)

आज की विषमता अप्राकृतिक है। धनिकों का धन शुद्ध वाणिज्य का भी नहीं है। वर्तमान काल के पूँजी-पतियों को भगवान धन छप्पर फाड़कर देता है। आधुनिक पूँजी-पतियों के महल तो विशाल व पक्के बने होते हैं। छप्पर फाड़ी जाती है तो उन असहाय, गरीब, बेबस, दुखियों की, जिसमें से पैसा-पैसा चूस लिया जाता है। समस्त किसान, मजदूर, व मध्यम वर्गीय जनता शोषितों की ही श्रेणी में आते हैं। इसलिए जनता के अधिकांश भाग का पैसा, धन, खिंचता हुआ पूँजी-पतियों, कारखानेदारों की तिजोरियों में जाता रहता है। जनता कंगाल होती जाती है और विषमता बढ़ती रहती है। पूजी का केन्द्रीकरण होता चलता है और जनता को पैसे के अभाव में फाकेकशी करनी पड़ती है।

बहुतों को शोषण कर थोड़े से लोगों के हाथों में धन और सत्ता को केन्द्रित करने के लिए यन्त्रों का उपयोग किया जाय, यह मेरी नजरों में तो सरासर अन्याय और पाप है। आजकल यन्त्रों का उपयोग ठीक

इसी प्रकार हो रहा है। केवल धनिकों के लाभ के लिए ही नहीं बल्कि समस्त जनता के हितार्थ यन्त्रों का उपयोग हो और इस दृष्टि से उसकी कुछ मर्यादा कर दी जाय। यही वर्तमान चरखा वादी आन्दोलन का प्रयास है। —महात्मा गाँधी (यन्त्रों की मर्यादा पृ० ११)

संसार की सृष्टि तभी चलती है जब समुद्र का सोखा हुआ पानी वापस समुद्र में सभी प्रकारों से पहुँच जाता है। सृष्टि तभी चलती है जब हवा की नाइट्रोजन व बनस्पति प्राणियों की कार्बन, उनको बराबर चक्कर में मिला करती है। प्रत्येक वस्तु का चक्कर पूरा होना अनिवार्य है। उत्पादक को लाभ तभी होता है जब उसके माल के उपभोक्ता होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी अपनी आवश्यकता होती है। अर्थ के लिए उसे उचित श्रम व पुरस्कार मिलना चाहिए। लेकिन यदि समस्त श्रम कुछ थोड़े से व्यक्तियों द्वारा, किसी वस्तु विशेष की सहायता लेकर कर लिया जाय, तो फिर श्रम शेष ही नहीं रह जाता। अन्य व्यक्तियों को तब निठल्ले बने बैठे रहना पड़ता है। श्रम की कमी से पुरस्कार की कमी, और इस तरह अर्थ की कमी पड़ जाती है।

प्रायः हर आदमी को किसी न किसी चीज के लिए औरों पर जरूर अवलंब करना पड़ता है, क्योंकि मनुष्य को संसार में रहकर इतनी व्यवहारिक चीजें दरकार होती हैं कि वह उन सबको नहीं पैदा कर सकता। जो जुलाहा कपड़े तैयार करता है वह अपने मतलब भर के लिए कपड़े रखकर बाकी के बदले निमक, तेल, लकड़ी और अनाज आदि का संग्रह करता है। जो किसान गेहूँ, चना, जौ आदि पैदा करता है वह अपने खेत की पैदावार के बदले हल, फाल, नमक, तेल मिर्च, मसाला और कपड़े प्राप्त करता है। इसी तरह हर आदमी को व्यवहारिक चीजों का अभाव दूर करने के लिए परस्पर एक दूसरे की सहायता दर-

कार होती है-- एक दूसरे को अपनी चीज़ों का विनिमय अर्थात् बदला करना पड़ता है। इन्हीं विनिमय साध्य वस्तुओं का नाम सम्पत्ति है।

(सम्पत्ति शास्त्र, ले० श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी, पृ० १०)

श्रम वह चीज़ है जिससे खाने पीने और पहनने की व्यवहारिक चीजें मनुष्य के लिए सुलभ हो जाती हैं। आबादी बढ़ती है और साथ ही सम्पत्ति की भी वृद्धि होती है।

(सम्पत्ति शास्त्र, ले० श्री महाबीर प्रसाद द्विवेदी, पृ० २८)

उद्योग धन्धों का ही तो नाम श्रम है। छोटे-छोटे मनुष्यों के उद्यमों व उद्योगों को बड़ी बड़ी मशीनें और कारखानें हजम कर जाते हैं। सारा लाभ या परवरिश के योग्य पुरस्कार, जो सर्वसाधारण को उनके गृह उद्योगों से मिलता था, वह अब सब मशीन मालिकों या कारखानें दारों को ही मिलने लगा। एक ओर तो पूँजी का केन्द्री करण होकर, सभ्यता की द्योतक वह हो गई, दूसरी ओर अधिकांश जनता पैसा रहित होकर असभ्य कहलाने लगी। सर्व-साधारण जो अभी तक अपनी आवश्यकता अपने ही में आपसी लेन देन से पूरा कर लेता था, अब अपनी अर्थ व्यवस्था को लँगड़ा कर बैठा। रुपए का चक्कर जो अभी तक पूर्ण संतुलित रूप से इन व्यक्तियों के बीच में ही होता था, वह अब समाप्त हो गया। अब एक तीसरी ही शक्ति पैदा हो गई जिसने अपनी तड़क-भड़क दिखाकर लोगों को आकर्षित कर लिया। यह तीसरी शक्ति वह कारखानेदार ही था जो मशीन की मदद लेकर आया था। लोग पैसा कारखानें दारों को देते तो चले गए, लेकिन उसे पैदा न कर सके। यही कारण था कि इन सर्व-साधारण में कंगाली आती गई और विषमता बढ़ती गई।

दरिद्रता का मुख्य कारण यह है कि मजदूरों और कारीगरों को

मशीनों के काम का मुकाबला करना पड़ता है। इसलिए यह दरिद्रता तभी दूर हो सकती है जब सब लोग मिलकर काम करें और मशीनों को प्रधानता न दी जाय। (साम्यवाद, ले० बाबू रामचन्द्र वर्मा पृ० ५८)

यानी यदि हम मशीनों के बनाए माल का सामुहिक रूप से वहिष्कार करें और पहले की भाँति फिर से अपने-अपने उद्यम चालू कर एक दूसरे की आवश्यकता पूरी करने लगें तो हमारी दरिद्रता समाप्त हो जायगी। फिर से आर्थिक सन्तुलन कायम हो जायगा और रुपया अपना चक्कर सभी के बीच में समान रुप से करने लग जायगा। कारखाने-दारी की व्यवस्था तब स्वतः समाप्त हो जायगी और हमारे कष्टों का अन्त हो जायगा!

कारखानेदारी की व्यवस्था में कच्चे माल के उत्पादक किसानों और थोड़े से मजदूरों की ही परवरिश होती है। समय समय पर किसानों के माल का दर घटा दिया जाता है, साथ ही मजदूरों की काफी बड़ी संख्या काम से छुड़ा दी जाती है, जिससे दोनों वर्गों पर भी प्रहार होता रहता है। मजदूर बिचारा तो भूखों मरने की तैयारी करने लगता है। आर्थिक घोर विषमता व जनता की दरिद्रता के कारण, जनता मशीनों द्वारा बनाए माल को खरीद नहीं सकती, जिससे कारखानेदार के माल की बिक्री कम हो जाती है और माल गोदामों में जमा होने लगता है। कल कारखाने बन्द कर दिए जाते हैं। मजदूरों को छुट्टी दे दी जाती है और किसानों से कच्चा माल खरीदना बन्द कर दिया जाता है। मशीनों के व्यवहार से समस्त मानव जाति पर संकट आ जाता है। कारखानेदार भी इससे अछूता नहीं रह सकता।

ज्यों-ज्यों पूँजीदारी की प्रथा बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों मशीनों में भी 'अनेक प्रकार के सुधार होते जाते हैं और उनमें पूर्णता आती जाती है।

क्योंकि पूँजीदार यदि अपनी मशीनों में सुधार और उन्नति न करें तो वे दूसरों के सामने प्रतियोगिता में ठहर नहीं सकते। उधर ज्यों-ज्यों मशीनों में सुधार होता जाता है, त्यों-त्यों इधर श्रम और श्रमजीवियों की आवश्यकता घटती जाती है। जिसका फल यह होता है कि श्रमजीवी बेकार हो जाते हैं और उनके भूखों मरने की नौबत आ जाती है।

(साम्यवाद लेे० बाबू रामचन्द्र वर्मा, पृ० ११८)

ज्यों-ज्यों मशीनों में उन्नति होती जाती है, त्यों त्यों माल भी बहुत अधिक तैयार होता जाता है और बाजार की माँग से बढ़ जाता है। जो माल तैयार होता है उसका बाजार की माँग से अधिक होना बहुत ही स्वाभाविक और अनिवार्य है। इसका कारण है। माल की बिक्री तो समाज में ही होती है पर हम समाज में ऐसे लोगों की संख्या बराबर बढ़ाते जाते हैं, जिन्हें केवल उतनी ही मजदूरी मिलती है जितने में कठिनता से उनका उदर पोषण हो सके और जहाँ समाज में अधिकांश संख्या ऐसे ही आदमियों की हो जिन्हें केवल पेट भर भोजन मिलता है और जो दूसरी फालतू चीज खरीदने में नितान्त असमर्थ हो वहाँ तरह-तरह के तैयार माल की बिक्री क्या होगी? पूँजीदारी की प्रथा में यह एक दूसरा विलक्षण विरोध है कि जहाँ एक ओर वह बाजार की माँग को कम करती है वहाँ दूसरी ओर वह उसी माँग को अच्छे और बुरे सभी उपायों से बढ़ाने के लिए तैयार रहती है। इसका परिणाम यह होता है कि गोदाम के गोदाम ऐसे तैयार माल से भर जाते हैं जिन्हें बाजार में कोई पूछता भी नहीं। माल तो बिकता नहीं और व्यापारिक संसार में हाहाकार मच जाता है। एक वर्ग घोर दरिद्रता में कष्ट भोगे और दूसरे वर्ग में बहुत अधिक धन रहने पर भी हाहाकार मचे।

(साम्यवाद, ले० बाबू रामचन्द्र वर्मा, पृ० १९)

ऐसी आन्तरिक दुरावस्था में विदेशी बाजारों की खोज जोर-शोर से शुरू की जाती है। माल की बिक्री, मशीनों के

चालू रहने और मजदूरों की परवरिश के लिए अन्य विदेशियों से टक्कर लेनी पड़ती है। इस विदेशी व्यापार की आपसी प्रतिस्पर्धा भिन्न-भिन्न औद्योगिक देशों में कटुता को बढ़ा देती है। अपने देश का माल बेचना अनिवार्य और बेहद जरूरी होता है, इसलिए अपने सारे आदर्शों को भी ताक पर अलग रख देना पड़ता है। कमर कस कर फिर इस नए देश को भी मैदान में आना पड़ता है। साम्राज्यवादी नीति अख्तियार की जाती है। बाजारों पर कब्जा करने की कोशिश होती है। समस्त संसार एक बार युद्धाग्नि में जल उठता है। मशीनों के अभिशाप से समस्त मानवता कराह उठती है। यह मशीनें ही युद्धकाल में मानव को दाँत पीस-पीस कर कुचल डालती हैं।

पूँजीवाद ने लाजिमी तौर पर एक नए साम्राज्यवाद को जन्म दिया, क्योंकि हर जगह माल तैयार करने के लिए कच्चे माल और तैयार माल को खपाने के लिए मंडियों की माँग बढ़ने लगी। मंडियों और कच्चा माल प्राप्त करने का सबसे आसान तरीका यही था कि उस देश पर कब्जा कर लिया जाय बस, ज्यादा शक्तिशाली देशों में आपस में नए उपनिवेशों के लिए बड़ी जबर्दस्त छीना-झपटी होने लगी। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्रीजवाहरलाल नेहरू, पृ० ५०२ प्रथम खण्ड)

आजकल की साम्राज्यवादी कौमें भी मैकियावेली के राजा की तरह ही बर्ताव करती हैं। सदाचार के आडम्बर के नीचे लालच, बेइमानी और सिद्धान्त-हीनता छिपी रहती है। सभ्यता के मुलायम दस्ताने में हैवान का खूनी पंजा छिपा रहता है। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहरलाल नेहरू, पृ० ४०० प्रथम खण्ड)

लोगों के काम को हल्का करने के बजाय मशीनों ने अक्सर उनकी जिन्दगी को पहले से भी ज्यादा बुरा बना दिया है। लाखों आदमियों को आराम और सुख पहुँचाने के बजाय, जैसा कि असल में उसे करना

चाहिए था, उसने बहुतों को उल्टे मुसीबत में डाल दिया है। सरकारों के हाथ में उसने इतनी ज्यादा ताकत दे दी है कि वे अपने युद्धों में लाखों को कत्ल कर सकती हैं। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० १६१ प्रथम खण्ड)

हिन्दुस्तान में उद्योग अगर केवल यंत्रों की सहायता से चलाने हैं तो इसके परिणाम में किसी न किसी प्रकार हिंसा आए बगैर नहीं रहेगी।

महात्मा गाँधी (यन्त्रों की मर्यादा, पृ० १८)

हमें अपना माल खपाने के लिए दूसरे देशों में बाजार ढूढ़ने होंगे, और उन बाजारों को कायम रखने के लिए नादिरशाही चलानी होगी। जापान, इङ्गलैंड, अमेरिका रूस, इटली की जल-सेना और स्थल सेना को खतम कर सके, इतनी बड़ी - अर्थात् इनसे दूनी फौज हमें खड़ी करनी पड़ेगी और उसके बल पर सारा कारोबार टिकाए रखना पड़ेगा। नहीं ! हमसे यह न होगा। मैं तो मानता हूँ कि यह युग मनुष्यों को यन्त्र बनाने जा रहा है। पर जो यन्त्रवत् हो गए हैं उनको मैं पुनः मनुष्य बनाना चाहता हूँ।

- महात्मा गाँधी (यन्त्रों की मर्यादा, पृ० २२)

सुव्यवस्थित रूप से सारे कामों को चलाने के लिए य अनिवार्य है कि सभी व्यक्तियों का उचित श्रम व पुरस्कार मिले। यदि ऐसा नहीं होगा तो समाज, देश व विश्व की अर्थ-व्यवस्था अवश्य लँगड़ी हो जायगी। घोर असंतोष, अव्यवस्था तथा हाहाकार सभी ओर फैल जायगा। पीड़ितों के चित्कार से सारा विश्व गूंज उठेगा। सुख की नींद सोने वाले भी तब सो नहीं सकेंगे।

२

जब मशीनें न थीं

कहा जाता है कितने ही हजार वर्ष ईसा से पूर्व भी मानव का पूर्ण विकास व सभ्यता पाई जाती थी। उस पुरातन काल में मशीनों का अभाव था, यद्यपि अपनी उपभोग सामग्रियों को बनाने की उन्हें पूर्ण जानकारी थी और विलासिता के साथ-साथ पूर्ण सम्पन्नता का जीवन व्यतीत करते थे। निश्चय ही पुरातन काल के सभ्य मानव बहुत ही भाग्यशाली थे, जो उनके लम्बे युग में मशीनों ने उनके आर्थिक सन्तुलन को अस्त व्यस्त नहीं किया और भयानक कष्टों से बचा लिया। मशीनों के अभावके कारण उनकी शक्ति, उनका चरित्र व उनकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता सदा से कायम रही। अपनी भावी शक्ति, चरित्र व स्वतन्त्रता की भावना के लिए हमें बहुत ही पुराने पूर्वजों का कृतज्ञ होना चाहिए, जिनसे हमें यह सभी गुण पैतृक सम्पत्ति के रूप में मिलते चले आए हैं।

भारतीय सभ्यता और संस्कृति के, जो इतिहास के उदय-काल से लेकर लम्बे-लम्बे युगों को पार करती हुई वर्तमान युग तक चली आई है, इस विस्तृत व विस्तार और सिलसिले का ख्याल तक दिलचस्प और आश्चर्यजनक है। एक अर्थ में हम लोग हिंन्दुस्तान के इन हजारो बरसों

के उत्तराधिकारी है। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० २५ प्रथम खण्ड)

असल में जो चीज महत्व की है वह तो है किसी जाति के मानसिक विकास का इतिहास और यही वह चीज है जिसमें मौजूदा योरप को बहुत-सी बातों में पुरानी यूनानी सभ्यता का बच्चा बना दिया है। (विश्व-इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ७० प्रथम खण्ड)

मोहन-जोदारो को लोग कम से कम ५००० वर्ष पुराना मानते हैं। फिर भी हमें पता चलता है कि मोहन-जोदारो एक सुन्दर शहर था। सभ्य और शिष्ट लोग यहाँ रहते थे। इसके पहले विकास का एक लम्बा युग जरूर गुजरा होगा। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० २६८ प्रथम खण्ड)

अगर मुख्य-मुख्य बातों का ही जिक्र किया जाय तो पहली चीज यह मालूम होती है कि रूई के कपड़ों का व्यवहार इस युग में केवल भारत तक ही परमित था। पश्चिमी जगत में रूई के कपड़ों का प्रचार इसके दो-तीन हजार वर्ष बाद हुआ, इसके अलावा इतिहास काल के पहले मिश्र, ईराक या पश्चिमी एशिया के किसी भी भाग में हमें कोई ऐसी चीज नहीं मिलती जो मोहन-जोदारों के नागरिकों के रहने के बड़े-बड़े मकानों और सुन्दर बने हुए स्नानागारों की बराबरी कर सके। उन देशों में देवताओं के विशाल मन्दिरों तथा राजाओं के महलों और कब्रों के बनाने में बेशुमार धन और बुद्धि खर्च की जाती थी, लेकिन बाकी जनता को मिट्टी की मामूली झोपड़ियों पर ही सन्तोष करना पड़ता था। लेकिन सिन्ध घाटी में हमें इसका उल्टा दृश्य मिलता है और यहाँ पर सबसे अच्छे मकान वे होते थे जो नागरिकों के आराम के लिए बनाए गए थे। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० २६९ प्रथम खण्ड)

प्रजातन्त्र की शासन पद्धति बहुत ही प्राचीन काल से चली आती रही है। मानों प्रजातन्त्र ही मानव की स्वाभाविक व प्राकृतिक शासकीय पद्धति हो। जब मशीनें न थीं मनुष्य को पूर्ण व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा प्रचार, लेखन, विचार, व भाषण आदि सभी स्वतन्त्रता प्राप्त थी। आपसी सद्भाव व भाईचारे का प्रधानता दी जाती थी। विशाल राज्यछत्र के नीचे छोटे-छोटे गाँव या नगर पूर्ण प्रजातन्त्र हुआ करते थे और स्वतन्त्रतापूर्वक अपने-अपने निजीहितों की रक्षा किया करते थे। केन्द्रीय शासन की छत्रछाया में यह सभी स्वतन्त्र गावों या नगरों को आपसी व्यापार की पूर्ण स्वतन्त्रता रही होगी। यही कारण है प्राचीन काल में तिजारत दूर-दूर के देशों से भी की जाती थी और उनमें प्रतिस्पर्धा या कटुता बहुत कम होती थी।

यूनान के बारे में एक बात बड़ी दिलचस्प है। वह यह कि जैसा ऊपरी तौर से देखने पर मालूम होता है यूनानी लोग बड़ी बड़ी सल्तनतें या बड़े-बड़े साम्राज्य पसन्द नहीं करते थे। उन्हें छोटे छोटे नगर-राज्य पसन्द थे। इसका मतलब यह हुआ कि उनका हर एक शहर एक स्वतन्त्र राज्य हुआ करता था। ये राज्य छोटे छोटे प्रजातन्त्र होते थे। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नहरू, पृ० ३० प्रथम खण्ड)

हिन्दुस्तान में भी···पुराने जमाने में यूनान नगर-राज्यों की तरह छोटे-छोटे राज्य हुआ करते थे। लेकिन वे बहुत दिनों तक कायम नहीं रहे और बड़े राज्यों में समा गए। इस पर भी बहुत समय तक, हमारे गावों की पंचायतों के हाथों में बहुत बड़ी ताकत बनी रही। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ३१ प्रथम खण्ड)

यही वह जगह है (पुराने जमाने का मध्य एशिया) जहाँ पुराने जमाने में बड़े-बड़े शक्तिशाली शहर थे। खूब आबाद, घने बसे हुए

और माला-माल. जिनकी तुलना आजकल की योरपीय राजधानियों से की जा सकती है और जो आजकल के कलकत्ते और बम्बई से कहीं बड़े थे। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ३३ प्रथम खण्ड)

पुराने जमाने में हिन्दुस्तान में विचार और प्रचार की कितनी स्वतन्त्रता मिली हुई थी। यह अधिकार योरप में अभी हाल के जमाने तक लोगों को नहीं मिला था और आज भी इस सम्बन्ध में अनेक बन्दिशें पाई जाती हैं। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० १८६ प्रथम खण्ड)

केन्द्रीय राज्य भी प्रजातन्त्र ही हुआ करते थे। राजा जनता के पूर्ण नियंत्रण में रहता था। जनता जब भी चाहती उसे राज्यसिंहासन से उतार सकती थी। समस्त साम्राज्य में अमन-चैन रहा करता था और सभी नागरिक या देशवासी पूर्ण राजनैतिक स्वतन्त्रता के साथ साथ आर्थिक दृष्टि से भी पूर्ण स्वतन्त्र थे। सभी व्यक्ति अपना-अपना पेशा करते थे। एक दूसरे की आवश्यकता पूर्ति करते हुए, आपसी सहयोग पर आधारित उनका सामाजिक जीवन सभ्यता की चोटी तक पहुँच गया था। प्राचीन काल में कम से कम आज की भाँति तो उनको आर्थिक कष्ट, व चिन्ता तथा प्रतियोगिता न करनी पड़ती थी। सभी व्यक्तियों को पूर्ण श्रम व उचित पुरस्कार हमेशा बहुतायत से प्राप्त होता रहता था। सभी व्यक्ति खुशहाल थे। विषमता अपने सीमित क्षेत्र में ही थी। सभी को समान सुख, भोग की सामग्रियाँ प्राप्त करने का अवसर व शक्ति प्राप्त थी। यदि मानव में उसकी छिपी स्वार्थता या बुराई और शोषण की भावना न होती तो प्राचीन युग के मानव का जीवन पूर्ण संयत व आदर्श हो गया होता। समय-समय पर मानव

की स्वार्थमय वासनाओं व अत्यधिक भोगइच्छा ने, उसे अपनी मर्यादा तोड़ने को बाध्य कर दिया, उसने बर्बरता पूर्ण कारनामें करके मानव समाज पर कलंक का टीका लगा दिया। समय-समय पर उसने क्रूर हिंसा, लूट-पाट व जंगली पन का व्यवहार किया जिससे कितनी ही पूर्ण सम्पन्न, खुशहाल व उच्चतम शिखर पर पहुँची हुई सभ्यतायें समाप्त हो गईं और उनकी जगह नई-नई सभ्यताओं का जन्म होता गया।

राजा यद्यपि राज्य का प्रमुख होता था लेकिन वह मनमानी नहीं कर सकता था। उसे आर्यों के कानून और प्रथा यानी रस्म-रिवाज के मुताबिक चलना पड़ता था। उसकी रिआया उस पर जुर्माना कर सकती थी और उसे गद्दी तक से उतार सकती थी। 'राजा ही राष्ट्र है' यह सिद्धान्त जिसका मैंने पहले पत्रों में जिक्र किया है, यहाँ नहीं माना जाता था। इस तरह आर्य बस्तियों में एक किस्म का लोकतन्त्र पाया जाता था यानी आर्य प्रजा शासन पर कुछ हद तक नियन्त्रण रखती थी। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ४२ प्रथम खण्ड)

थीब्स नाम के एक यूनानी शहर ने सिकन्दर का आधिपत्य नहीं माना और बलवा कर दिया। इस पर सिकन्दर ने उसपर बड़ी क्रूरता और निर्दयता के साथ आक्रमण करके उस शहर को नष्ट कर दिया उसकी इमारतें ढहा दी। बहुत से नगर निवासियों को कत्ल कर डाला और हजारों को गुलाम बनाकर बेच दिया। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ७५ प्रथम खण्ड)

पुराने जमाने में पश्चिम में गुलामों की हमेशा बहुत ज्यादा माँग रहती थी, और माँग को पूरा करने के लिए गुलामों के बड़े-बड़े बाजार लगा करते थे। मर्द, औरत और बच्चों को पकड़ने और उन्हें गुलाम बना कर बेचने के लिए दूर-दूर देशों तक धावे हुआ करते थे। पुराने यूनान और रोम के वैभव एवं महानता की बुनियाद प्राचीन मिश्र की तरह

गुलामी की चारों ओर फैली हुई प्रणाली पर कायम थी। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ११० प्रथम खण्ड)

पुराने जमाने में मशीनें न थीं तो गुलाम तो थे ! इसमें शक नहीं पुराने जमाने की अपनी बुराई भी थी। गुलामी की प्रथा मनुष्य के असभ्य व क्रूर तथा स्वार्थी होने का प्रमाण पेश करती है। लेकिन यह पुराने काल की गुलामी प्रथा एक सीमित क्षेत्र में ही रही। संसार के थोड़े से हिस्से में ही इसका प्रचलन था। मध्यएशिया, रोम यूनान व मिश्र में इस प्रथा का खासा प्रभाव था। लेकिन हमें यह जानकर आश्चर्य और खुशी होती है कि हिन्दुस्तान और चीन जैसे पुरानी सभ्यता के देशों में इस निकृष्ट गुलामी की प्रथा का कहीं भी जिक्र नहीं मिलता। इन विशाल भूखण्डों में अत्यन्त ही पुराने काल से सभ्यता, संस्कृति, शिष्टता, आपसी सहयोग, भाइचारा व कला का विकास तथा परम्परा चलती आई है और अभी भी चालू है। वास्तव में हिंन्दुस्तानी सभ्यता इन मिश्री व यूनानी सभ्यताओं से कहीं ज्यादा बढ़ी-चढ़ी थी और पूर्णता को पहुँच चुकी थी। यही कारण है, जब कि मिश्री यूनानी व रोमन सभ्यतायें उठीं, पनपीं और समाप्त भी हो गईं, लेकिन हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता अटूट बहती चली आई है। मानव को गुलाम बनाकर, उसका शोषण करके, अपना स्वार्थ साधन करके, विषमता को बढ़ाकर, न तो कोई राष्ट्र या सभ्यता कायम रही है, न कायम रहेगी। गुलामी की प्रथा और मशीन की प्रथा दोनों ही समान गुण की हैं। यद्यपि मशीन व्यवस्था तो गुलामी-प्रथा से भी कहीं अधिक भयानक है। मानव यदि अपना भला चाहता है तो उसे आपसी प्रेम, व्यवहार व भाइचारे तथा सहयोग को ही प्रधानता देकर सभ्य कहलाने का दावा

करना चाहिए। हिन्दुस्तान की प्राचीन सभ्यता का आधार यही रहा है, इसीलिए यहां हमेशा से मानव सुखी व सन्तुष्ट तथा क्रूरता से रहित रहा है। गुलामी प्रथा वाले देशों में ही मुख्यतः बड़े-बड़े राजनैतिक, सांस्कृतिक व आर्थिक उलट फेर हुए हैं। इन्हीं गुलामी प्रथा के पोपक देशों में ही भयंकर नर-संहार व एक के बाद दूसरे आक्रमण-कारियों व साम्राज्य-वादियों का जन्म हुआ है। यही गुलामी प्रथा के पोषक ही समस्त पुराने काल के मानव, उसकी सभ्यता, पूर्णता तथा सम्पन्नता पर धब्बा लगाते हैं। हिन्दुस्तान और चीन गुलामी प्रथा-क्षेत्र के बाहर के थे, इसलिए यहाँ न तो उतने उलट-पुलट हुए, न नर संहार हुए और न क्रान्तियाँ ही। जो कुछ उलट-पुलट हुआ भी वह शासकीय क्षेत्रों तक ही सीमित रहा। साधारण जनता की आर्थिक व सामाजिक अवस्था अपरिवर्तनीय ही बनी रही।

अगर आपस के सहयोग को और समाज की भलाई के लिए बलिदान को सभ्यता की परखने की कसौटी माने तो इस लिहाज से चीटियाँ और दीमक आदमी से ऊँचे दरजे की साबित होती हैं। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरु, पृ० १३ प्रथम खण्ड)

हिन्दुस्तान में इन पिछले बरसों में एक बहुत प्राचीन सभ्यता के चिन्ह मिले हैं। ये चिन्ह उत्तर पश्चिम भारत में मोहन-जोदारो नाम की जगह के आस-पास पाए गए हैं। करीब पाँच हजार बरस पुराने इन खण्डहरों को लोगो ने खोदा और इसमें प्राचीन मिश्र की-सी मोमि-याई मसाला लगाकर रक्षित रखे गए मुरदे मिले हैं। जरा ख्याल तो करो, ये सब बातें हजारो बरस पुरानी, आर्यों के आने से बहुत पहले की हैं। योरप उस समय वीरान रहा होगा। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरु, पृ० १७ प्रथम खण्ड)

हिन्दुस्तान और चीन में यह सब बातें वैसी ही हुई जैसे दूसरे देशों में। लेकिन सिवाय चीन और हिन्दुस्तान के किसी भी दूसरे देश में सभ्यता का असली सिलसिला कायम नहीं रहा। सारे परिवर्तनों, लड़ाइयों और हमलों के बावजूद इन देशों में पुरानी सभ्यता की धारा अटूट बहती आई है। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरु पृ० २४ प्रथम खण्ड)

गाथ, बांडाल और हूण लोगों ने पश्चिमी रोमन साम्राज्य को बालू की दीवार की तरह गिरा दिया। इन लोगों के इतनी आसानी से कामयाब हो जाने की एक वजह शायद यह है कि रोमन किसान, साम्राज्य की मातहत में बहुत मुसीबत में थे। उनपर इतना टैक्स था और वे इतने ज्यादा कर्ज में डूबे हुए थे कि, उनका किसी भी परिवर्तन का स्वागत करने को तैयार हो जाना बिल्कुल स्वाभाविक था। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू पृ० १३८ प्रथम खण्ड)

राजा आते थे और चले जाते थे, वे एक दूसरे से लड़ते भी थे, लेकिन उन्होंने इन ग्राम संस्थाओं पर कभी हाथ नहीं डाला, और न इनके काम या अधिकार में कभी दखल ही दिया। उन्होंने इन पंचायतों की आजादी छीनने की कभी कोशिश नहीं की, और इस तरह जब साम्राज्यों का उलट फेर होता रहा, तब भी इस ग्राम संस्था पर खड़ी हुई समाज व्यवस्था बिना रद्दो बदल के जारी रही। सम्भव है लड़ाइयों और राजाओं के बदलने की कहानियाँ हमको भ्रम में डाल दें, और हम यह सोचने लगें कि इन घटनाओं का असर तमाम जनता पर पड़ा होगा। इसमें शक नहीं कि जनता पर, खासकर हिन्दुस्तान पर कभी इनका असर पड़ा था, लेकिन आमतौर से यह कहा जा सकता है कि वे इससे बहुत कम परेशान होते थे और राजदरबार में हेरफेर होते हुए भी वे अपने काम में लगे रहते थे। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० १६५ प्रथम खण्ड)।

इतिहास में शुरु से लेकर अन्त तक अथवा वर्तमान तक हम यह देखते आए हैं कि राजा, शासक या सरकार हमेशा किसी देश व राष्ट्र की बदलती चली आई है। सरकार तभी बदली जाती थी, या उसकी पराजय होती थी,जब वह निरंकुश हो जाती और उसका स्वतः भोग विलास अपने चरमसीमा पर पहुँच जाता था। जनता आर्थिक कष्टों से त्राहि-त्राहि कर उठती थी। उस समय राजा या शासक का साम्राज्य जरा सी ठोकर खाकर ही भहरा जाता था। यह कुछ स्वाभाविक सा दिखाई देता है कि, हर काल में सरकारों का, शासकों का परिवर्तन, उनकी उन्नति और उनका पतन, उनकी न्याय प्रियता और उद्दण्डता आदि सभी का होना अनिवार्य है। किसी खास शासक या सरकार के प्रारम्भ में तो खासी उन्नति होती है। जनता की सुख सुविधा तथा न्याय की वृद्धि होती है। सर्वत्र अमन-चैन कायम हो जाता है जनता के ऊपर से आर्थिक भार को हटा लिया जाता है। लेकिन समय बीतने पर यही सरकारें अपनी लोक प्रियता खो देती हैं। वे उद्दण्ड बन जाती हैं। अपनी भोग विलासिता में ही डूब जाती हैं। जनता के ऊपर टैक्सों का खासा भार लाद दिया जाता है। अन्त में ऐसा अवसर भी आ पहुंचता है, जब ऐसे अन्यायी शासकों या सरकारों का पतन हो जाता है और उनकी जगह नये शासक या नई सरकारें आ जाती हैं। इसलिए वर्तमान काल में भी भविष्य के लिए कोई न कोई ऐसी व्यवस्था करनी ही चाहिए जिससे सरकारों के इस होते हुए उलट फेर का साधारण जनता पर कोई प्रभाव न पड़े। इसके लिए यह आवश्यक है कि सरकार के अधिकारों को कम किया जाय, जनता के स्थानीय प्रबन्ध को प्रोत्साहन दिया जाय, आर्थिक व्यवस्था में सरकार का कोई भी हस्तक्षेप

न हो। आर्थिक व्यवस्था की नकेल सरकार के हाथों में दे देने से सरकारी उलट-पुलट का असर जनता को भी असह्य उत्पीड़न के रूप में सहन करना पड़ता है। वर्तमान प्रजातन्त्र की व्यवस्था में भी सरकारें हमेशा बदलती रहती हैं, उनका बदलते रहना अच्छा व अनिवार्य भी है, लेकिन सरकारी अधिकार प्राप्त करने की गुटबन्दी से जनता पर भीषण प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। वर्तमान समय में मशीनों का विकास व प्रभाव बढ़ाकर जनता की आर्थिक नकेल को वश में की जाती है। आर्थिक विषमता की प्रगति प्रजातन्त्र को खोखला करती चलती है। समाज साम्यवाद की ओर अग्रसर करता है। समस्त आर्थिक शक्तियाँ सरकार को प्राप्त हो जाती हैं। जनता का जीवन मरण सरकार अपने हाथों में ले लेती है। सरकार का अधिकार व जनता के दैन्य-दिन की बातों में हस्तक्षेप, यह दोनों ही अपनी चरमसीमा पर पहुँच जाते हैं। ऐसी अवस्था में सरकार के उद्दण्ड, विलासी, व अन्यायी हो जाने पर उसका पतन भी हो जाता है। लेकिन यह होने वाला परिवर्तन जनता को भूकम्प की भाँति हिलाकर तहस-नहस कर डालता है। इसलिए हमारे लिए यह अनिवार्य है कि हम पुरातन काल को, अपनी वर्तमान अच्छाइयों को साथ में लेकर वापस चलें और मशीनों का नियन्त्रण कर प्रजातन्त्र को प्रोत्साहन देते हुए अपने कुटीर उद्योगों व स्वायत्त शासन की स्थापना करें। हमारे लिए यह अच्छी तरह समझ लेने की आवश्यकता है कि हम ऐसी कोई न कोई व्यवस्था अवश्य करना चाहते हैं, जिससे इस होने वाले शासकीय परिवर्तन व पतन का सर्वसाधारण पर कोई असर न हो, अन्यथा मानव जीवन कष्टों व उथल-पुथलों से पागल हुए बिना न रहेगा।

किसी भी राष्ट्र को तीन मंजिलों से होकर गुजरना पड़ता है। पहले उसको सफलता मिलती है, फिर उस सफलता के अभियान में अन्याय और उद्दण्डता शुरू होती है और तब इन बुराइयों के फल-स्वरूप उसका पतन हो जाता है। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ६८ प्रथम खण्ड)

जिन्दा रहने के लिए चन्द चीजों जैसे अनाज, घर और ठंडे मुल्कों में कपड़े वगैरह का होना जरूरी है। इसलिए जिन लोगों का इन आवश्यकताओं की पूर्ति के साधनों पर अधिकार था उन्होंने आदमियों पर अपनी हुकूमत जमा ली। हाकिमों और राजाओं के हाथ में प्रभुता रही है, क्योंकि जीविका के कुछ आवश्यक साधनों पर उनका नियंत्रण था। इस नियंत्रण से उन्हें जनता को भूखों मार कर अपने वश में कर लेने की शक्ति मिल गई और इसी वजह से हमें यह आश्चर्यजनक दृश्य देखने को मिलता है कि, मुट्ठी भर आदमी बहुत बड़े जन समुदाय को चूसते हैं। बहुत से आदमी बिना कुछ मेहनत किए ही रुपया कमाते हैं, और बहुत ज्यादा संख्या ऐसे लोगों की है जो मेहनत तो बहुत करते हैं लेकिन पाते बहुत कम हैं। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ६१ प्रथम खण्ड)

बड़ी बड़ी तब्दीलियों और बड़ी तहरीकों के असल कारण आर्थिक हुआ करते हैं। हम देख चुके हैं कि योरप और चीन के बड़े बड़े साम्राज्यों के पतन के शुरू में और साथ साथ आर्थिक गिरावट हुई और बाद में क्रान्ति हो गई। यही हाल हिन्दुस्तान में हुआ। (विश्व-इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ४४८ प्रथम खण्ड)

इस राज्य का ऊपरी खोल तो कायम था लेकिन अन्दर से यह सड़ गया था। इसलिए जरा सी ठोकर से जमीन पर आ गया। यह जनता के शोषण से बना था इसलिए लोग उससे बहुत असंतुष्ट थे। इसलिए जब उस पर हमला हुआ तो साधारण जनता ने साम्राज्यवादियों की इस

मुसीबत का स्वागत किया और जैसा कि अक्सर होता है, इसके साथ ही एक सामाजिक क्रान्ति भी आ गई। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू पृ० २६६ प्रथम खण्ड)

जो अमीर थे वे और भी ज्यादा अमीर होते गए और गरीब लोग गरीब बने रहे या और ज्यादा गरीब हो गए। गुलामों की आबादी बढ़ती गई और साथ ही साथ ऐशो-आराम और मुसीबत भी बढ़ती गई। जब कभी ऐसा होता है, तभी अक्सर गड़-बड़ हो जाया करती है। आश्चर्य की बात है कि आदमी कितना सहता है। लेकिन आदमी के बर्दाश्त की भी एक हद है और जब यह पूरी हो जाती है, तब अशान्ति फूट निकलती है। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ११४ प्रथम खण्ड)

नीति सार में लिखा है "अधिकार की शराब पीकर किसको नशा नहीं होता ?" ये शब्द बुद्धिमानी के मालूम होते हैं और खासकर आजकल हमारे देश के उन अफसरों के गिरोह पर लागू होते हैं जो हमारे साथ बुरा सलूक करते और बुरी तरह हुकूमत करते हैं। (विश्व इतिहास की झलक, ले०श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० १६२ प्रथम खण्ड)

एक नया राजघराना शुरू में अक्सर थोड़े से काबिल राजा पैदा करता है और बाद में नालायकों से उसका खात्मा हो जाता है। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ४६६ प्रथम खण्ड)

एक प्राचीन चीनी लेखक मेंगत्सी ने लिखा है कि "जनता देश का सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण अंग है, इसके बाद जमीन और फसल के देवताओं का दरजा है, और सबसे कम महत्व शासक या राजा का है।" (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू पृ० २८५ प्रथम खण्ड)

ग्रामीण स्वराज्य की यह प्रणाली आयशासन-व्यवस्था की बुनियाद

थी। इसी वजह से इसमें इतनी ताकत थी। गाँव की ये सभाएँ अपनी आजादी की इतनी परवाह करती थीं कि, यह कायदा था कि बिना राजाज्ञा के कोई भी सिपाही किसी भी गाँव में नहीं घुस सकता था। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० १६२ प्रथम खण्ड)

ग्राम पंचायतें छोटे छोटे प्रजातन्त्र हैं, अपनी जरूरत की करीब करीब हर एक चीज उनमें मौजूद है। ऐसा मालूम होता है कि जहाँ कोई दूसरी चीज नहीं ठहर पाती, उनकी हस्ती कायम रहती है। ग्राम पंचायतों का यह संघ, जिसमें हर एक पंचायत खुद एक अलग छोटी सी रियासत के समान है, उनके सुख शान्ति से रहने और बहुत हद तक उनकी आजादी और खुदमुख्तारी का उपयोग कराने में भारी सहायक होता है। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ६०० प्रथम खण्ड)

मानव कितने ही हजार सालों से इस पृथ्वी पर रहता आया है। वह सभ्यता के उच्च शिखर पर पहुँचा और गिरा। विषमता हुई और समता भी आई। लोगों ने आर्थिक शोषण, लूट मार, कत्लेआम, और साथ-साथ गुलामी प्रथा भी चलाई, लेकिन मानव अस्तित्व हमेशा कायम रहा। पुराने जमाने में बहुत-सी बुराइयाँ थीं तो अच्छाइयाँ भी थीं। सबसे अच्छी बात जो थी वह यह थी कि मनुष्यों की आजीविका का अपहरण कभी नहीं किया गया। सर्व-साधारण में बेकारी का प्रादुर्भाव कभी नहीं हुआ। जनता की श्रमशक्ति का हमेशा से आदर रहा है। मानवशक्ति ने ही पिरेमिड जैसे-जैसे चमत्कार पैदा कर दिए हैं। जनता का जो कुछ शोषण या लूट-पाट किया जाता था वह उसकी कमाई व उसके संचित धन का ही होता था। उदाहरण स्वरूप खेती करने वाले किसान की इकट्ठा की हुई फसल या अन्न, जुलाहों के बनाए हुए कपड़े

और व्यापारियों के संचित किए हुए धन को ही शोषित किया जाता था। बुरे जमाने में सर्वसाधारण का बुरा हाल होता था, लेकिन अच्छे जमाने में सुन्दर, शक्तिशाली, न्याय प्रिय शासक के पैदा होते ही सभी को अच्छा दिन देखने को भी मिल जाता था। सभी अपनी अपनी आजीविका से फिर अपनी सम्पन्नता बढ़ा लेते थे और खुशहाल हो जाते थे। लेकिन पुराने जमाने से और वर्तमान काल में बहुत अंतर है। पुराने जमाने के हजारों सालों के मानव का अस्तित्व ही आज मशीनों की वजह से खतरे में पड़ गया है।

आधुनिक काल का शोषण भिन्न प्रकार का है। इसकी भीषणता ने पुरातन काल की शोषणता को भी मात कर दिया है। आज केवल संचित धन का ही अपहरण नहीं होता, आज मानव की जीविका का ही अपहरण होता है। बेरोजगार मानव आज दर-दर भटकता हुआ भूखों मरने की तैयारी करता है। मशीनों ने मानवश्रम को छीनकर जन-शक्ति या शारीरिक शक्ति का उपहास किया है। समस्त मानव को निठल्ला बनाकर, मशीनें मानव को पंगु बनाने की तैयारी कर रही हैं। मशीनें समस्त उत्पादन स्वयं कर, अपने मालिकों को ही उसे समर्पित कर, समस्त मानव जाति की अनुपयोगिता तथा उसकी अयोग्यता को प्रमाणित करती हैं। मानव आज वर्तमान भीषणतम् परिस्थिति से तड़प रहा है। वह प्राचीन युग को वापस लौटने को व्याकुल हो गया है।

पिरेमिड—मिश्र देश के पत्थर के विशाल स्तूप या मीनार जिनके नीचे मिश्र के प्राचीन सम्राटों की कब्रें हैं। सबसे बड़ा पिरेमिड गिजेह नामक स्थान पर है। इसमें पत्थरों की तेइस लाख चट्टानें लगी हैं और एक एक चट्टान का वजन ढाई ढाई टन है। जिस जमाने में मशीनों का

नाम तक न था, उस जमाने में लोगों ने कैसे ढ़ाई-ढ़ाई टन के तेईस लाख पत्थर एक दूसरे पर चुनकर रख दिए, इस बात के समझने में बुद्धि चकरा जाती है। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू पृ० २२ प्रथम खण्ड)

उत्पादन के साधनों पर एक ही वर्ग का एकान्त अधिकार होता जाता है, जिसके कारण छोटे छोटे कारखाने तो टूटते जाते हैं और बहुत बड़ी बड़ी मशीनों वाले कारखाने बढ़ते जाते हैं, जिनसे मानव श्रम की उत्पादक शक्ति बहुत भीषण रूप से बढ़ रही है ; लेकिन इस परिवर्तन के जितने लाभ हैं वे सब पूँजीदारों और बड़े जमींदारों को ही होते हैं। छोटे छोटे दरिद्र व्यापारियों, कारीगरों और किसानों के लिए उनका केवल यही परिणाम होता है कि उनके अस्तित्व मिटने की आशंका, कष्ट, दासत्व, अवनति और अपहरण आदि की बराबर वृद्धि होती जाती है। दरिद्रों और बेकारों की संख्या दिन पर दिन बराबर बढ़ती जाती है और अपहारक तथा अपहृत के बीच का झगड़ा भी दिन पर दिन बराबर बढ़ता जाता है, जिसके कारण सभी औद्योगिक देशों के आधुनिक समाजों में दो ऐसे दल खड़े हो गए हैं जो एक दूसरे के साथ बराबर शत्रुता का व्यवहार करते हैं। (साम्यवाद, ले० बाबू रामचन्द्र वर्मा, पृ० १८२)

...अगर हिन्दुस्तान को यन्त्रोद्योग प्रधान देश बनाना हो तो इसकी पेंतीस करोड़ की आबादी के बदले साढ़े तीन करोड़ की आबादी कर डालनी चाहिए। जहाँ करोड़ों मनुष्य बेकार पड़े हों वहाँ बड़े पैमाने पर चलने वाले यन्त्र या कारखानों के लिए कोई गुँजाइश नहीं हो सकती। - महात्मा गाँधी (यन्त्रों की मर्यादा, पृ० १६)

३

मशीनों का पदार्पण

मशीनों का पदार्पण संसार में अठारहवीं शताब्दी के अन्त होते होते, अपनी पूरी धूमधाम से हो गया। जिस समय इनसे काम लेना शुरू हुआ, इसका दुष्परिणाम तुरंत ही दिखाई देने लगा। ज्यों ज्यों इनका औद्योगिक क्षेत्रों में विकास होता गया, जनता अपने अस्तित्व को खतरे में देखती गई। लोगों ने इनकी शुरुआत में ही प्रत्यक्ष देखा कि, यह उनके रोजगार, उनकी आजीविका का नाश कर देने वाली है। मानव का श्रम छिन जाने की आशंका ने उन्हें व्याकुल कर दिया। कुटीर उद्योगियों, कारीगरों, दस्तकारों पर इसका सर्व-प्रथम आघात हुआ। जिन कामों को यह गृह उद्योगी, समाज की अर्थ-व्यवस्था संतुलित रखते हुए, अपने श्रम से पूरा करते थे, उन कामों को अब मशीनें करने लगी थीं। सर्व साधारण ने मशीनों के बनाए हुए सस्ते और सुन्दर मालों को खरीदने में अपना लाभ देखा और मशीनों द्वारा निर्मित उपयोगी वस्तुओं की जोर-शोर से बिक्री होने लगी। अब लोगों ने हाथ द्वारा बने हुए सामानों की ओर देखना भी छोड़ दिया था। एक एक मशीन उतना माल तैयार करने लगी थी, जितना सैकड़ों गृह-उद्योगी मिलकर तैयार करते थे। इसलिए जितना लाभ इन सैकड़ों कारीगरों

को मिलाकर होता था, उतना लाभ सब, अब एक व्यक्ति, मशीन मालिक को ही होने लगा था। एक प्रकार से इसका परिणाम वैसा ही हुआ जैसा इन सैकड़ों अभागों की सारी कमाई को लूट लिए जाने से होता। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि मशीन मालिक ने, एक मशीन की सहायता से, सैकड़ों व्यक्तियों का शोषण कर अपने को मालामाल कर लिया।

एक व्यक्ति ने कितनी ही मशीनें बैठा लीं। इस प्रकार एक ही व्यक्ति ने कितने ही गुना 'सैकड़ों' आदमियों का रोजगार छीन लिया। निश्चय ही वह हजारों आदमी बेकार हो गए और इनको मिलने वाला सारा लाभ, अब सामुहिक रूप से मशीन मालिक को ही मिलने लगा। एक मशीन मालिक ने हजारों आदमियों को लूट लिया। हजारों आदमियों का शोषण कर, एक व्यक्ति करोड़ों रुपए का मालिक हो गया। कितने ही मशीन मालिक पैदा हो गए, और नियमानुसार कितने ही गुना 'हजारों' व्यक्ति बेकार हो गए। इन बेशुमार बेकार लोगों के हक का सारा रुपया, थोड़े से उँगली पर गिने जाने लायक, मशीन मालिकों को बरबस ही मिलने लगा। थोड़े से, फिर भी कितने ही, मशीन मालिकों को अब करोड़पति कहा जाने लगा। यही मशीन मालिक आगे चलकर पूँजीपति के नाम से प्रसिद्ध हो गए। इन बेशुमार, रोजगारहीन, बेकार अभागों को अब अपनी रोजी कमाने, पेट भरने का कोई साधन नहीं रहा था, और अपनी आखिरी घड़ियाँ गिनते हुए उन्होंने एक प्रसिद्ध 'चिड़िया का गीत' गाकर समय काटना और अपने दिल को बहलाना चाहा था।

बहुत दिन पहले की बात है। मैं बैठा-बैठा यही सोच रहा था कि,

क्या करूँ ! रसोई घर में कल के लिए एक दाना भी तो शेष नहीं रहा ; लूटने वाले सभी कुछ लूटकर ले गए !

ठीक उसी समय सामने पेड़ पर मैंने उस बेचारी चिड़िया को देखा, जो उदास सूरत बनाए एक दर्द भरा गीत गा रही थी। एक युग बाद आज फिर से मुझे उसके नन्हें गीत याद आ रहे हैं।

उसके करुण गीतों का आशय था—'मेरी ही जाति के पक्षियों ने मुझे लूट लिया है...और कितनी लज्जा-जनक बात है यह मेरे अंतर्यामी के लिए !

'दरअसल, मुझे इस बात का जरा भी दुःख नहीं कि, उन्होंने मुझे लूट लिया ; मुझे तो केवल इस बात से शर्म लगती है कि, आकाश में उड़ती हुई ये बदलियाँ, जिनके नीचे मैं बैठी हूं, ये हवाएँ, जिनमे मैं साँस ले रही हूँ, और यह आकाश, जिसके अनन्त विस्तार में उड़ते-उड़ते मुझे अपने जीवन का शेष समय बिताना है—ये सभी मुझे अपनी बड़ी-बड़ी आखों से घूर-घूर कर देख रहे हैं।

"...मै तो केवल इसलिए चिंतित हूं कि, कहीं ये बदलियाँ, ये हवाएँ और यह असीम आकाश मुझसे घृणा न करने लगें कि मैं उस जाति के पक्षियों में से हूं, जो अपनी ही जाति के पक्षियों को निःसंकोच लूट लेते हैं।"

(नवनीत हिन्दी डाइजेस्ट, सितम्बर १६५३ पृ० ११२)

समय के आने पर यद्यपि सम्पत्ति का, यानी व्यवहार योग्य उपयोगी वस्तुओं का अधिकाधिक मात्रा में, मशीनों द्वारा निर्माण होता गया, लेकिन दूसरी तरफ इसी अनुपात में गृह उद्योगों का नाश भी होता गया और लाखों की संख्या में व्यक्ति रोजगार-हीन, सर्वहारा, और खानाबदोश हो गए। धीरे-धीरे इसका सर्व-व्यापी असर पड़ने लगा। सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच गई। एक देश ने दूसरे देश को, एक भूखण्ड ने

दूसरे भूखण्ड को, मानव ने ही मानव को लूटना, गुलाम बनाना और उसको भूखा मारना शुरु कर दिया। साम्राज्य-वादी नीति का व्यापक प्रयोग शुरु हुआ। नर-संहार से धरती का चेहरा लाल हो गया।

जिस समय मशीनों का प्रादुर्भाव हुआ, शीघ्र ही इनके कारण दिखलाई पड़ने वाले दुष्परिणामों की ओर कुछ विवेकी महापुरुषों का ध्यान आकृष्ट हुआ। उन्होंने अपनी पूरी ताकत से इस बढ़ते हुए मशीनों के प्रयोग का विरोध किया। लेकिन अधिकांश स्वार्थी, धन लोलुप, तथा क्रूर लोगों के सामने उनकी कुछ भी चलने न पाई। सरकारी प्रश्रय पाकर इन मशीन मालिकों ने सर्व-साधारण के धन्धों, रोजगारों का नाश और उनके संचित पैसों को चूसना प्रारम्भ कर दिया। सर्व-प्रथम इसका विरोध पोप ने ही किया। पोप धार्मिक कट्टर होने पर भी, बुद्धिमान शासक था। उसने मशीनों द्वारा पड़ने वाले दुष्परिणाम को साफ साफ देखा, और इस बुराई से बचने के लिए उसने कठोर नीति का अवलंबन किया। कुछ समय के लिए तो अवश्य ही इन मशीनों की बाढ़ रुक गई, लेकिन पोप की शक्ति क्षीण होते ही, जनमत का उत्थान होने पर, फिर से एक-बारगी अत्यधिक जोर शोर से मशीनों का प्रयोग व उनकी उन्नति प्रारम्भ हो गई।

अठारहवीं सदी...के आखिरी पचीस वर्षों में औद्योगिक क्रान्ति इंगलैण्ड में शुरू हुई। वहां से पहले तो वह पश्चिमी योरप के देशों मे फैली, और फिर दूसरे देशों में। वह एक शान्तिमय लेकिन बहुत गहरी क्रान्ति थी और सारी दुनिया की जिन्दगी पर जितना इसका असर हुआ उतना आज तक इतिहास में लिखी हुई किसी भी घटना का नहीं हुआ। इसका नतीजा हुआ भाप और बड़ी मशीनें और आखिर में उद्योग-वाद

की अनगिनती शाखाओं का आगमन जो आज हम अपने चारो तरफ देख रहे हैं। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ४८७ प्रथम खण्ड)

मशीन औजार का बढ़ा हुआ रूप है। औजार और मशीन ने मनुष्य को पशु जगत से ऊपर उठा दिया। इन्होंने मनुष्य समाज को कुदरत की गुलामी से छुड़ाया। औजार और मशीन की मदद से इन्सान के लिए चीज बनाना आसान हो गया। वह ज्यादा चीजें बनाने लगा, और फिर भी उसे ज्यादा फुरसत रहने लगी, और इसका नतीजा यह हुआ कि सभ्यता की, कलाओं, विचारों और विज्ञान की उन्नति हुई।

लेकिन बड़ी मशीन और उसके सब मददगार निरी बरकतें ही नहीं साबित हुए। अगर इसने सभ्यता की तरक्की में मदद दी है तो लड़ाई और बर्बादी के खौफनाक हथियारों को ईजाद करके बर्बरता को बढ़ाने में भी मदद की है। अगर इसने चीजों को इफरात या बहुतायत के साथ पैदा किया है तो यह इफरात जनता के लिए नहीं बल्कि थोड़े से लोगों के लिए हुई है। इसने तो दौलत-मंदों के एश-आराम और गरीबों की गरीबी के अन्तर को पहले से भी अधिक बढ़ा दिया है। यह इन्सान का औजार और सेवक होने के बजाय उसका स्वामी बनने का दावा करने लगी है। एक तरफ तो इसने सहयोग, संगठन, मुस्तैदी वगैरह गुण सिखाए हैं, दूसरी तरफ लाखों की जिन्दगी को एक ऐसी निरस दिनचर्या वाला और ऐसा भार बना दिया है, जिसमें जरा भी सुख और आजादी नहीं है। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ४६० प्रथम खण्ड)

इंगलैण्ड में तीन बड़े उद्योगों—कपड़ा, लोहा और कोयला का विकास हुआ और कोयले के क्षेत्रों और दूसरी माकूल जगहों में कारखाने खड़े होने लगे। इंगलैण्ड की काया ही पलट गई। हरे हरे खुशनुमा देहातों के बजाय अब बहुत सी जगहों पर नये कारखाने पैदा

हो गए, जिनकी लम्बी-लम्बी चिमनियाँ धुँआ उगल कर आस-पास अँधेरा करने लगीं। कोयलों के ऊँचे टीलों और कूड़े कचरे के ढेरों से घिरे हुए ये कारखाने देखने में खूबसूरत नहीं मालूम होते थे। इन कारखानों के पास बनने वाले औद्योगिक नगर भी कोई खूबसूरती की चीज न थे। वे तो किसी तरह खड़े कर लिए गए थे, क्योंकि मिल-मालिकों का तो असली मकसद था रुपया बनाते रहना। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ४६६ प्रथम खण्ड)

शुरू शुरू में इन नए तरीकों ने हालत और भी खराब कर दी। खेती बाड़ी को नुकसान पहुँचा और बेकारी बढ़ने लगी। असल में जैसे ही कोई नई खोज होती वैसे ही उसका नतीजा यह होता कि हाथ के काम की जगहें मशीनें ले लेतीं। उसका फल यह होता था कि बहुत बार मजदूर लोग नौकरी से निकाल दिए जाते थे जिससे उनमें बहुत असन्तोष पैदा हो जाता था। इनमें से बहुत से तो मशीनों से नफरत करने लगे और उनको तोड़ डालने की भी कोशिश करने लगे। ये लोग 'मशीन तोड़ने वाले' कहलाने लगे। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ४६७ प्रथम खण्ड)

उसने देखा कि आजकल की व्यापार पद्धति बहुत ही त्रुटि पूर्ण है, और पूँजीदारी की प्रथा मशीनों के आविष्कार के साथ ही बढ़ी है। वह कला कुशल था, इसलिए मशीनों की बनी हुई चीजें उसे भद्दी मालूम होती थीं। वह मशीनों का प्रचार तो रोक नहीं सकता था इस-लिए वह ऐसी सामाजिक क्रान्ति उपस्थित करना चाहता था जो लोगों को मशीनों के उस दासत्व से छुड़ा सके जिसमें मजदूरों को गन्दे स्थानों मे रहकर थोड़े वेतन पर बहुत अधिक समय तक काम करना पड़ता था। परन्तु काम करने को वह बहुत पसन्द करता था। उसका मत था कि हर एक काम इस ढंग से होना चाहिए जिसमें काम करने वाले को आनन्द भी मिले और वह अपनी योग्यता भी दिखला सके। लोग कहते थे कि

मशीनों के आविष्कार के कारण लोगों को कम परिश्रम करना पड़ता है और समाज की सम्पत्ति बढ़ती है, इसलिए शिल्प के प्रत्येक विभाग में मशीनों का खूब आदर होगा, परन्तु मारिस इन सब बातों को नहीं मानता था और मशीनों को बहुत घृणा की दृष्टि से देखता था। मारिस तथा उसके मित्र वाल्टर क्रेन के प्रयत्नों का यह फल हुआ कि अंग्रेजी साम्यवादियों का ध्यान छोटे छोटे कारीगरों की ओर आकृष्ट हुआ और कुछ समय के लिए वे लोग इस बात का प्रयत्न करने लग गए कि पुराने ढग के चरखों और करघों का व्यवहार होने लगे। (साम्यवाद, ले० बाबू रामचन्द्र वर्मा, पृ० ३१०, ३११)

कारखाने का मजदूर मशीन का सिर्फ एक किर्रा बन गया और उन जबर्दस्त आर्थिक शक्तियों के हाथ में असहाय हो गया जिनको वह समझ नहीं सकता था, उन पर काबू पाना तो दूर रहा। दस्तकार और कारीगर को सबसे खटका तो तभी हुआ था जब उसे पता लगा कि नए कारखाने उन लोगों से मुकाबला कर रहे हैं और चीजें इतनी सस्ती बना कर बेच रहे हैं जितनी सस्ती अपने सादे और पुराने औजारों से घर पर बना कर बेचना उनके लिए मुमकिन न था। अपना कोई कसूर न होते हुए भी उनको अपनी दुकानें बन्द करनी पड़ीं। अगर वे अपने हुनर को नहीं चला सकते थे तो नए काम में कामयाबी हासिल करना तो दूर की बात थी। बस वे बेकारों की फौज में शामिल हो गए, और भूखों मरने लगे। अंग्रेजी कहावत है कि "भूख मिल मालिक का ड्रिल सारजेंट है" और इसी भूख ने आखिर इन कारीगरों को नौकरी की तलाश में नए नए कारखानों के दरवाजे पर ला पटका। मालिकों ने उनके साथ दया का वर्ताव नहीं किया। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ४९८ प्रथम खण्ड)

उद्योग धन्धों का यह नया तरीका बलवानों के द्वारा निर्बलों को चूसने के लिए खास तौर पर अख्तियार किया गया था। सारे इतिहास

में हम बलवानों द्वारा निर्बलों को चूसा जाता देखते हैं। कारखानों की प्रणाली ने इसे और भी आसान कर दिया। कानून में वहाँ गुलामी नहीं थी लेकिन हकीकत में भूखों मरने वाला मजदूर, कारखाने की मजदूरी का गुलाम, पुराने जमाने के गुलामों से अच्छी हालत में न था। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ४९९ प्रथम खण्ड)

इंगलैंड ने ही सर्वप्रथम मशीनों द्वारा संचालित औद्योगिक विकास को जन्म दिया। इंगलैंड कितनी ही बातों में बहुत ज्यादा खुश नसीब था। इंगलैंड ने औद्योगिक विकास कर अपने ही देश वालों को ज्यादा कंगाल और उनका ज्यादा शोषण नहीं किया। यद्यपि यहाँ विषमता बहुत ज्यादा थी लेकिन सभी को खाने, पहनने और रहने की सुविधा प्राप्त हो गई थी। इसका कारण यह था कि उस जमाने में पहले तो मशीनों का विकास और उसकी शक्ति बहुत कम थी, दूसरे मिल कारखाने भी काफी संख्या में थे। इन मिल, कारखानों से जो अत्यधिक उत्पादन होता था उसे हिन्दुस्तान जैसे बड़े देश के बाजारों में जबर्दस्ती बेचा जाता था। सच पूछा जाय तो इंगलैंड के उस औद्योगिक विकास के बचपन के जमाने में, हिन्दुस्तान ने ही उसे सहारा दिया, हिन्दुस्तान ने ही अपना खून देकर उसके शरीर में लालिमा और ताकत प्रदान की। हिन्दुस्तान ने ही स्वयं भूखा रहकर अपने निजी बच्चे, हिन्दुस्तानियों को भूखा मरने देकर भी, इंगलैंड को ऐशो-आराम और विपुल भोजन की सामग्रियाँ दी। भारत देश ने एक नेक 'धाय' के समान इंगलैंड को पाला, पोसा और बड़ा किया। इंगलैंड भारतवर्ष का सदा ऋणी रहेगा। शायद अभी भी हिन्दुस्तान द्वारा दिया हुआ अपना खून, इंगलैंड की धमनियों में बह रहा हो।

काफी संख्या में कल-कारखाने होने के कारण इंगलैंड के सभी निवासियों को काम मिल गया। कितने मजदूरे हो गए, दूसरे क्लर्क इत्यादि हो गए। बहुत से व्यक्ति साम्राज्य विस्तार के कार्यों में मशगूल हो गए। इन्हीं सब कारणों से इंगलैंड में ज्यादा औद्योगिक विकास की खराबी नजर नहीं आई और उसे अन्दरुनी गड़बड़ी का सामना बहुत कम करना पड़ा। इंगलैंड की शक्ति बढ़ती गई। विज्ञान की भी उन्नति हुई। इंगलैंड इतना समृद्धिशाली हो गया कि उसके साम्राज्य में कभी सूर्य अस्त नहीं होता था। उसके ऐश, विलास और भोग में स्वर्ग भी शायद तुच्छ हो गया। समस्त संसार इंगलैंड की इस चकाचौंध को देख कर मोहित हो गया।

भाप का ईञ्जन ईजाद हो चुका था और नए तरीकों और मशीनों के इस्तमाल से काम आसान हो रहा था और पैदावार बढ़ रही थी। यह जो फालतू माल बन रहा था उसका बिकना भी लाजमी था। इसलिए नई नई मंडियों की तलाश की जाती थी। इङ्गलैंड बड़ा खुशकिस्मत था कि ठीक इसी वक्त हिन्दुस्तान उसके कब्जे में था, जिससे वहाँ अपने माल को जबर्दस्ती बिकवाने का इन्तजाम कर सकता था, जैसा कि उसने अमल में किया भी। (विश्व-इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ४७२ प्रथम खण्ड)

औद्योगी-करण शुरू-शुरू में बड़े खर्चे का काम है। इसमें जो रुपया फँस जाता है, कुछ दिन तक उससे फायदा नहीं मिलता। अगर बहुत सा धन हाथ में न आ जाय, चाहे कर्ज से या दूसरी तरह से, तो जब तक व्यवसाय चल न निकले और रुपया न पैदा करने लगे तब तक उसका नतीजा गरीबी, और मुसीबत ही होता है। यह खासतौर पर इङ्गलैंड की खुशकिस्मती थी कि ठीक जिस वक्त उसे अपने उद्योग धन्धों और कारखानों को कायम करने के लिए बेहद रुपये की जरूरत

हुई तभी उसे यह धन हिन्दुस्तान से मिल गया। (विश्व-इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ५०२ प्रथम खण्ड)

ज्यादा जरूरत थी नई-नई मंडियों की, जिनमें कल कारखानों में तैयार किया हुआ माल खपाया जा सके। कारखाने पहले जारी करके इंगलैंड दूसरे देशों से आगे बढ़ा हुआ था। लेकिन इस पेशे कदमी के होते हुए भी उसे ऐसी मन्डियाँ मुश्किल से मिलती जहाँ माल आसानी से खपाया जा सकता। एक बार फिर हिन्दुस्तान ने अपनी मर्जी के बिल्कुल खिलाफ, इङ्गलैंड की इस दिक्कत को दूर कर दी। हिन्दुस्तान में अँग्रेजों ने हिन्दुस्तानी उद्योग धन्धों का सत्यानाश करने और हिन्दुस्तान पर विलायती कपड़ा लादने के लिए सब तरह की चालबाजियों से काम लिया। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरु, पृ० ५०३ प्रथम खण्ड)

हिन्दुस्तान की लूट से इङ्गलैंड को गौरव और धन मिला जिससे कई पीढ़ियों तक वह संसार की सबसे बड़ी ताकत बना रहा। (विश्व-इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू पृ० ४८४ प्रथम खण्ड)

धीरे धीरे समस्त योरप में मशीनों ने अपना आधिपत्य जमा लिया। फ्रांस और जर्मनी, इन दो देशों ने औद्योगिक क्षेत्र में काफी प्रगति कर ली। सर्वत्र कल कारखानों की भर-मार हो गई। मशीनों का दुष्परिणाम भी शीघ्र ही दिखाई पड़ने लगा। जर्मनी पर इसका बुरा असर सबसे ज्यादा पड़ा। अन्दरुनी कलह व फूट के कारण जर्मनी काफी लम्बे समय तक कमजोर बना रहा, जिससे वह साम्राज्यवादी होड़ में इंगलैंड और फ्रांस से पिछड़ गया। अन्य देशों का शोषण न कर सकने के कारण जर्मनी में घोर आर्थिक दुरावस्था, बेकारी और दरिद्रता व्याप्त हो गई। इसके अतिरिक्त उद्योगीकरण की उस प्रारम्भिक अवस्था में कारखानों में काम करने वाले

मजदूरों की सभी देशों में बड़ी दयनीय स्थिति थी। स्त्रियों और बच्चों से भी अत्यधिक काम लिया जाता था, उन पर नाना प्रकार के अत्याचार होते थे तथा सभी मजदूरों को मजदूरी बहुत कम दी जाती थी। कारखानेदार, पूँजीपति अपने स्वार्थ, भोग व लोभ में इतने क्रूर व निर्दयी हो गए थे कि मनुष्य की जगह उन्हें हैवान ही कहना उचित होगा।

श्रम जीवियों की इस शोचनीय स्थिति तथा सर्व-साधारण की बेकारी और दरिद्रता ने एक भीषण असन्तोष व प्रतिहिंसा की भावना को सर्वत्र व्यापक बना दिया। यही वह समय था, जब इन्हीं परिस्थितियों में, आग की लपटों के बीच, पूँजीवाद का घोर विरोधी, साम्यवाद का जन्म हुआ। मशीनों ने अपने भाई की इस उत्पत्ति पर अवश्य अपनी मूक खुशियाँ मनाई होंगी! इसी साम्यवाद ने आगे चलकर कारखानेदारी प्रथा-प्रधान प्रजातन्त्र देशों के पूँजीपतियों को सुख की नींद सोना भी मुश्किल कर दिया।

श्रम जीवियों पर फिर आफत आ रही है। बड़े दुर्भाग्य की बात है। क्योंकि इनकी तादाद दो ढ़ाई करोड़ है। जिनको हम एक तरह से संक्षिप्त, अस्पष्ट हैवानी लेकिन धुँधले बहुत दूर के ढेर में इकट्ठा करके कमीन या ज्यादा इंसानियत से जनता कहते हैं। सचमुच जनता, लेकिन फिर भी यह अजीब बात है कि अगर अपने ख्याल को दौड़ा कर आप इनके साथ साथ सारे फ्रांस में इनकी मिट्टी की मड़ैया में, इनकी कोठरियों और झोपड़ियों में चलें तो मालूम होगा कि जनता सिर्फ अलग अलग व्यक्तियों की ही बनी हुई है। इसके हरेक व्यक्ति का अपना अलग अलग दिल है और तकलीफें हैं। वह अपने ही खाल में खड़ा है और अगर आप उसे नोचेंगे तो खून बहने लगेगा। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ५१४,५१५ प्रथम खण्ड)

पश्चिम के सभी औद्योगिक देशों में ये भेदभाव साफ तौर पर नजर आने लगे और विचारशील और उत्साही लोग इस उलझन को सुलझाने की कोशिश करने लगे। इस तरह वह विचार धारा पैदा हुई. जिसे साम्यवाद कहा जाता है और जो पूँजीवाद की ही उपज और साथ ही उसकी शत्रु है और जो शायद उसको जड़ से उखाड़ करके ही रहेगी। (विश्व इतिहास की झलक ले० श्री जवाहर लाल नेहरू पृ० ७७ प्रथम खण्ड)

इसी समय हमें उन पुराने जमाने के लोगों का ख्याल आता है, जो विवेक में हमसे कहीं ज्यादा बढ़े-चढ़े मालूम होते हैं। वे बुद्धिमान लोग इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि विज्ञान को व्यवहारिक रुप देना कभी अच्छा न होगा। उन्हें शायद यह पहले से ही मालूम था कि, मशीनों के उच्छृंखल प्रयाग के क्या क्या दुष्परिणाम हो सकते हैं। यही कारण था कि प्राचीन काल के यूनानियों. भारतियों और चीन वालों ने वैज्ञानिक खोजों और उन्नति के साथ भी, वैज्ञानिक अनुसंधानों को एक म्यूजियम या सीमित दायरे में ही रखा और उसको सर्व-साधारण में उपयोग करने के लिए कभी इजाजत नहीं दिया।

१७७२ ई० में...लियन लुँग ने जो जवाब तीसरे जार्ज को भेजा था वह बड़ा मजेदार खरीता है।...उसमें लिखा है...सारी दुनिया पर राज्य करते हुए मेरी निगाह में केवल एक ही मकसद है यानी आदर्श शासन कायम करना और राज्य के प्रति अपने कर्तव्यों पर अमल करना। आश्चर्य भरी और बेशकीमत चीजों से मुझे दिलचस्पी नहीं है। मुझे...तेरे देश की बनी हुई चीजों की जरूरत नहीं है। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ४७२ प्रथम खण्ड)

विज्ञान के लिए सर्व-प्रथम स्थाई निधि टौलमी-प्रथम ने ही स्थापित

की। म्यूजेज कहलाने वाली यूनान की विद्या की नौ अधिष्ठात्री देवियों के प्रीत्यर्थ इसने अलेकजेंड्रिया में एक म्यूजियम (अथवा विद्यामन्दिर) बनवा कर उन्हीं देवियों के नाम से अर्पण कर दिया जो सिकन्दरिया का म्यूजियम हुआ। दो तीन पीढ़ियों तक सिकन्दरिया में बड़ा महत्व पूर्ण वैज्ञानिक काम हुआ। ज्यामिती शास्त्र के निर्माता 'यूक्लिड' पृथ्वी के आकार का पता लगाने वाले ऐराटौस्थेमीन-जिनकी निकाली हुई पृथ्वी के व्यास की लम्बाई में अब केवल पचास मील की ही अशुद्धि पाई जाती है, Conic Section (शंकु गणित) के लेखक एपोलोनियस, तारों का सर्व प्रथम मानचित्र और सूची बनाने वाले हिपारकस और वाष्प चालित एंजिन के सर्वप्रथम आविष्कारक हैरो, ये सब महापुरुष वहाँ के वैज्ञानिक आकाश के जाज्वल्यमान नक्षत्रों में अधिक प्रभा पूर्ण नक्षत्र थे। प्रसिद्ध विज्ञान वेत्ता आर्कमिडीज, साइराक्यूज से अध्ययन करने के लिए यहाँ आया था, और इस म्यूजियम में बहुधा आता जाता रहता था। हैरो फिलस शरीर-रचना शास्त्र के अत्यन्त दिग्गज यूनानी पंडित थे और कहा जाता है कि वे जीवित प्राणियों के अंग-छेदन की क्रिया करते थे। (संसार का संक्षिप्त इतिहास, ले० एच० जी० वैल्स, अनु० श्री नारायण चतुर्वेदी पृ० १७२, १७३ प्रथम खण्ड)

आधुनिक वैज्ञानिक प्रवृत्ति लेकर अकेले ज्ञानार्जन की व्यवस्था करना ही टौलमी-प्रथम का ध्येय न था। अलेकजेंड्रिया के पुस्तकालय में उसने समस्त विश्व-ज्ञान को एकत्रित करने का भी प्रयत्न किया था। (संसार का संक्षिप्त इतिहास, ले० एच० जी० वैल्स, अनु० श्री नारायण चतुर्वेदी, पृ० १७३)

वैज्ञानिक गवेषणाओं और उनके प्रचार का कार्य विघ्न बाधाओं के होते हुए भी चलता रहा। एक कठिनाई तो यह थी कि इस समय लोग दार्शनिक को 'भलमानुस या शरीफ' समझते थे और उसके तथा व्यापारियों और कारीगरों के बीच बड़ा सामाजिक अन्तर था। उन दिनों काँच

का कार्य करने वालों तथा ठठेरों का बाहुल्य था पर इन वैज्ञानिकों से उनका कुछ भी मानसिक संपर्क न था। काँच का कारीगर अत्यन्त सुन्दर रंग-बिरंगी शीशियाँ अथवा पोत बनाता था पर उसने लैन्स (आकार-वर्धक काँच) अथवा फ्लोरेंस के जैसे सुप्रसिद्ध एवं सुन्दर पान-पात्र कभी नहीं बनाए। स्वच्छ काँच बनाने की ओर उसका ध्यान कभी नहीं गया। इसी प्रकार धातु का कार्य करने वाले कुशल कारीगर हथियार और आभूषण तो अच्छे से अच्छे बनाते थे, परन्तु उन्होंने वैज्ञानिक (तुला) तराजू कभी न बनाई। दार्शनिक भी अणु और पदार्थों की प्रकृति के विषय में तो बहुत विचार करता था, परन्तु उसे मुलम्मा, रंग इत्यादि का व्यवहारिक ज्ञान न था। यही कारण था कि अपने अल्प अवसर के दिनों में अलेक्ज़ेंड्रिया ने न तो कोई सूक्ष्म दर्शक यन्त्र ही उत्पन्न किया और न कोई रसायन शास्त्र ही। यद्यपि हैरो ने वाष्प चालित एंजिन का आविश्कार किया, तथापि उसकी सहायता से न कभी पानी फेंका गया, न नाव ही चलाई गई, और न कोई अन्य लाभदायक कार्य ही हुआ। औषधि विभाग को छोड़कर, विज्ञान का व्यवहारिक उपयोग उस समय बहुत कम किया गया। (संसार का संक्षिप्त इतिहास, ले० एच० जी० वैल्स, अनु० श्री नारायण चतुर्वेदी, पृ० १७१ प्रथम खण्ड)

छापना तो मनुष्यों को पाषाण युग में भी आता था। मुद्राओं का चलन प्राचीन सुमेरिया में भी था। परन्तु कागज का बाहुल्य न होने के कारण पुस्तकों के मुद्रण में कोई लाभ न था यह भी संभव है कि नकल नवीसों के अपने व्यवसाय की रक्षा करने की प्रवृत्ति ने भी, पुस्तक मुद्रण की कला के विकास होने में बाधा दी हो। (संसार का संक्षिप्त इतिहास, ले० एच० जी० वैल्स, अनु० श्री नारायण चतुर्वेदी, पृ० १७५ प्रथम खण्ड)

ई० पू० तृतीय शताब्दी में यूनानियों की मानसिक उन्नति का केन्द्र केवल अलेक्ज़ेंड्रिया ही न था। अलेक्ज़ेंडर के अल्प कालीन बृहत साम्राज्य के छिन्न-भिन्न होने वाले अनेक भागों में कितने नगर पड़े हुए

थे जहाँ मानसिक जीवन की ज्योति जगमगा रही थी। उदाहरणार्थ सिसली का साइरा क्यूज नामक यूनानी नगर था जिसमें दो शताब्दी पर्य्यन्त विचार और विज्ञान की खूब चर्चा रही। इसी प्रकार एशिया-माइनर के परगैमन नामक नगर में भी एक बृहत् पुस्तकालय था। (संसार का संक्षिप्त इतिहास, ले० एच० जी० वैल्स, अनु० श्री नारायण चतुर्वेदी, पृ० १७६ प्रथम खण्ड)

प्राचीन काल के इन बुद्धिमान शासकों और वैज्ञानिकों ने यदि विज्ञान को व्यवहारिक रूप मशीनों के रूप में देने की कोशिश की होती तो संभव था आज हम बीसवीं सदी तक न आने पाते, अथवा हमारी दशा आज की अपेक्षा कहीं अधिक भिन्न होती। योरप का रेनेसेन्स अठारवीं शताब्दी में पैदा हुआ और अभी दो शताब्दी भी पूरी न हो पाई, संसार की मानवता कराह उठी। अब मानव का स्वतन्त्र व्यक्तित्व भी साम्य-वाद के प्रादुर्भाव के कारण, खतरे में पड़ गया है। अधि*ांश मानव इस वैज्ञानिक उपयोगिता तथा व्यवहार के कारण एक भीषण विभीषिका का सामना करने को विवश हो गई है।

प्राचीन काल के वैज्ञानिकों व शासकों या सरकारों ने यदि वैज्ञानिक खोजों को व्यवहारिक रूप दिया होता तो रेनेसेन्स ईसा के बहुत पूर्व ही हो गया होता और फिर एशिया का शोषण करने के बजाय, एशिया-वासी ही योरप व अमेरिका का शोषण करते नजर आते। यदि प्राचीन काल के निवासी आज की भाँति उच्छृंखल हो गए होते तो संभव है आज के शोषित एशिया की जगह योरप और अमेरिका ही साम्यवाद के चंगुल में फसे होते। हम अपने पूर्वजों के इस विवेक के लिए उन्हें दोषी नहीं ठहरा सकते। हमें स्वयं ही अपनी करनी पर पछतावा होना चाहिए।

विज्ञान का व्यवहारिक उपयोग करने से लोगों का ध्यान उस ओर आकर्षित होता है। इस ध्यान और उत्साह से ज्ञान की उन्नति को उत्ते-जना मिलती है और उससे उसकी उन्नति कुछ दिनों चलती है अतएव जब टौलमी–प्रथम तथा द्वितीय का मानसिक कौतूहल न रहा, तब काम को चालू रखने के लिए कोई हेतु न रह गया। म्यूजियम के वैज्ञानिक अनुसंधान ऐसी हस्त लिखित पुस्तकों ही में धरे रह गए जिन्हें कोई न जानता था, और जब तक योरप में मानसिक पुनरुत्थान (रेनेसेन्स) न हुआ तब तक मनुष्य जाति को उनका पता भी न चला। फिर, योर-पीय पुनरुत्थान के समय, वैज्ञानिक कौतूहल को पुनर्जीवित होने पर ही मानव समाज को इनका अस्तित्व मालूम हुआ। (संसार का संक्षिप्त इतिहास, ले० एच० जी० वैल्स, अनु० श्री नारायण चतुर्वेदी, पृ० १७५ प्रथम खण्ड)

संसार उसी पुराने ढर्रे पर चला जाता था और उसको इस बात की खबर ही न थी कि भौतिक-तत्व-ज्ञान का बीज बो दिया गया है और इसके फलस्वरूप एक दिन समस्त जगत् में क्रांति मच जायगी।......
...अगले सहस्र वर्ष तक अरस्तू का बोया हुआ यह बीज यों ही अन्धकार में पड़ा रहा। परन्तु बाद में इसमें कुछ स्पन्दन हुआ और अंकुर निकलने लगे। कुछ ही शताब्दियों में वह अंकुर ज्ञान और स्पष्ट विचारों का इतना विशद वृक्ष हो गया कि उससे आज समस्त मानव-जीवन ही परिवर्तित हो रहा है। (संसार का संक्षिप्त इतिहास, ले० एच० जी० वैल्स, अनु० श्री नारायण चतुर्वेदी, पृ० १७६ प्रथम खण्ड)

श्रमजीवियों के वर्तमान कष्टों के जो कारण हैं वे मानव प्रकृति में दृढ़तापूर्वक अपनी जड़ जमा चुके हैं और जब तक लोग अपने वर्तमान दैनिक जीवन क्रम तथा विचारों आदि में बहुत बड़ा परिवर्तन करने के लिए तैयार न हो जाँय तब तक किसी प्रकार के सुधार या उन्नति की आशा नहीं की जा सकती। (साम्यवाद, ले० बाबू रामचन्द्र वर्मा, पृ० ६५)

इंगलैंड का औद्योगिक विकास और उसका अपने उपनिवेषों से प्राप्त हुआ वैभव, शीघ्र ही योरप के अन्य देशों के लिए आश्चर्यकारी और इर्षा का कारण बन गया। फ्रांस, जर्मनी और अमेरिका भी औद्योगिक क्षेत्र में कमर कस कर कूद पड़े। उन्होंने भी नई नई मशीनों को ईजाद किया, बनाया और उनसे माल तैयार करने लगे। बाद में जाकर सन् १८६५ में जापान ने भी अपने बन्द दरवाजे को खोल दिया और बहुत शीघ्रता से इस औद्योगिक होड़ में योरपीय देशों के मुकाबले में आगया। मशीनों के विकास के कारण अब बहुत ज्यादा माल तैयार कर सकना संभव हो गया। ज्यादा माल तैयार करने के लिए कच्चे सामानों की भी आवश्यकता पड़ी। इसके अतिरिक्त अब यह प्रश्न भी था कि इस बनाए हुए, कारखानेदारों के, उपयोगी माल की बिक्री कैसे हो। दो ही उपाय सामने थे। एक तो अपने ही देश में उसे बेचने का था, या फिर दूसरे देशों में। इनका पहला उपाय, अपने ही देश में बेचने का, असफल रहा, क्योंकि कारखानेदारी की व्यवस्था के कारण देश की सारी अर्थ-व्यवस्था लंगड़ी होने लगी थी। कितने व्यक्ति बेकार हो गए थे। बड़ी संख्या में मजदूरों और नौकरी पेशा वालों की भी आर्थिक अवस्था अच्छी न थी। इसलिए सभी देशों के लिए यह अनिवार्य हो गया कि, अपने यहाँ के आर्थिक लँगड़ेपन को दूर करने के लिए तथा अपने अतिरिक्त माल को बेचने के लिए, वे अन्य देशीय बाजारों को ढूढ़ें और अन्य देशवासियों का शोषण कर अपने को अधिक समृद्धिशाली बनावें।

शीघ्र ही इन सभी औद्योगिक देशों में व्यापारिक होड़ भीषण रूप से प्रारम्भ हुई। इस व्यापारिक होड़में जीवन मरण

का सवाल था। यह एक ऐसी होड़ थी जो अब तक के इतिहास में कभी न हुई थी। इस होड़ ने जोर जबर्दस्ती करने को मजबूर किया और शीघ्र ही सभी देश अपने अपने बाजारों को कब्जे में करने के लिए अन्य देशों पर धावा करने लगे और आपस में भी लड़ने लगे। विज्ञान का रूख लड़ाई के शस्त्रों तथा विनाशक पदार्थों की ओर मुड़ा और उसने ऐसी ऐसी मशीनें और नाशक पदार्थों को बना डाला जिससे मानव संहार अत्यन्त सरल हो गया। अधिक शक्ति शाली राष्ट्रों ने अपने उपनिवेश सर्वत्र बना लिया और दूसरे कमजोर राष्ट्र बौखला गए। पिछड़े हुए अद्यौगिक देशों ने अपनी शक्ति, संगठन व विज्ञान को उन्नत करना शुरु किया और अन्त में समस्त विश्व पर विजय पाने तक का स्वप्न देखने लगे। जर्मनी और जापान तथा इटली ऐसे हा राष्ट्रों की श्रेणी में थे। एक ओर तो इंगलैंड और फ्रांस आपसी कशमकश व युद्धों के बाद अन्त में अपने अपने उपनिवेश बना चुके थे, दूसरा ओर जापान-कोरिया, रूस व चीन को हड़पने की लगातार कोशिश कर रहा था। १८६४ ई० में चीन को, और १६०४—०५ ई० में रूस को, जापान ने पराजित किया, लेकिन यह विजय स्थाई न हुई। शीघ्र ही इन औद्योगिक राष्ट्रों में खुल कर युद्ध हो गया जो प्रथम विश्व युद्ध (१६१४ - १८) के नाम से प्रसिद्ध है।

जर्मनी, फ्रांस और संयुक्त-राज्य अमेरिका के धीरे-धीरे उसकी बराबरी में आगे बढ आने के कारण इंगलैंड का औद्योगिक नेतृत्व भी धीरे-धीरे कम होता गया। इस सदी के आखिरी दिनों में परिस्थितियाँ अपने हद तक पहुँच चुकी थीं। योरप के इन ताकतों की महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए दुनिया बहुत छोटी थी। हरएक शक्ति को एक दूसरे से डर, घृणा और इर्षा थी, और इसी डर और घृणा ने उन्हें अपनी

फौजों और लड़ाकू जहाजों की तादाद बढ़ाने के लिए मजबूर किया। विनाश के इन साधनों के सम्बन्ध में बड़ी सरगरमी से होड़ शुरू हुई। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ५७० प्रथम खण्ड)।

औद्योगिक पूँजीवाद का सारा संगठन और उससे उत्पन्न साम्राज्य-वाद दुनिया को संघर्ष और लड़ाई झगड़ों की तरफ ही ले जाते हैं। जन्म से ही उनमें ऐसी परस्पर विरोधी बातें मिली हुई हैं, जिनका आपस में कभी मेल नहीं हो सकता, क्योंकि उनका आधार है लड़ाई, होड़ और आर्थिक शोषण। इस तरह पूर्व में खुद साम्राज्यवाद की उपज राष्ट्रीयता ही उसकी कट्टर शत्रु बन गई। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ५७२ प्रथम खण्ड)

राजधानियों के खास शहर लंदन, पेरिस, बर्लिन न्यूयार्क, ज्यादा से ज्यादा बड़े होते गए। उनकी इमारतें ज्यादा से ज्यादा आलीशान होती गईं। ऐशो-आराम बढ़ते गए और विज्ञान ने मनुष्य की मेहनत और घिस-घिस को कम करने और जीवन के सुख और आनन्द में वृद्धि करने वाले हजारों उपाय ढूंढ़ निकाले। खुशहाल अथवा समृद्धिशाली लोगों के जीवन में मधुरता और शिष्टता अथवा मिठास और तहजीब आ गई और उनमें एक तरह का सन्तोष, आत्मविश्वास और सौजन्य पैदा हो गया। यह एक सभ्यता की बिल्कुल मीठी दुपहरी सी मालूम होती है।

लेकिन अगर तुम इसकी सतह के नीचे झाँक कर देखोगी तो तुम्हें एक अजीब गोलमाल और बहुत से नजारे दिखाई देंगे। क्योंकि असल में यह समृद्धि, संस्कृति, योरप के ज्यादातर उच्चवर्गों के लिए ही बनी थी और बहुत से देशों और अनेक जातियों के शोषण पर यह टिकी हुई थी। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहरलाल नेहरू, पृ० ५८१ प्रथम खण्ड)

४

वर्तमान में मशीनों का प्रभाव

प्रथम विश्व युद्ध (१९१४– १८) समाप्त हो गया था। इसी बीच (१९१७ ई०) बोल्शेविक पार्टी ने रूस में जारशाही का पूर्ण खात्मा कर शासन पर अधिकार जमा लिया। उन्होंने संसार में सर्वप्रथम साम्यवादी राज्य की स्थापना, रूस जैसे विशाल देश में की। लीग आफ नेशन्स (१९२० ई०) की स्थापना की गई, लेकिन यह केवल इंगलैण्ड और खास कर फ्रांस के हाथ की कठपुतली बन गई। इटली में फासिज्म (मुसोलिनी) ने अधिकार कर लिया (१९२२ ई०), और रूस ने पंचवर्षीय योजना (१९२८ ई०) द्वारा अपनी स्थिति सुधार ली। अमेरिका ने इस समय तक औद्योगिक क्षेत्र में बहुत ज्यादा उन्नति कर ली थी। समस्त संसार के बाजारों में उसके बनाए हुए उपयोगी सामान छाए हुए थे। अमेरिका के इस प्रकार से संसार में पदार्पण का नतीजा यह हुआ कि योरपीय देशों का औद्योगिक विकास ठप होने लगा और वहाँ बेकारी फैलने लगी। एक ओर रूस अपने साम्यवादी सिद्धान्त में निरन्तर उन्नति कर रहा था, दूसरी ओर इसके विरुद्ध, योरप में भीषण गड़बड़ी मची हुई थी। इन सबके मूल में औद्योगिक असंतुलन व माल के खपत का प्रश्न था। इंगलैंड

तो अपने उपनिवेशों, विशेषकर भारत के ही भरोसे बैठा था, लेकिन जर्मनी, इटली और जापान अपने लिए बाजारों को खोजने के लिए छटपटा रहे थे। अमेरिका की होड़ से बचने का तरीका यही हो सकता था कि ये सभी देश अपने-अपने उपनिवेश कायम कर लें। योरप के बेकार श्रमिक (१९२९ ई०) साम्यवाद की ओर आकर्षित हो रहे थे। साम्यवाद के कारण विचारशील लोगों ने देखा कि सारी पुरानी परम्परा अब समाप्त होने वाली है, साथ ही शासक वर्ग ने भी इस स्थिति को महसूस किया और सभी ने मुसोलिनी के फासिज्म और डिक्टेटरशिप में ही अपना त्राण देखा। योरप के मजदूरे बुरी तरह रूस की ओर आकर्षित हो रहे थे, इसलिए शासक वर्गों के लिए रूस, उनके आँख का एक किर्रा बन गया।

शीघ्र ही संसार में फिर साम्राज्यवादी नीति का प्रयोग शुरू हो गया। जापान ने (१९३१ ई०) मंचूरिया पर कब्जा कर लिया और बाद में चीन के तीन प्रान्तों पर भी। जर्मनी में हर हिटलर ने सारे अधिकारों पर कब्जा कर लिया और सारी अन्य प्रमुख पार्टियों को समाप्त कर दिया (१९३२-३३ ई०)। नाजीवाद का इस प्रकार जन्म हुआ। फासिज्म ने अब अपनी शक्ति बढ़ानी शुरू की। शीघ्र ही (१९३३-३९ ई०) इनकी शक्ति चरम सीमा पर पहुँच गई और हर-हिटलर की सैनिक शक्ति ने क्रूर संहार, भयंकरता और यहूदियों का निष्कासन प्रारम्भ कर दिया। अब यह भयंकरता विश्व-विजय की आकांक्षा में बदल गई। सर्व-प्रथम इनका गुस्सा रूस पर ही उतरा। जर्मनी इटली और जापान ने एक गुटबन्दी की, इंगलैण्ड और फ्रांस ने उसको मान्यता प्रदान की, और जर्मनी का

पुनः शस्त्रीकरण किया गया। चेकोस्लाविया पर शीघ्र ही कब्जा कर लिया गया (१६३८ ई०)। इटली ने अबीसीनिया पर हमला बोल दिया (१६३५ ई०) और जहरीली गैस तथा बमों का प्रयोग कर उसे जीत लिया (१६३५-३६ ई०)। जापानी साम्राज्य ने चीन विजय के हेतु कूँच किया (१६३७ ई०)। फासिस्ट शक्तियों ने मिलकर (फैंको, मुसोलिनी और हिटलर) स्पेन का सफाया कर दिया (१६३६ ई०)। रूस ने एक अत्यन्त ही विवेक-पूर्ण व चालाकी की कारवाई की। उसने जर्मनी से 'सामुहिक रक्षा' की ओट में 'न आक्रमण' करने की सन्धि कर ली (१६३६ ई०)। इस प्रकार रूस ने थोड़े समय के लिए दम मारने की फुर्सत पा ली। अब हिटलर ने एक ओर से निश्चिन्त होकर दूसरी ओर मुख मोड़ा और उसने पोलैंड पर आक्रमण कर दिया। इसका परिणाम शीघ्र ही द्वितीय विश्व-युद्ध में परिणित हो गया (१६३६-४५ ई०)।

द्वितीय विश्व-युद्ध ने संसार में भीषण क्रान्ति व परिवर्तन कर दिया। पुरानी शक्तियों की रीढ़ टूट गई और नई शक्तियों ने जन्म लिया। सर्वत्र राष्ट्रीयता की लहर व्याप्त हो गई। इंगलैंड और फ्रांस के उपनिवेशों ने अपने-अपने देशों को स्वतंत्र करने के लिए संघर्ष प्रारम्भ कर दिया। हिन्दुस्तान ने इस संघर्ष को एक नई रोशनी प्रदान की! महात्मा गांधी के नेतृत्व में सत्याग्रह और अहिसात्मक संघर्ष व आन्दोलन उग्र रूप धारण कर चुका था। अन्य एशियाई देशों ने भी जागृति का अनुभव किया और आन्दोलन खड़ा कर दिया, जो कभी-कभी सशस्त्र भी होता था। भारत चीन, हिन्द-चीन, बर्मा, मलाया, इण्डोनेसिया, फिलीपाइन्स कोरिया इत्यादि देशों ने अपनी गुलामी का जुआ उतार फेकने की पूरी शक्ति के साथ कोशिश

की। अफ्रीका में भी साम्राज्यवादी देशों के खिलाफ एक नई जागृति पैदा हो गई थी। शीघ्र ही भारत (१६४७ ई०), बर्मा, चीन (१६४३ ई०), इण्डोनेसिया आदि देशों को स्वतन्त्रता मिल गई, लेकिन साम्राज्यवादी देशों ने अपनी आजीविका के लिए कुछ उपनिवेशों पर कब्जा रखने की जी-ताड़ कोशिश की और उसमें सफल भी हुए। उनकी इस सफलता के लिए अमेरिका का आर्थिक व राजनैतिक अनुआपन बहुत कुछ हद तक उत्तरदायी था। ब्रिटेन-मलाया, हांगकांग और अफ्रीका से चिपका रहा और फ्रांस-हिन्द-चीन, मोरक्को पर कब्जा जमाए रहा।

द्वितोय विश्व युद्ध में विज्ञान और मशीनों ने अपना पूर्ण चमत्कार दिखाया। एटम बम जैसे भयानक नरसंहारी अस्त्रों का आविश्कार व प्रयोग हुआ। इस एटम बम ने ही जापान को अपने शस्त्रों को रखने के लिए मजबूर कर दिया। हिरोशिमा व नागासाकी पर अणु बम प्रहार (१६४५ ई०) ने उसे बिना शर्त आत्म समर्पण करने को बाध्य किया। इसके बाद दुनिया में एक नया दौरा प्रारम्भ होता है। संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की गई और बड़े तीन – अमेरिका, इंगलैंड और रूस में शीघ्र ही शांति सन्धि हुई (१६४५ ई०)। लेकिन अब दुनिया दो गुटों में बट गई थी (१६४७ ई०)। एक ओर अमेरिकी गुट था, जो अपने को 'स्वतन्त्र संसार' कहता था और दूसरी ओर साम्यवादी रूसी गुट था, जो अपने को समस्त मानव का उद्धारक कहलाने की आकांक्षा रखता था। योरप में पूर्वी योरपीय जनता रूसी गुट में घुस गई थी। पश्चिमी योरपीय शक्तियाँ, जिनमें ब्रिटेन भी था, अपनी आर्थिक सुदृढ़ता फिर से बनाने में अपने तईं असमर्थ थे। सर्व-प्रथम

और सबसे महत्वपूर्ण कारण तो यह था कि पुरानी साम्राज्यवादी शक्तियों का ह्रास हो चुका था। ब्रिटेन और फ्रांस के उपनिवेश उनके हाथ से निकलते जा रहे थे। इस प्रकार उनकी आर्थिक सम्पन्नता को धारण करने वाले खंभे ही मानो गिर रहे थे। दूसरा कारण अमेरिका की बढ़ी हुई उत्पादन शक्ति, धन और सैनिक शक्ति थी। इस बढ़ी हुई शक्ति का श्रेय विश्व के दो युद्धों को ही प्राप्त था। इसका नतीजा यह हुआ कि अमेरिका विश्व का हर मामलों में अगुआ बन गया और सभी अन्य 'स्वतन्त्र देश' उसके मोहताज हो गए। अमेरिका को इस बात का पूर्ण विश्वास है कि विश्व के इतिहास में यह (बीसवीं सदी) 'अमेरिकन सदी' है। तीसरा कारण रूस का प्रादुर्भाव था जो कि शान्ति काल में और युद्ध काल में, दोनों ही दृष्टियों से संसार की द्वितीय महान् शक्ति सिद्ध हो चुका था। उसने अपने घर में साम्यवाद को प्रश्रय दिया और संसार के लिए प्रजातन्त्र तथा सभी देशों में जनता के लिए 'आत्म-निर्णय' की नीति को ग्रहण करने का वादा किया। रूस और उससे संबन्धित पूर्वी योरपीय प्रजातंत्र देशों (पोलैण्ड, चेकस्लोवाकिया, हंगरी, रूमानिया, बल्गेरिया, अल्बानिया), चीन, आउटर-मंगोलिया और उत्तरी कोरिया, सभी देश जो लेनिन और स्टालिन के मत से प्रभावित थे, यह कहने लगे कि यह युग क्रान्ति का और साम्यवादी है। इस प्रकार द्वितीय-विश्व-युद्ध ने समस्त संसार में संघर्ष शील महान् शक्तियों को जन्म दिया। संसार की समस्याएँ बिना सुलझे ही रह गई और सच पूछा जाय तो यह समस्याएँ और भी अधिक जटिल और व्यापक हो गईं।

आर्थिक व व्यापारिक मामलों में भी संसार इन दो प्रसिद्ध

गुटों में बट गया। एक अपने को 'स्वतन्त्र उद्योग' की प्रणाली का मानने वाला कहता था और दूसरा साम्यवादी आर्थिक व्यवस्था को। 'स्वतन्त्र उद्योग' के प्रणेता 'स्वतन्त्र संसार' में शस्त्रीकरण की होड़, जिसने कि इनकी आर्थिक अवस्था पर अधिकार कर लिया था, अब १९५१ के अन्त होने के करीब में कम हो रही थी। लेकिन फिर भी 'निकट भविष्य के युद्ध' की आर्थिक व्यवस्था अभी १९५२ में ऊपरी तौर से बिल्कुल समाप्त होने के निकट न थी। अमेरिकी निवासियों ने अपने ऊपर लगे हुए और अत्यन्त ही ज्यादा बढ़ाए हुए टैक्सों को बर्दाश्त किया, यद्यपि सामरिक सामग्रियों का उत्पादन व निर्माण अनेक दृष्टियों से अपने निश्चित किए हुए लक्ष्य व मात्रा से ब्रिटेन, फ्रांस और अमेरिका में भी, कम होने की सूचना मिली थी। अमेरिका के 'पदार्थ संग्रह' में कमी करने के कारण १९५२ के शुरू में कच्चे मालों के मूल्य में तेजी से गिरावट हुई और मुख्यतः कच्चे माल के उत्पादक देशों में (जिनमें भारत और पाकिस्तान भी शामिल हैं) सर्वत्र मालों के जमाव का भय पैदा हो गया। इस संकट ने जो मजदूरी और मूल्य, कम कदरी और बेकारी और उपयोगी मालों की कमी का था, 'स्वतन्त्र उद्योग' की प्रणाली के संसार में सामाजिक बेचैनी को बहुत ज्यादा बढ़ा दिया।

रूस की 'साम्यवादी-अर्थ व्यवस्था' ने मास्को में एक विश्व आर्थिक सम्मेलन बुलाकर अप्रैल १९५२ में एक नया दौरा शुरू किया। इसने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बराबरी, तथा परस्पर के लाभ के दृष्टिकोण पर बढ़ाने की सिफारिश की, जिससे इस युग के आर्थिक अवस्था पर होते हुए तुषारापात से उसकी रक्षा की जा सके। इस गुट के सदस्यों ने,

पश्चिमी गुट के बहिष्कार करने के कारण, आपसी व्यापारिक समझौते के मुताबिक अपना स्वयं एक अलग बाजार बना लिया। निश्चित की हुई आर्थिक योजनाओं ने, जिनको रूसी गुट ने मान्यता दिया था और जिसमें चीन, उत्तरी कोरिया, आउटर मंगोलिया, और पूर्वी जर्मनी भी शामिल थे, एक प्रकार से औद्योगिक व कृषि विकास में और आगे सफलता पाने का दावा किया। 'वोल्गा डॉन कैनाल' की तैयारी वर्ष की निर्माण योजनाओं के अन्तर्गत, एक सबसे बड़ी सफलता थी (१९५२ ई०)।

आम तौर से पश्चिम या 'स्वतन्त्र संसार,' जैसा कि वह स्वयं अपने को कहता है, जिसका संगठन 'स्वतन्त्र उद्योग' और सम्पत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार की भित्ति पर आधारित है, अमेरिका की अर्थ-व्यवस्था के ही चारो तरफ घूमता है। पश्चिमी और पूर्वी योरप के बीच का व्यापार १९५० में बहुत तेजी से घटा जिसका नतीजा यह हुआ कि ये पश्चिमी राष्ट्र अमेरिका के और भी अधिक मोहताज हो गए। अमेरिका की आर्थिक व्यवस्था भी कुछ अजीब सी है। उसके पास बाहर दूसरे देशों को भेजने के लिए तो बहुत ज्यादा तैयारी माल मौजूद है, लेकिन उसकी निजी आवश्यकता मालों को दूसरे देशों से मंगाने की बहुत कम है। उदाहरण के तौर पर १९४८ में उसका 'यात,' 'आयात' से ५४७१ मि० (m) डालर, १९४९ में ५३७८ मि० डालर, १९५० में १३१९ मि० डालर और १९५१ के दस महीनों में २७८५ मि० डालर अधिक था। अमेरिका का स्वर्ण भंडार, जिसका कुल मूल्य २२१०० मि० डालर, १ अक्तूबर १९५१ को था, यानी यह 'स्वतन्त्र संसार' के कुल स्वर्ण भंडार का ६० प्रतिशत हुआ। इस स्वर्ण भण्डार के ही

कारण अमेरिका अपना लाभकारी व्यापारिक सन्तुलन बनाने में समर्थ हुआ है और इसी भण्डार के ही सहायता से १६५१ के 'पारस्परिक सुरक्षा ऐक्ट' व अविकसित देशों के (Point Four Programme) लिए, वह सहायता व कर्ज देना जारी रख सका।

(Mostly With The Help of Current Affairs 1953)

संसार के व्यापारिक क्षेत्र को दो अलहदा गुटों में बट जाने के कारण कम से कम स्वतन्त्र दुनिया की आर्थिक व्यवस्था पर बहुत अधिक धक्का पहुँचा है। पश्चिमी योरप जिनमें अधिकांश की जीविका इस व्यापार पर ही आधारित है, उसमें कमी हो जाने से वह असहाय हो गया है। इन देशों में बड़ी बड़ी मशीनें और कारखाने हैं, लेकिन अब यह मशीनों द्वारा माल तैयार कर बेचें तो किसको बेचें! अमेरिका तो स्वयं समस्त वस्तुओं का भण्डारी बना है और अन्य कम विकसित देश अमेरिका की सहायता व कर्ज से ही अपनी जरूरत की वस्तुएँ, उससे ही खरीद लेते हैं। इन पश्चिमी देशों, विशेषकर इंगलैण्ड के पास न तो विशेष उपयोगी कच्चा माल है और न तैयारी माल को बेचने के लिए बाजार। इनके पास केवल मशीनें ही मशीनें हैं जो शीघ्र ही शायद अनिश्चित काल के लिए विश्राम करने लगे। फिर इन पश्चिमी देशों की स्थिति कुछ अजीब सी नजर आने लगेगी। 'स्वतन्त्र संसार' के 'स्वतन्त्र उद्योग' व 'सम्पत्ति पर निजी अधिकार' की प्रणाली और मशीनों के समागम के साथ-साथ इन योरपीय राष्ट्रों में भीषण बेकारी, दरिद्रता और भुखमरी का दृश्य उपस्थित हो जायगा और जिन मशीनों के ही कारण उन्होंने जादू की भाँति

अपने को वैभववान् बना लिया था, उन्हीं मशीनों के ही कारण उनकी उतनी ही शीघ्रता से दुर्दशा भी होगी !

इसका कारण यह है कि मशीनों के व्यवहार और 'स्वतंत्र उद्योग' की प्रणाली होने के कारण पूँजी का केन्द्रीकरण होने लगता है। जब किसी देश में उसके मशीन द्वारा बनाए हुए माल, उसी देश में बेचने की कोशिश की जाती है तो उस देश के निवासियों का ही शोषण प्रारम्भ हो जाता है। थोड़े से कारखानेदार जिनके पास शक्तिशाली मशीनों की बहुतायत होती है, समस्त कच्चा माल खरीद कर, थोड़े से मजदूरों को वेतन देकर सारे उत्पादन व वस्तु निर्माण को पूरा कर लेते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को व्यवहारिक वस्तुओं की आवश्यकता होती है, जिसे वह मशीन मालिक से ही खरीदता है। इस प्रकार सभी देश-वासियों का पैसा तो कारखानेदार के पास इकट्ठा होता जाता है, लेकिन वह 'सम्पत्ति पर निजी अधिकार' वाला व्यक्ति अपनी भारी सम्पदा दूसरों को बाँटता नहीं। मशीनों की व्यवस्था में तो वैसे भी स्वाभाविक तौर से बेकारी अथवा अर्ध-बेकारी सर्वत्र रहती है। इसलिए कुछ कारखानेदारों और उसके आश्रितों को छोड़कर देश-व्यापी दरिद्रता, बेकारी और भुखमरी फैल जाती है।

मशीनों के पदार्पण और विकास के ही कारण औद्योगिक देशों ने मजबूर होकर साम्राज्यवादी नीति ग्रहण की थी जिसका नतीजा प्रथम विश्व-युद्ध हुआ था। इन मशीनों की बाढ़ के ही कारण योरप में बेकारी और लोगों की मुसीबतें बढ़ीं थीं जिसके कारण साम्यवाद की उत्पत्ति और उन्नति हुई थी, यहाँ तक कि रूस का विशाल देश भी साम्यवादी अधिकार में हो गया। द्वितीय-विश्व युद्ध के मूल में भी इन मशीनों को ही हम

पाते हैं। निश्चय ही मशीनों ने साम्यवाद को जन्म दिया। साम्यवाद के विरोध व साम्राज्यवादी नीति के कारण फासिज्म का जन्म हुआ और द्वितीय-विश्व युद्ध के बाद आज संसार दो गुटों में बटा हुआ है। मशीनों की घड़घड़ाहट सर्वत्र जारी है साथ ही हमारी यह खुश किस्मती ही है कि अभी ठंडा युद्ध ही जारी है, यद्यपि कभी-कभी यह सीमित क्षेत्र में गर्म भी हो जाता है, जैसा कि प्रत्यक्ष कोरिया व चीन में दृष्टिगोचर होता है (१९५३ ई०)।

जहाँ दो सर्व-शक्तिशाली मिलें, वहाँ उपद्रव का होना लाजिमी है। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० २८६ प्रथम खण्ड)

योरपीय देशों जैसे इंगलैंड और फ्रांस आदि के व्यापार को धक्का लगने के कारण उनकी आर्थिक स्थिति भी शोचनीय हो गई है। आर्थिक दुरावस्था ही समस्त पीड़ित जनता को साम्यवाद की ओर आकर्षित करती है, जो कि अमेरिका जैसे सर्व-शक्तिमान् देश के लिए बड़ी लज्जा की व खतरनाक बात होगी। इसलिए वह इनकी वर्तमान दुरावस्था को दूर करने के लिए, अपने विपुल स्वर्ण भंडार को खर्च कर रहा है। इस स्वर्ण भंडार ने फिलहाल स्थिति संभाल ली हो, ऐसा हो सकता है लेकिन यह रवैया अधिक समय तक या हमेशा के लिए नहीं चल सकता। इस सहायता को लम्बे समय तक उपयोग करने के कारण देश के उद्योग धन्धों पर भी बुरा असर पड़ेगा और कल कारखानें बन्द होने लगेगें। क्योंकि उपयोगी सामग्रियों को अमेरिका से ही मँगाना पड़ेगा और देश के बनाए हुए कारखानेंदारों की चीजों को खरीदने के लिए किसी के पास पैसा ही नहीं रहेगा। एक प्रकार से हम ऐसी

कल्पना कर सकते हैं मानो निठल्ला भिखारी सेठ की दान शीलता पर ही गुजर बसर करता हो और उसको हाथ पाँव जोड़ता हो।

अमेरिका भी प्रजातन्त्र देश है और स्वतन्त्र व्यक्तित्व के साथ-साथ 'सम्पत्ति पर निजी अधिकार' का हिमायती है। यहाँ पर बड़े-बड़े कारखानेंदार और किसान, उत्पादक हैं। इन कारखानेंदारों और किसानों के ही आयकर इत्यादि पर सरकार की समृद्धि निर्भर करती है। यह कारखानेंदार और किसान ही देश के मुख्य मालिक हैं। इनकी सहायता व इनके आश्रय से ही समस्त अमेरिका निवासियों की परवरिश होती है। लेकिन इन कारखानेंदारों और किसानों का भविष्य भी अच्छा नहीं दिखाई देता। इनके ऊपर भी वज्रपात होने वाला है जो कि अमेरिका जैसे समृद्धि-शाली; व उसके पास उपयोगी वस्तुओं का भण्डार होते हुए भी वहाँ दरिद्रता, बेकारी और भुखमरी का प्रादुर्भाव होगा अमेरिका में बेकारी तो अभी से ही नजर आने लगी है।

कारखानेंदार और किसान को लाभ और उनकी समृद्धि तभी हो सकती है जब उनके तैयारी माल व कच्चे सामान व अनाज वगैरह की खपत बराबर होती रहे। यदि इनके अति-रिक्त माल की खपत नहीं होगी तो कितने ही कारखाने बन्द हो जायेंगे और कितने ही किसानों को भूखा मरना पड़ेगा या दूसरे अन्न उत्पादक किसानों को मोटर चढ़ना और ट्रेक्टर का चलाना छोड़ना पड़ेगा। यह एक कम महत्व की बात अमे-रिका के लिए नहीं होगी। इसका देश-व्यापी असर पड़ेगा। कितने ही कारखानों से सम्बन्धित मजदूरे, कलर्क व अन्य आश्रित बेकार हो जायेंगे। पैसे के अभाव में, और भी अधिक

माल की खपत कम होगी, जिससे अन्य दूसरे कारखाने भी बन्द हो जायेंगे। यह क्रम जारी रहेगा और देश में घोर दुरावस्था व्याप्त हो जायगी।

पूँजीवाद की, जो इतने ज्यादा अर्से से दुनिया के ऊपर हावी रहा है, यह आखिरी टिमटिमाहट है। जिस दिन यह खत्म होगा, और खत्म तो उसे जरूर होना ही पड़ेगा. वह अपने साथ बहुत सी बुराइयों को भी लेता जायगा। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ६३, प्रथम खण्ड)

"It does not fully explain the present anomalous situation which may be aptly described in six words "Scarcity in the midst of plenty" (Amrit Bazar Patrika, dated 28th June 1953, P. 4.)

(भावार्थ—यह हमारी वर्तमान बेतरतीब अवस्था को अच्छी तरह साफ नहीं करता जो कि बिल्कुल पूर्णता से छः शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है "विपुलता में उपयोगी वस्तुओं की कमी"।)

...पूँजीवादी व्यवस्था में अराजकता का प्राधान्य होने के कारण उद्योग-धन्धों में प्रसार होने के कुछ बाद ही एक संकट काल उपस्थित हो जाता है और कितने ही कारखाने बन्द हो जाते हैं। फलस्वरूप मजदूरों की माँग घट जाती है और उन्हें कारखानों से छुट्टी दे दी जाती है।

(मार्क्सवादी अर्थ शास्त्र, ले० श्री भूपेन्द्र नाथ सान्याल, पृ० ३२)

पूँजीवादी समाज में बेरोजगारी के साथ निम्न मध्यम श्रेणी और किसानों की हालत भी गिरती जाती है और इसके कारण भी मजदूरी का दर घटता जाता है, क्योंकि इन श्रेणियों के लोग भी मजदूरों में शामिल होते जाते हैं। नई मशीनें भी ईजाद होती जाती हैं और मजदूरों को बेकार करती जाती हैं। इस प्रकार न केवल संकट काल में बल्कि

पूँजीवाद की साधारण अवस्था में भी बेकारी लगी ही रहती है। (मार्क्सवादी अर्थ शास्त्र, ले० श्री भूपेन्द्र नाथ सान्याल, पृ० ३२)

Sri Chintamani Deshmukh Union Finance Minister, told . . .that the real problem to day was not high prices but the lack of adequate purchasing power among people. (Amrit Bazar Patrika dated 28 th June 1953P. 4.)

(भावार्थ—श्री चिन्तामनि देशमुख, केन्द्रीय वित्तमन्त्री ने कहा... कि असली समस्या आज की यह नहीं है कि वस्तुओं का मूल्य अधिक है, बल्कि यह है कि लोगों में क्रय शक्ति क्षीण हो गई है।)

अमेरिका के सभी निवासियों को काम मिलने और उनकी क्रय शक्ति बनाए रखने के लिए यह जरूरी हो गया है कि उसके कारखानों द्वारा निर्माण किए हुए सामान अन्य दूसरे देशों में अवश्य बिके। लेकिन बिके तो कैसे बिके ? अमेरिका का आयात, निर्यात से बहुत कम है। कोई भी अन्य देश अमेरिका के माल को खरीद सकने में असमर्थ होता है। इसलिए यह स्वाभाविक हो सकता है कि माल व अनाजों का जमाव अमेरिकी सरकार व निवासियों दोनों के लिए सर-दर्द का विषय बन गया है।

Canada has unprecedented Glut of grain . . . There are still 300,000,000 million bushels of last year's crop in storage, waiting to be sold after a poor start this year, all factors tuned in perftectly to produce another 550, 000,000 bushel crop, far above the average. . .the port of Montreal has been hard hit by the lack of over seas markets for wheat. Hundreds of railway trucks loaded with grain, clog the harbour's sidings. The harbour's elevators a·e full to their 15,000,000 bushel capacity and there is now here to empty the trucks. The port is full

of empty shipping, but there is now here to which to transport the wheat...

...Ministry of agriculture officials emphasise that the farmer's problem is now here near as serious as it was in the drought period of the mid-thirties. Then a series of disastrous crop failures had left most farmers with heavy mortages and other high indebtedness with little or no income. (Amrit Bazar Patrika dated 18 th September 1953. P. 8.)

(भावार्थ—कनाडा के पास अभूतपूर्व अन्न की बहुतायत हो गई है...यहाँ अभी भी ३००,०००,००० मि० बुशेल अनाज पिछले वर्षों की फसल का जमा हुआ रखा है। इस साल के खराब शुरुआत के साथ इस जमा माल को बिक जाने का इन्तजार किया जा रहा है। सभी दृष्टियों से देखने पर यह पूर्णतः साफ दिखाई देता है कि औसत से अधिक ५५०,००० ००० बुशेल की फसल दूसरी भी तैयार हो जायगी।...

...मान्ट्रियल का बन्दरगाह, गेहूँ के समुन्द्रपार के बाजारों की कमी के कारण, बुरीतरह प्रभावित हुआ है। सैकड़ों रेलवे ट्रक जो कि अनाजो से भरे हुए हैं, बन्दरगाह के किनारे खड़े हैं। बन्दरगाह के अनाजों के गोदाम अपनी १५,०००,००० बुशेल रखने की जगह के साथ पूरे तौर से भरे पड़े हैं और अब यहाँ ट्रकों को खाली भी करना है। बन्दरगाह खाली जहाजों से भरा है, लेकिन प्रश्न यह है कि यह गेहूँ कहाँ भेजा जाय।...

...सरकारी कृषि मन्त्रालय विभाग के अफसरों ने इस बात को अच्छी तरह बताया है कि किसानों की अवस्था अब वैसी ही नाजुक हो गई है जैसी कि पिछले तीस साल के अन्दर सूखा पड़ने से हुई थी। तब एक नम्बर वार फसलों को खराबी के कारण किसान भारी गिरवीं व कर्ज के बोझे से लद गए थे और उनको आमदनी बहुत कम या बिल्कुल नहीं होती थी।)

अमेरिका अपने औद्योगिक सन्तुलन को, अपने विपुल स्वर्ण भण्डार से विदेशों को सहायता व कर्ज देकर, कायम रखना चाहता है। यह विदेशों को दिया गया कर्ज व सहायता अन्य देशों को, अमेरिका के सामानों को खरीदने का जरिया व प्रोत्साहन देता है। लेकिन यह दी गई विदेशों को सहायता व कर्ज की रकम, वापस अमेरिकी पूँजीपतियों को मिलती है, और वही कारखानेदार या पूँजीपति उसका मालिक हो जाता है। इस रकम को पूँजीपति से वापस पाने के लिए सरकार को निरन्तर जनता पर टैक्सों के भार को बढ़ाते जाना पड़ता है। निश्चय ही यह सहायता व कर्ज का रवैया बहुत दिनों तक कायम नहीं रह सकता। पिछड़े हुए देशों में भी औद्योगिक विकास निरन्तर होता चलता है, जिससे उन देशों को भी विदेशों से, या अमेरिका के बनाए हुए सामानों की जरूरत नहीं रहेगी, और तब अमेरिकी माल अमेरिका में ही धरा रह जायगा और विपुलता के बीच में भी अकाल की छाया दृष्टि-गोचर होने लगेगी।

औद्योगिक विकास के कारण पूँजीवाद का जन्म होता है। मशीनों के व्यवहार के कारण बेकारी का भीषण प्रकोप होता है। इसलिए पिछड़े हुए देश औद्योगिक विकास कर अपने से ही अपने पैरों में कुल्हाड़ी मार देते हैं। शीघ्र ही उन पिछड़े देशों में विषमता की अधिकता, पूँजी का केन्द्रीकरण व सर्व साधारण में दरिद्रता छा जाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मशीनों का या कारखानों का प्रयोग करने से प्रजातन्त्र देशों में, 'सम्पत्ति पर निजी अधिकारों' की प्रणाली के साथ-साथ सिवा मानव की बर्बादी, यातना, कष्ट व दूभर जीवन के और कुछ भी नहीं है।

सच तो यह है कि कलों की यह आँधी बढ़ी तो हिन्दुस्तान की बड़ी दुर्दशा हो जायगी। यह बात आपको अनोखी तो लगेगी लेकिन यह कहना मेरा फर्ज है कि हिन्दुस्तान में मिलें बढ़ाने की बनिस्बत आज भी मैंचेस्टर को दाम देकर उसका सड़ा हुआ कपड़ा काम में लाने से हमारे केवल पैसे ही जायेंगे। जब कि हिन्दुस्तान में मैंचेस्टर बनाने से हमारा पैसा तो हिन्दुस्तान में रहेगा, पर हमारा खून चूस लेगा, क्योंकि हमारे चरित्र को वह नष्ट कर देगा। इसके लिए किसी प्रमाण की जरूरत हो तो जो लोग मिलों में काम करते हैं खुद उन्हीं से पूछना चाहिए। जो इन कल कारखानों से माला-माल हो गए हैं वे भी दूसरे धनवानों से अच्छे हों ऐसी कोई संभावना नही है। अमेरिका के राक-फेलर से भारतीय रॉक-फेलर अच्छा होगा, यह समझना भूल है। सच तो यह है कि गरीब हिन्दुस्तान तो स्वतन्त्र हो सकता है, लेकिन चरित्र खोकर धनी बने हुए हिन्दुस्तान का स्वतन्त्र होना मुश्किल है।

—महात्मा गाँधी। (यन्त्रों की मर्यादा पृ० २)

अन्त में हम फिर उसी साम्यवाद को अपने सर पर पाते हैं जिसके लिए अमेरिका ने इतनी ज्यादा तकल्लुफ की। सच पूछा जाय तो पूँजीवादी प्रथा या मशीनों का प्रयोग, मनुष्यों की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को कभी भी कायम नहीं रख सकता। वर्तमान में मशीनों का सबसे जबर्दस्त प्रभाव, साम्यवाद के ही रूप में, मानव पर पड़ा है। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के हिमायती प्रजातन्त्र देशों व महापुरुषों को इस समस्या पर विचार करना चाहिए अन्यथा एक रोज समस्त मानव जाति साम्यवादी व्यवस्था में, अपनी व्यक्तिगत आजादी को खोकर, मशीनों का दास मात्र ही रह जायगा।

५

मशीनों की पूर्णावस्था

स्वामी विवेकानन्द ने सन् १९०२ में भारत के अध्यात्मवादियों को सम्बोधित करते हुए कहा था: –'मैं स्पष्ट देख रहा हूँ कि, भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में जटायू और सम्पाती का युग आ रहा है। चन्द्रमा, मंगल और शुक्र ही क्यों, भावी पीढ़ी का मानव सम्पाती की तरह ही सूर्य के धरातल तक जा पहुँचेगा और उसके पंख नहीं जलेंगे।... (नवनीत, हिन्दी डाइजेस्ट, सितम्बर १९५३ पृ० ९६

विज्ञान दिन दूनी और रात चौगुनी उन्नति करता जा रहा है। विज्ञान की उन्नति के साथ-साथ संहारक शस्त्रों व बमों और उद्योगों का विकास भी होता चलता है। जहाँ एक ओर ऐसे शस्त्रों व बमों का निर्माण किया जाता है, जो सारी मानवता को समाप्त कर सकते हैं, वहीं इतनी शक्तिशाली और जादुई मशीनों का औद्योगिक क्षेत्रों में उपयोग होता जाता है, जो कि समस्त मानव के श्रम को छीन कर उसे निठल्ला व दरिद्र बना देता है। विज्ञान की और उसकी यह दो मुख्य शाखाओं –शस्त्रीकरण व औद्योगिक मशीनों –का विकास कब और किस रूप में पूर्णावस्था को पहुँचेगा, यह अभी भविष्य के गर्भ में है। लेकिन विज्ञान की उन्नति और उसके बढ़ते हुए दुष्परिणाम को देखकर, विज्ञान की पूर्णावस्था, संहारी

शस्त्रों की विनाशक शक्ति की चरम सीमा, व औद्योगिक मशीनों को पूर्ण रूप से जादुई हो जाने पर, उस समय की कल्पना हम आसानी से कर सकते हैं। मनुष्य का आर्थिक मामलों से दैन्य-दिन का सम्बन्ध रहता है। जब तक वह जीवित रहेगा उसे काम व आराम के साथ-साथ आर्थिक सम्पन्नता व रोटी अनिवार्य है। इसलिए वैज्ञानिक पूर्णावस्था द्वारा प्रस्तुत, मशीनों की पूर्णावस्था मानव की आर्थिक स्थिति पर कैसा प्रभाव डालेगी, यही जानना हमारे लिए सर्व प्रथम व सबसे महत्वपूर्ण है।

हम देख चुके है, संसार दो गुटों में बटा हुआ है। संसार में अब दो सर्व-शक्तिमान् विरोधी शक्तियों का प्राबल्य है। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के हिमायती, स्वतन्त्र उद्योग की प्रथा वाले प्रजातन्त्र देशों की 'स्वतन्त्र दुनिया' में मशीनों व कारखानों का प्रयोग कर हम उसके दुष्परिणामों को देख चुके हैं। साम्यवाद के सम्बन्ध में हम बाद में विचार करेंगे, पहले हम 'स्वतन्त्र संसार' के प्रजातन्त्र में मशीनों की पूर्णावस्था का प्रभाव देखना चाहते हैं। थोड़ी देर के लिए हम यह मान लेते हैं कि पूँजीवाद का कट्टर शत्रु व समर्थ विनाशक—साम्यवाद का जन्म अभी नहीं हुआ है और न आगे भविष्य में होने ही वाला है। इस प्रकार पूँजीवादी प्रथा को भयहीन, निर्द्वन्द बनाकर व व्यक्तिगत अधिकारों की स्वतन्त्रता देकर, हम उसमें मशीनों का उपयोग कर उसके द्वारा मानव पर पड़े हुए प्रभाव की कल्पना करना चाहते हैं। क्या वास्तव में प्रजातन्त्र में मशीनों का अनियन्त्रित प्रयोग मनुष्य मात्र की सुख, सुविधा व सम्पन्नता को बढ़ाता है? अथवा कहीं ऐसा तो नहीं हो जाता कि वह एक ऐसे स्थान को पहुँच जाए जहां से वह फिर

वापस लौट ही न सके और वहीं उसके अस्तित्व की समाप्ति हो जाय।

प्रजातन्त्र भी आज दो प्रकार का हो गया है, एक 'स्वतन्त्र उद्योग' के हिमायती 'स्वतन्त्र संसार' का प्रजातन्त्र, और दूसरा साम्यवादी व्यवस्था के अन्तर्गत का प्रजातन्त्र। दोनों प्रजातन्त्रों में बहुत अंतर है। एक व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर जोर देता है, जब कि दूसरा इसका हनन कर, केवल आर्थिक सन्तुलन की जिम्मेदारी लेता है 'स्वतन्त्र संसार' का प्रजातन्त्र अपनी स्वाभाविक व प्राकृतिक अवस्था में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के साथ-साथ आर्थिक स्वतन्त्रता को भी प्राप्त करता है, इस लिए मानव के लिए ऐसा प्रजातन्त्र ही पूर्ण उपयुक्त व माननीय हो सकता है। लेकिन स्वतन्त्र संसार के प्रजातन्त्र में, यानी 'स्वतन्त्र उद्यम' में मशीनों को घुसाकर और साम्यवाद में अनिवार्य रूप से व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा 'स्वतन्त्र उद्यम' का विनाशकर, आज मानव ने प्रजातन्त्र को बदनाम और लंगड़ा बना दिया है। हम अभी जरा इस 'स्वतन्त्र संसार' के प्रजातन्त्र में मशीनों की पूर्णावस्था का प्रयोग कर उसके द्वारा मानव के समूचे शरीर को कटते हुए देखना चाहते हैं। जो कमजोर दिल व सूक्ष्म भावना के हों उनको कहीं छिपकर या आड़ से यह दृश्य देखना चाहिए। कभी आँखें बन्दकर व कभी खोलकर, धड़कते हृदय को नियन्त्रित करके, वे इस दृश्य से शिक्षा ग्रहण व अपना भला कर सकते हैं।

कुछ व्यक्ति विशेष अपने स्वार्थ को सामने रखकर, अपने को ज्यादा सुखी बनाने के लिए दूसरों के हितों का बलिदान करते हैं। इन स्वार्थवादी व्यक्तियों को इनका एक बहुत जबर्दस्त सहायक भी मिल गया है, जिसकी मदद से ये सभी कुछ

कर ले पाते हैं। आज ये पूँजीपति दिल खोलकर जनता का शोषण करने पर लगे हैं। पर इसका परिणाम अत्यन्त ही भीषण होने वाला है। यह सही चीज है, संसार में जितनी वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं, उतनी वस्तुओं के अनुसार ही लोग उसका उपभोग कर सकते हैं। यदि उपभोग करने वाले ज्यादा हो गए और वस्तुएँ कम हो गईं तो फिर कितने ही व्यक्तियों को भूखा और नंगा रहना पड़ेगा। इसलिए यह अन्य प्रकार का प्रश्न हो जाता है। दुनिया में आदमी बहुत ज्यादा हो जायँ और खाद्य पदार्थों का उत्पादन कम हो जाय तो फिर एक भीषण अकाल पड़ सकता है। यह आवश्यक है कि हम इस बात का हमेशा ख्याल रखें कि हमारी जनसंख्या इतनी न बढ़ जाय कि उसकी लपेट में हम भी बह जायँ।

मैं उस स्थिति की कल्पना करता हूँ जब कि धरती माता हम लोगों के भार को आसानी से उठाए हुए है। हमारा उत्पादन बढ़ने की क्षमता है। यदि हम एक के दो भी, कभी हो जायँ ता हमारे लिए कोई चिन्ता का विषय नहीं है। मैं उस समय की कल्पना करना चाहता हूँ, जब सभी कुछ भरपूर होते हुए भी हमारे में बेकारी हो, गरीबी हो। हम दाने दाने को मोहताज हों। क्या कभी ऐसा हो सकता है? क्यों नहीं! ठीक उसी प्रकार जिस तरह आज हो रहा है। सभी काम मशीनों द्वारा ही किया जायगा। मशीन ही सारे कार्यों को कर देगी। मशीन का काम सस्ता, सुन्दर व आसानी से होता है। मान लीजिए केवल एक मशीन स्वतः या केवल एक व्यक्ति (मालिक) की सहायता से पूरे संसार के लिए कपड़ा तैयार कर देती है। जब एक ही मशीन सारा काम पूरा कर देती है तो फिर उस काम को करने के लिए अन्य व्यक्तियों की क्या आवश्यकता?

उदाहरण के तौर से एक व्यक्ति ने एक कपड़े की मिल बैठाया। संसार भर की जितनी भी रुई थी उसने खरीद लिया। उस व्यक्ति ने एक बहुत ही शक्तिशाली मशीन बैठाई हुई है। वह नई ईजाद भी है। उस मशीन से कितना ही ज्यादा कपड़ा, कितने ही कम समय में तैयार किया जा सकता है। उस मशीन की सहायता से वास्तव में वह सारा काम कर लेता है। मालों को तैयार कर लेता है, इकट्ठा करवा लेता है, गोदामों में भरवा लेता है और व्यापारियों की मोटरों में भी लदवा देता है। फिर वह अकेला ही समस्त श्रम व लाभ का अधिकारी हो जाता है। किसी अन्य व्यक्ति की उसे आवश्यकता नहीं पड़ती।

मशीन द्वारा प्रस्तुत उत्पादन की कोई सीमा नहीं होती। जितना उसे कच्चा माल यानी रुई मिले, उतना ही कपड़ा वह तैयार कर देगी। फिर उत्पादन के नाम का कैसा रोना! जितना भी कपड़ा आपको चाहिए सस्ते और अच्छे से अच्छे ले लीजिए। कितने और कैसे कपड़े आपको चाहिए? जी हाँ, वह कपड़े इतने सस्ते होंगे कि आप आश्चर्य करेंगे। एक आने की एक सुन्दर महीन से महीन धोती, और एक पैसे गज पापलीन का मजबूत व फैन्सी कपड़ा। क्या इसे हम सस्ती नहीं कहेंगे? क्या यह मनुष्य का चमत्कार न होगा? कहीं इसे रामराज्य तो नहीं हम कहने लग जायेंगे? ठहरिए! एक मिनट! दो बातें और सुन समझकर तब निर्णय कीजियेगा। मेरी फरियाद भी जरा सुन लीजिए। मैं ज्यादा नहीं थोड़ा ही समय चाहता हूँ।

संसार भर में कुछ व्यक्ति रुई बोते हैं। मान लिया १०० व्यक्ति। इन सौ व्यक्तियों के पास बहुत ज्यादा लम्बे लम्बे

खेत हैं। इन सभी के पास काफी मशीनें हैं। बिजली है, पेट्रोल है। सारे साधन इनके पास चिरागे-अलादीन की भाँति उपस्थित है। ये खेतिहर वास्तव में अकेले ही, मैं कल्पना करता हूँ, कहीं कमरे में बैठकर, रेडियो के द्वारा संचालित मशीनों के द्वारा सारे कार्यों को करा लेते हैं। जुताई करना, पानी देना, खाद फेकना, फसल काटना, इकट्ठा करना, सभी कार्यों को मशीनें बखूबी कर देती हैं। मैं एक कदम और आगे बढ़कर यह कल्पना करता हूँ कि; मशीन हमारी एक ऐसी बन्धु व सहायक है, जिसे मैं ईश्वर की कृति और संसार का जादू समझता हूँ।

क्या ही अच्छा होता संसार की सारी भूमि एक ही व्यक्ति के पास होती और क्या ही अच्छी कल्पना, हृदय को गुदगुदा देने वाली, मन को लुभाने वाली, सिरह पैदा करती हुई, यह अवस्था होती कि अकेले ही वह व्यक्ति सारे उत्पादन को इस जादुई मशीन के द्वारा घर बैठे ही कर लेता। वाह रे विज्ञान! क्या तू मुझे वह व्यक्ति बना सकता है? मैं ही सारे संसार के समस्त कार्यों को कर लेने की क्षमता चाहता हूँ। मैं ही सारे कार्यों का ठेका ले लेना चाहता हूँ। ऐ ईश्वर के दूत विज्ञान! मैं तेरी आराधना करता हूँ। तू मुझे माँगी मुराद दे। तू मुझे कारूँ का खजाना ला दे। मैं ही फिर समस्त सृष्टि का कुबेर बन जाऊँ। सारे संसार का समस्त उत्पादन मेरे उँगली हिलाते ही पूरा हो जाय। मेरी इच्छा पर ही वह जिस जगह भी चाहे चली जाय।

ओह! कितनी रोमांचकारी कल्पना है। यह एक वासनापूर्ण भावना से भी ज्यादा गुदगुदाने वाली वस्तु है। प्रणय की सुखद कल्पना से भी ज्यादा, यह कल्पना विभोर कर देती है। मैं! समस्त संसार की वस्तुओं का उत्पादक! समस्त ऐश्वर्यों

व सुख भोगों का अधिष्ठाता ! मेरे समान कौन होगा ? समस्त अन्य व्यक्ति मेरे गुलाम होंगे। उनको मेरा मुँह देखना होगा। मैं खाना दूंगा तो खायेंगे कपड़ा दूँगा तो पहनेंगे, रहने को दूँगा तो रहेंगे। पर इन सब व्यक्तियों की आवश्यकता ही क्या ? यह मक्खी मारने वाले मेरे किस काम के ? पृथ्वी के भार ही तो हैं ! इनकी मुझे कोई आवश्यकता नहीं। मेरे समान यह भोग करना चाहते हैं। केवल मुझको हाथ, पाँव जोड़ देने से ही तो कुछ नहीं मिल जायगा।

मुझे अपना भोग चाहिए। मुझे अपना स्वार्थ देखना चाहिए। दूसरे चूल्हे छोड़ भाड़ में जायँ, उसका मेरे ऊपर कोई असर नहीं पड़ता। संसार की समस्त वस्तुएँ मेरे अधिकार में हैं। जिधर मैं देखता हूँ उधर मैं ही मैं हूँ। मैं सम्राटों का सम्राट और प्रत्यक्ष ईश्वर का दूत हूँ। मेरी जिन्दगी अब थोड़ी ही रह गई है। मुझे भोगों को भोग लेना चाहिए। पर क्या भोगूँ ? पहले कौन सी वस्तु भोगूँ ? मुझे क्या चाहिए ? ससार की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी ! हाँ हाँ, वह हाजिर है। एक ही नहीं, जितनी भी संसार की सुन्दरियाँ हैं सभी। देखिए न ! वे मुस्कुरा रही हैं। आप क्या चाहते हैं ? क्या आप मतवाले हाथी की भाँति गजनियों के बीच भ्रमण तो नहीं करना चाहते ? क्या आप वाजिद अलीशाह होना चाहते हैं ? आप 'श्रीकृष्ण' तो नहीं बनना चाहते ?

चुप रहो ! तुम मूर्ख हो ! मैं अद्वितीय हूँ। मेरी समता न किसी ने अब तक किया है, और न कोई भविष्य में कर ही सकेगा। मैंने सभी को मात कर दिया है। संसार की करोड़ों नारियाँ मेरी गुलाम हैं। मैं जैसे चाहूँ उनका उपभोग करूँ ? मेरे भोगों में हिस्सा बटाने वाला कोई नहीं है। मेरा मुकाबला

कोई नहीं कर सकता। मुझे किसी का भी भय नहीं है। मैं स्वच्छन्द व उच्छृंखल भी हो सकता हूँ। तुमको मुझे सलाह देने की आवश्यकता नहीं। चले जाओ यहाँ से।

लेकिन यह चिन्ता कैसी? मेरे जैसे सर्वशक्तिमान के पास यह चिन्ता कैसे रह सकती है! मुझे दुःख किस बात का है? ओह! अभी मैंने समझा। मैं अभी भी बेबसी का अनुभव करता हूँ। मुझे दुःख है कि मेरी आयु इतनी छोटी क्यों हुई। मेरी शक्ति इतनी सीमित क्यों है? यदि एक एक सेकेण्ड भी मैं एक एक स्त्री के पास रहूँ तो, मेरी आयु देखते देखते ही बीत जायगी। मैं क्या करूँ? मैं ज्यादा से ज्यादा ऐश्वर्य व भोग चाहता हूँ। मुझे दुःख है, मुझे निराशा हो रही है। मैं दूसरों को देख नहीं सकता, पर स्वयं भी बेबस हूँ। मुझे कुछ न कुछ उपाय करना ही पड़ेगा। किसी साधू की खोज करूँ! किसी मुल्ला की पुकार करूँ! किसी पादरी की सिफारिश करूँ! मुझे वह शक्ति दे। मुझे ज्यादा खुशी दे। मेरा मन ऊब रहा है। मुझे कुछ अच्छा नहीं लग रहा है।

मेरा पेट खराब हो गया है। भीषण वेदना है। संसार मेरे लिए नर्क के समान हो गया है। ओह! यह तो बहुत बुरा। फिर से वायु गोला उठा। किसे बुलाऊँ? क्या करूँ? किस डाक्टर वैद्य को अपनी जादुई मशीनों से बुलाऊँ? पर है यहाँ कौन! ऐ मशीन तू ही मुझे अच्छा कर दे। ऐ मशीन की रानी ऐक्सरे, जरा देख तो मेरे पेट में क्या हुआ है। पर तू देखती क्यों नहीं? हाय मैंने तो यह सीखा ही नहीं कि तू कैसे फोटो खीचती है। आज मेरे बिना यह दुनिया सूनी हो जायगी। मेरी ये असंख्य नारियां रोयेंगी। मेरी फूल की सेज सूनी हो जायगी। मेरी सारी धन-दौलत मुझ से जुदा हो जायगी।

कितना क्षणिक है यह संसार ! कितनी मूर्ख हैं मनुष्य की वासनाएँ ! कितने मिथ्या हैं ये ऐश्वर्य ! पर मुझे अब क्यों यह ध्यान आया ? मेरी आँखें इतनी देर बाद क्यों खुलीं ? अब पछताए होत क्या जब चिड़िया चुंग गई खेत ! मैंने कितना बड़ा पाप किया है ! इसका प्रायश्चित मुझे करना ही होगा। ईश्वर को फिर से सृष्टि शुरू करनी पड़ेगी। फिर से व्यक्ति बढ़ेंगे। मशीनों का नाश होगा। उत्थान व पतन का चक्कर फिर से चालू होगा। लेकिन अन्त में ईश्वर ही नित्य व शाश्वत रह जायगा। हे ईश्वर ! तेरे सिवा और कुछ भी सत्य नहीं है।

अब तक जो विभिन्न समस्याएँ अंक विज्ञान की सहायता से समीकरणों में व्यक्त की गई हैं, उनको देखते हुए लगता है कि भविष्य के स्वयं चालित कारखानों के दफ्तर भी स्वयं चालित हो हुआ करेंगे। क्योंकि हिसाब-किताब की सारी जिम्मेदारी तो यह यांत्रिक मस्तिष्क ही संभाल लेगा। आज भी तो कई उद्योग जैसे पेट्रोल विशुद्ध करने के कारखाने और केमिकल डेस्टिलरी (रासायनिक स्त्रवण यन्त्र)—एक तरह से स्वयं चालित ही हैं। कुछ गिने-चुने व्यक्ति इनके नियन्त्रण केन्द्रों की देख-भाल करने का कार्य करते हैं। किन्तु पूरे कारखाने को स्वयं चालित बनाने के लिए एक प्रकार के गणित और अंकों की आवश्यकता होगी, जो प्रत्येक सम्भावना को अध्ययन कर उनको एक समीकरण के रूप में बदल दे। अभी तक पेट्रोल साफ करने के कारखाने अथवा रासायनिक स्त्रवण यन्त्र विस्फोटक और आग लग जाने से अपने आपको खुद बचा लेने की क्षमता नहीं रखते, लेकिन इस नए समीकरण द्वारा उनमें यह क्षमता भी आ जायगी। हाँ ! इसके लिए अभी काफी समय की अपेक्षा है। यों तो आज कई देशों में बिजली, गैस,

टेलीफोन के यन्त्र-परिचालन से लेकर बिल बनाने तक का काम यांत्रिक मस्तिष्क द्वारा ही हुआ करता है।

(नवनीत, हिन्दी डाइजेस्ट, सितम्बर सन् १९५३ पृ० ३९)

मशीनों की उन्नति और मशीनों का विकास बराबर होता आया है। पहले मशीनें हाथ से चलाई जाती थीं। फिर मशीन चलाने के लिए हवा और पानी का इस्तमाल किया जाता था। अब कोयला और बिजली से चलती हैं। अब मशीनों के कारण न केवल शारीरिक श्रम ही अनावश्यक है बल्कि उसके हुनर की भी कोई उपयोगिता नहीं है। मशीनों के प्रयोग का क्षेत्र भी अब बहुत बढ़ गया है और मशीनों का आकार भी आश्चर्यजनक रूप से बड़ा है। पूँजीवादी युग की विशेषता यह है कि उत्पन्न वस्तुओं के प्रकार ज्यादा नहीं होते। कुछ चुने हुए प्रकार के व्यवहार के उपयोगी और सस्ती चीजें बहुत बड़ी तादाद में पैदा की जाती हैं। बिजली से मशीन युग का एक नया अध्याय आरंभ होता है।

(मार्क्सवादी अर्थ शास्त्र, ले० श्री भूपेन्द्र नाथ सान्याल, पृ० ११५)

जब इस नवीन यांत्रिक बुनियाद पर उत्पादन क्षेत्र का विस्तार होता रहता है तब तक श्रमिकों की संख्या में अवश्यमेव वृद्धि होती है। लेकिन श्रमिकों की संख्या वृद्धि की माँग स्थिर पूँजी की वृद्धि के अनुपात में घटती जाती है। इससे बेकारों की एक रिजर्व सेना बनती जाती है। पूँजीपतियों के आपसी प्रतिस्पर्धा के कारण, छोटे और मध्यम पूँजीपतियों की बर्बादी से भी इस सेना की वृद्धि होती रहती है। कृषि में पूँजीवाद के प्रवेश से भी बेकारों की भर्ती बढ़ती रहती है।

(मार्क्सवादी अर्थशास्त्र, ले० श्री भूपेन्द्र नाथ सान्याल, पृ० १२२)

पूँजीवादी प्रथा में मशीनों की उन्नति के साथ मजदूरों का शोषण बढ़ता जाता है। मजदूरों को नई और तेज मशीनों के साथ कदम मिला- कर चलना पड़ता है और अधिक एकाग्रचित्त होकर काम करने के लिए

मजबूर होने के कारण उनकी स्वास्थ्य हानि भी होती है। इतने पर भी मशीनें मजदूरों की जगहें लेती जाती हैं, और मजदूर अधिक से अधिक संख्या में बेकार होते जाते हैं।

(मार्क्सवादी अर्थशास्त्र, ले० श्री भूपेन्द्र नाथ सान्याल, पृ० २७)

मशीनों की पूर्णावस्था में समस्त मानव जाति बेकार हो जायगी। बेकार होकर वह भूखी भी मर सकती है, या गुलाम होकर दूसरों के दिए हुए सामानों का मुफ्त में उपयोग करके जीवित रह सकती है। 'स्वतन्त्र उद्यम' के प्रजातन्त्र में यह अवश्यम्भावी है कि वह भूखों मर जायगी। 'साम्यवादी' प्रजातन्त्र में सरकार ही समस्त सम्पत्तियों व अन्न भण्डारों की मालिक होती है, इसलिए सारी जनता सरकार की ही मोहताज हो जायगी। तब सरकार और उसके कर्मचारियों पर ही यह निर्भर करेगा कि वे जनता के साथ कैसा सलूक करते हैं। मनुष्य जब तक उद्यमी होता है, कर्त्तव्य परायण व परिश्रम करने वाला होता है तो, उसमें एक अजीब गुरुता की भावना आ जाती है। निरुद्यमी और निठल्ले व्यक्ति आत्म सम्मान व इच्छा शक्ति को खोकर, दीन व भावना रहित हो जाते हैं। निरुद्यमी मानव शीघ्र ही अपना चरित्र खोकर उच्छृंखल व अतिशय भोगी हो जाते हैं। यह उच्छृंखलता तथा भोग मानव में भीषण असन्तोष, वेदना व हाहाकार भर देते हैं जो कि मनुष्य के जीवन को दूभर कर देता है। ऐसा भोगी व असन्तुष्ट मानव शीघ्र ही पूर्णतः नाशोन्मुख होकर, पतंगों की भाँति मशीनों पर अपना सर्वनाश कर देती है।

"तालाब का पानी स्थिर होने के कारण गन्दा हो जाता है, परन्तु नदी व झरने का जल नित्य बहता रहने के कारण अत्यन्त स्वच्छ व काँच की तरह चमकता रहता है। फलतः उद्योग ही जीवन है, आलस्य

ही मृत्यु है। (ब्रह्मचर्य ही जीवन है, ले० स्वामी शिवानन्द पृ० १२३)

यन्त्रों के लिए भी अवकाश है। उन्होंने अपनी जड़ मजबूत कर ली है। पर हमें यह ध्यान रखना है कि आवश्यक मानव परिश्रम की जगह को वह न घेर ले। सुधरा हुआ हल अच्छी चीज हो सकती है। परन्तु ऐसा भी चमत्कार हो सकता है कि एक ही आदमी उसकी सहायता से सारे देश की जमीन को जोत ले और खेती की सारी पैदावार को अपने कब्जे में कर ले, और कारीगर लोगों के लिए दूसरा कोई काम ही न रह जाय। इससे यातो वे भूखों मरेंगे या सुस्त और बेकार रहने के कारण—जैसे कि बहुत से हो गए हैं—मूर्ख बन जायेंगे। दूसरे बहुत से लोगों का इस अनिष्ट अवस्था में पहुँच जाने का इसमें प्रतिक्षण बड़ा खतरा है। इसलिए गाँवों के औजारों में जितने भी सुधार सुझाए जावेंगे उन सबका मैं स्वागत करूँगा। परन्तु करोड़ों किसानों को जब तक घर बैठे रोजी का कोई ऐसा साधन नहीं मिल जाता, हाथ के परिश्रम के बदले यन्त्र शक्ति से चलने वाले चरखों के प्रचार को मैं तो अपराध ही कहूँगा।—महात्मा गाँधी (यन्त्रों की मर्यादा, पृ० १२, १३)

मैं जानता हूँ कि करोड़ों मनुष्य कभी शौक के खातिर काम करने वाले नहीं हैं। अगर पेट भरने के लिए काम करना उनके लिए जरूरी न हो तो वे कभी काम ही न करेंगे...। नियम यह है कि अपनी आजीविका के लिए हमें खुद परिश्रम करना चाहिए।

— महात्मा गाँधी (यन्त्रों की मर्यादा, पृ० २४)

आज तो वहाँ (योरप) का यह हाल है कि हर एक आदमी इस बात पर उतारु है कि वह पागल की तरह इधर उधर घूमे और मौज करे। अक्सर इस दौड़ धूप की वजह से जी में उदासी और उचाट पैदा हो जाती है और मौज का मजा नहीं मिलता। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० २०६ प्रथम खण्ड)

प्राचीन काल के लोगों में जीवन की स्थिरता का जो भाव था वह

नष्ट हो गया था। लोगों का पुरोहितों, मन्दिरों, तथा नियम विधानों और रीति रिवाजों में जो पुराना विश्वास था, वह उठ गया था। उन दिनों की प्रचलित दासता, क्रूरता, भय, चिन्ता, बर्बादी, दिखावा और भोग विलास के दौर-दौरे के साथ ही आत्म ग्लानि और मानसिक असन्तोष भी फैला हुआ था, और मनुष्य शान्ति की खोज में इतने बेचैन थे कि उसके लिए वे सब कुछ त्याग करने को तैयार थे। शान्ति की यही यन्त्रणा-पूर्ण खोज अपने कर्मों पर पश्चाताप करने वालों को सिरासिप में और नए अनुयायियों को मित्रस देवता की अन्धकार-पूर्ण तथा रक्त-रंजित गुफा में खींच लाया करती थी। (संसार का संक्षिप्त इतिहास, ले० एच० जी० वैल्स, अनु० श्री नारायण चतुर्वेदी, पृ० २४४, २४५ प्रथम खण्ड)

सम्पत्ति के उत्पादन की भी एक सीमा होती है। मशीनें अवश्य ही सम्पत्ति के अधिक उत्पादन करने में सहायक हो सकती हैं। मानव भी एक मशीन है जो सम्पत्ति का उत्पादन करता है। लेकिन मानव चैतन्य है जबकि मशीन जड़। इस लिए मानव का मूल्य मशीन से कहीं ज्यादा है। मशीनों के प्रयोग से संसार से उपयोगी सामग्रियों का निर्माण होता है जिससे समस्त मानव जाति को अधिक उपयोगी सामग्रियाँ उपलब्ध हो जाती हैं और वह ज्यादा सम्पन्न व सुविधा-पूर्ण हो जाता है। पृथ्वी के नित नवीन उपहारों तथा उपज को व्यवहारोपयोगी बनाने का नाम ही श्रम है। इस श्रम को मानव व मशीन दोनों ही करते हैं। यदि मानव-श्रम की कमी पड़े और प्राकृतिक सम्पदा अधिक हो या अधिक की जा सके, तो यह मनुष्य के हक में अच्छा और विवेक-पूर्ण कार्य ही होगा कि वे मशीनों का व्यवहार कर अपने को अधिक सुखी व सम्पन्न बना सकें। लेकिन यदि मानव श्रम काफी हो, प्राकृतिक

उत्पादन-सीमा भी अपनी पूर्णता को पहुँच चुकी हो, तो मशीनों का यहाँ प्रयोग करने से कोई लाभ न होगा। मशीनें यहाँ अतिरिक्त सम्पत्ति का निर्माण नहीं कर सकतीं। मनुष्य ही स्वयं अपने महत्वपूर्ण श्रम को काम में लाकर सम्पत्ति को उपयोगी बनाएगा और उसको अपने उपयोग के काम में लायेगा। इसलिए हमें यह बात अत्यन्त ही सावधानी से समझ लेनी चाहिए कि मशीन का उपयोग केवल पूरक की हैसियत से ही, मानव श्रम के सहयोग में किया जा सकता है। मानव श्रम अनिवार्य है जब कि मशीन एक आवश्यक दुर्गुण है।

सम्पत्ति के अधिक उत्पादन की होड़ और वह भी केवल मशीन के ही सहायता से मानव श्रम को पंगु बना देती है। इस प्रकार समाज का ढाँचा नष्ट हो जाता है। मानव का अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है। वर्तमान मानव की दुरावस्था का यही कारण है। मानव मशीनों के पीछे अन्धा होकर पड़ गया है, जिसका नतीजा आज प्रत्यक्ष सामने है। बेकारी सर्वत्र फैली हुई है और चैतन्य मानव सम्पत्ति के अभाव से ही तड़प उठा है। मशीनों के इस अत्यधिक सम्पत्ति उत्पादन का क्या लाभ ?

विनिमय साध्य व्यवहारिक चीजों ही का नाम सम्पत्ति है। इन्हीं चीजों की प्रचुरता से आदमी धनी हो जाता है और इन्हीं की कमी से कंगाल। (सम्पत्ति शास्त्र ले० श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी, पृ० ११)

सम्पत्ति की उत्पत्ति के साधन जमीन, मेहनत और पूंजी हैं। इन साधनों की उत्पादक शक्ति की सीमा है। जहाँ तक उस सीमा का उल्लंघन नहीं हुआ वहाँ तक तो उनकी सहायता से अधिक सम्पत्ति जरूर ही उत्पन्न होती है। पर उस हद तक पहुँच जाने पर सम्पत्ति की

वृद्धि रुक जाती है, और सम्पत्ति की वृद्धि रुक जाना आदमी के लिए अच्छा नहीं। आबादी बढ़ रही है, दिनों दिन व्यवहारिक चीजों की माँग अधिकाधिक हो रही है। इस दशा में सम्पत्ति की वृद्धि रुक जाने से काम नहीं चल सकता।

जब अर्थोत्पत्ति के साधनों की उत्पादक शक्ति अपनी हद तक पहुँच जाती है तब यदि अधिक सम्पत्ति उत्पन्न करना हो तो उन साधनों ही की वृद्धि करना चाहिए। यह सम्पत्तिशास्त्र का एक व्यापक सिद्धान्त है। (सम्पत्तिशास्त्र, ले० श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी, पृ० ५५,५६)

सम्पत्ति की वृद्धि के लिए हम जमीन का प्रसार करते हैं। खेती में चरागाह वगैरह जोते जाने लगते हैं, खनिज पदार्थों को अधिक पाने के लिए खानों का क्षेत्रफल बढ़ाना पड़ता है। मेहनत बढ़ाने के लिए मशीनों की बढ़ती की जाती है, जिससे चल पूँजी अचल पूँजी में बदल जाती है और पूँजी की कमी पड़ जाती है, जिससे श्रमिक बेकार व दरिद्र हो जाते हैं। इस प्रकार हमारी अधिक सम्पत्ति वृद्धि का यह जो कृतिम उपाय है, उल्टा अधिकांश मानव को दरिद्र बना देता है, और इससे जड़ मशीनों की संख्या व उनका वजन बढ़ जाता है। चरागाहों को जोतने से कृषि-आर्थिक अवस्था पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। गाय, बैल इत्यादि पशुओं को पालना मुश्किल हो जाता है, जिससे उनकी संख्या व नस्ल में भीषण गिरावट होती है। फिर मशीनों का प्रयोग खेतों में होने लगता है। इससे पशुओं की कमी और भी अधिक हो जाती है। गाय, बैलों इत्यादि की कमी से प्राकृतिक (Organic) खाद की कमी हो जाती है। कृतिम रासायनिक (Inorganic) खादों का उपयोग होने लग जाता है, जिससे भूमि ऊसर होने लगती है। एक बार पैदावार बढ़कर फिर हमेशा के लिए घट जाती है। सम्पत्ति की

वृद्धि के लिए इन कृतिम उपायों का अवलम्बन—यानी जमीन का गलत प्रसार, मशीनों की अधिकता व चल पूँजी में कमी सभी उत्पादन एक बार बढ़ाकर भी अपना अन्तिम प्रभाव बर्बादी के रूप में ही दिखाते हैं। मानव की वर्तमान विभीषिका के मूल में यही सम्पत्ति उत्पादन की भीषण होड़ और अविवेक पूर्ण मशीनों का अन्ध प्रयोग ही है।

चल पूँजी यदि अचल पूँजी बन जाय तो भी वही बात होगी—तो भी मजदूरों को मजदूरी कम मिलने लगेगी। कल्पना कीजिए कि कोई व्यवसायी तेल का रोजगार करता है। उसने एक कारखाना खोल रखा है, जिसमें सरसों, अलसी और अंडी आदि तेल निकाला जाता है। उस काम के लिए उसे जितने मजदूर रखने पड़ते हैं, उनको उसे हरसाल में तीन हजार रुपए मजदूरी देनी पड़ती है। अब यदि व्यवसायी उसी काम के लिए, जिसे इतने मजदूर करते हैं, एक हजार रुपए का एक यन्त्र मंगा ले तो इतने रुपए उसकी चल पूँजी से जरूर कम हो जायेंगे। अतएव उनसे मजदूरों को हाथ धोना पड़ेगा। मजदूरों का काम जब पेंच से होने लगेगा तब उनकी संख्या भी घट जायगी। फल यह होगा कि उन्हें हानि पहुँचेगी। यदि देश में कलों की अधिकता हो जाती है तो बहुत सी चल पूँजी अचल पूँजी बन जाती है। इससे मजदूरों का रोजगार मारा जाता है। यदि नहीं भी मारा जाता तो उनकी मजदूरी का निर्ख कम हो जाता है। (सम्पत्तिशास्त्र, ले० श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी, पृ० ४८)

यदि जमीन स्वभाव से ही उर्वरा है—यदि उसमें स्वभाव ही से सम्पत्ति पैदा करने की शक्ति है तो अधिक श्रम करने से अधिक सम्पत्ति जरूर पैदा होगी। पर यदि यह बात नहीं है तो बहुत श्रम से कुछ लाभ न होगा। जमीन उत्पादक होने पर थोड़ी मेहनत से भी बहुत सम्पत्ति पैदा हो सकती है अन्यथा बहुत मेहनत भी व्यर्थ जाती है।

(सम्पत्ति शास्त्र, ले० श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी, पृ० ३५)

सम्पत्ति की अधिकता होना अच्छी बात है। सम्पत्ति का अधिक उत्पादन होना हमारे लिए दो कारणों से लाजिमी हो सकता है। पहला तो अधिक सुख भोग व सुविधा के निमित्त और दूसरा सम्पत्ति की कमी पड़ जाने पर। पहला कारण कोई अत्यधिक महत्व का नहीं है। अधिक सुख-भोग व सुविधा प्राप्ति के लिए—सम्पत्ति का अधिक उत्पादन करने के लिए—हमें उकताने या जल्दी बाजी करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। धीरे धीरे और अपनी शक्ति सामर्थ्य तथा आराम से हम अपनी दशा अधिक उन्नत कर सकते हैं। लेकिन दूसरा कारण बहुत महत्व पूर्ण हो जाता है। सम्पत्ति की कमी से दरिद्रता व भुखमरी आ जाती है। इसलिए ऐसी अवस्था में हमें जल्दी-बाजी, होड़ व घबड़ाहट में पड़ जाना स्वाभाविक हो जाता है। यदि हम इस जल्दबाजी व होड़ तथा घबड़ाहट में—जैसा कि प्रायः हो भी जाता है गलत रास्ता व ढंग अख्तियार कर लें तो हमारी दशा सुधरने के बजाय और भी बिगड़ जायगी। मशीनों का प्रयोग केवल पहली अवस्था में करना चाहिए, यानी अधिक सुख, सुविधा व भोग पाने के निमित्त ही। लेकिन सम्पत्ति के उत्पादन को सन्तुलित अवस्था में लाने के लिए आदमी के दो हाथ व दो पाँव तथा पुष्ट सीने (हृदय) को ही काम में लाना चाहिए।

मशीनों द्वारा सम्पत्ति के उत्पादन करने से वस्तु निर्माण पर खर्च कम पड़ता है, जिससे सामग्रियों का मूल्य कम हो जाता है। सभी उपयोगी चीजें सस्ती हो जाती हैं। लेकिन इस सस्ती का कोई लाभ मनुष्य को नहीं होता। सस्ती व महँगी, अपेक्षा कृत (Relative) शब्दों की सूचक है। सस्ती होने पर मजदूरों का वेतन कम हो जाता है. क्लर्कों का वेतन कम

हो जाता है तथा अनाजों का भाव भी गिर जाता है। यानी जितना उपयोगी सामान मनुष्य पहले पा सकता था उतना ही वह अब भी पा सकता है। लेकिन इस मशीन-कृत मन्दी का एक भीषण दुष्परिणाम भी होता है। मशीनों के प्रयोग से बेकार हुए मनुष्य इस सस्ती के बावजूद भी अपनी आवश्यकता की वस्तु नहीं पा सकते क्योंकि उनके पास पैसे का नितान्त अभाव होता है। बढ़ती हुई सस्ती इस बात की द्योतक हो जाती है कि मशीनों का निरन्तर विकास हो रहा है। इसलिए यह सस्तापन जितना ही ज्यादा होगा उतना ही उसके पीछे बेकार मनुष्यों की आह! व उनका बलिदान छिपा होगा। मशीनों का नितान्त व उच्छृंखल प्रयोग मानव को गुमराह कर उसको जड़ ही बना देने वाला है।

किसी-किसी का खयाल है कि जिस चीज का खप अधिक होता है उसकी कीमत बढ़ जाती है। कीमत चढ़ जाने से मुनाफा अधिक होता है और मुनाफा अधिक होने से उस चीज़ के बनाने या तैयार करने वालों को लाभ भी अधिक होता है। पर यह भ्रम है। सब चीजों की कीमत उनकी उत्पत्ति के खर्चे के अनुसार निश्चित होती है।

(सम्पत्तिशास्त्र, ले० श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी, पृ० १५३)

मशीनों का प्रयोग निश्चित रूप से बेकारी लाता है। जहाँ जितनी ही कम मशीनों और कम शक्तिशाली मशीनों का व्यवहार होता है वहाँ उतनी ही कम बेकारी होती है, बनिस्बत कि उन स्थानों के जहाँ ज्यादा शक्तिशाली और ज्यादा मात्रा में मशीनों का व्यवहार होता है। जितना ही ज्यादा औद्योगिक विकास होता जाता है, बेकारी भी कुछ काल में जाकर उतनी ही अधिक हो जाती है। जब उत्पादन अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है तो शीघ्र ही एक आर्थिक दुरावस्था,

बेकारी व भुखमरी की भीषण लहर उठती है जो बड़ी बड़ी पद्धतियों, सल्तनतों, तथा सरकारों तक को उलट देती है। यह कहना गलत है कि औद्योगिक विकास से बेकारी दूर हो जायगी। औद्योगिक विकास से केवल कुछ समय के लिए ही बेकारों को राहत मिलती है, लेकिन ज्यों ही उत्पादन बढ़ता है, पहले से भी अधिक गृह उद्योगियों का व्यवसाय छिन जाता है और पहले से भी अधिक बेकारों की सृष्टि फिर हो जाती है। इसके अतिरिक्त बड़े कारखानों की प्रतियोगिता के सामने छोटे कारखाने न टिक सकने के कारण उद्योग में लगे हुए कर्मचारी व मजूरे फिर से बेकार हो जाते हैं। यह एक अटल सिद्धान्त समझना चाहिए कि जहाँ मशीन होगी वहीं बेकारी भी अवश्य होगी।

बेकारी

बेकारों की संख्या (हजारों में)

	१९३८	१९४८	१९४९	१९५०	१९५१
आस्ट्रिया	२४४·०	४३·४	९१ २	१२४·८	११६ २
आस्ट्रेलिया	...	२·६३	१० ३३	१·२३	७९
बेल्जियम	१७३ ९	१२९·२	२३४·९	२२३·५	२०६·५
बर्मा	...	२·४५	·७६	१·८६	३ ९७
कनाडा	५१६·०	१०३·०	१३७·०	१८६ ०	१०८·०
लंका	...	५३·५	६८·४	६८·५	५६·८
फ्रांस	४०२·२	७७·८	१३१·१	१५२·९	१२०·१
जर्मनी (W)	...	५९२·०	१२३०·०	१५५८·०	१४३२·०
भारत	...	२२४ ९	२९३ ०	३१४·३	३३८ ४
जापान	२३७·०	२४२·०	३७८ ०	४३६·०	३८६·०
पाकिस्तान	...	७८·०	७१·०	९६·४	१०३·९

	१६३८	१६४८	१६४६	१६५०	१६५१
स्पेन	...	११७·०	१६०·१	१६६·२	१४४·२
स्विट्जरलैंड	५२·६	३·०	८·१	६·६	३·८
दक्षिणी अफ्रीका	५·२८	१२·१७	१५·१४	१६·२८	१०·१६
इंगलैंड (U.K)	१७८६·५	३११·३	३३८·०	३४१·१	२८१·४
अमेरिका(U S.A)	१०,३६०	२,०६४	३३६५	३१४२	१८७६
इटली	...	१·७४८	१·६७३	१·६१५	१·७२१
न्यूजीलैंड	...	०·०७	०·०६	०·०४	०·०४

श्रम संस्थाएँ यह बेकारी की संख्या जो ऊपर बताई गई है उससे बहुत ज्यादा बताती हैं। १६५२ ई० के शुरुआत में पश्चिमी योरप में, इन संस्थाओं के मुताबिक १३,०००,००० एक करोड़ तीस लाख) व्यक्ति पूर्णतः या अंशतः बेकार थे. जापान में पूर्णतः या अंशतः बेकार करीब १० ०००,००० (एक करोड़) थे, पश्चिमी जर्मनी में ४५ लाख से ५० लाख तक, एशिया के कम विकसित देशों, लैटिन अमेरिका, अफ्रीका, और नजदीक वाले तथा मध्यपूर्वी देशों, इन सभी में, स्त्री-पुरुषों की संख्या जिनको कोई काम नहीं है, करोड़ों में है। ...... मिश्र, पाकिस्तान और क्यूबा के खेतिहर मजदूरे साल भर में औसतन केवल ४ महीने काम करते हैं, और ब्रिटेन के मजदूर दल द्वारा प्रकाशित एक 'छोटी पुस्तक' के आधार पर भारत के खेतिहर मजदूरों में बेकारों की संख्या ५ करोड़ है।

(Current Affairs, 1953 P. 168 Part. 1)

अमेरिका, इंगलैंड, जापान, जर्मनी, यह सभी देश उद्योग धन्धों में संसार में सबसे आगे हैं, लेकिन इनके यहाँ भी १६५१ में सरकारी आकड़ों के मुताबिक क्रमशः १ करोड़ ८७ लाख, २८ लाख, ३८ लाख और १ करोड़ ४३ लाख, बेकारों की संख्या है। अमेरिका में जहाँ प्रतिवर्ग मील में ५१ व्यक्ति ही

रहते हैं, और जो उद्योग धन्धों में सभी देशों का अगुआ है, ऐश्वर्य में सबसे धनी, खनिज पदार्थों व अनाजों का भण्डार जहाँ है, वहाँ पर वर्तमान काल के ठंडे युद्ध व यांत्रिक निर्माण की होड़ की अवस्था में भी १ करोड़ ८७ लाख व्यक्तियों का बेकार होना एक आश्चर्य की बात है। क्या इस बेकारी को दूर करने के लिए अधिक उद्योग धन्धों के विस्तार की आवश्यकता है? अमेरिका का उत्पादन चरम सीमा पर पहुँच रहा है। उपयोगी सामग्रियों के अखण्ड भंडार के बीच भी बेकारी, दरिद्रता का होना यह एक अनोखी ही बात है। छिछली आबादी वाला देश अमेरिका ही जब अपने अनगिनत उद्योग धन्धों के रहते हुए भी, बेकारों की बड़ी संख्या को वहन किए हुए है, तो अन्य घनी जन संख्या वाले देशों में औद्योगिक विकास का क्या परिणाम होगा इसे देखकर सिहरन सी होने लगती है। भारत जैसी घनी बस्ती वाले देश में, जहाँ एक वर्ग मील में ३०३ व्यक्ति रहते हैं, औद्योगिक विकास की इस प्रारम्भिक अवस्था में ही ५ करोड़ केवल खेतिहर बेकार हों, तो हमें आश्चर्य नहीं करना चाहिए, क्या भारत देश अमेरिका की भाँति उद्योग धन्धों में प्रगति करके भी, अपनी विपुल जनसंख्या यानी प्रतिवर्ग मील ६ गुनी ज्यादा जनसंख्या को लेकर, अपने देश में ११ करोड़ व्यक्तियों को बेकार करना चाहता है? भारत की ३५ करोड़ की आबादी में एक तृतीयांश के लगभग व्यक्तियों का बेकार होना घोर विप्लव, क्रान्ति व उलट फेर का द्योतक हो जायगा। संभव है भारत देश में तब पौराणिक दूध घी की नदियों की जगह खून व हड्डियों की नदियाँ बहने लगें।

औद्योगिक विकास का दुष्प्रभाव अमेरिका जैसे 'स्वतन्त्र-

उद्यमी' अगुआ देश पर पड़ता हुआ दिखाई देने लगा है। आर्थिक दुरावस्था के बादल उसके ऊपर मँडराने लगे हैं, जो किसी भी अनुकूल हवा का झोंका पाकर बरस भी सकते हैं। मशीनों की व्यवस्था, वहां की आर्थिक स्थिति को लंगड़ा बना चुकी है। अब वहाँ की सारी सम्पदा, समृद्धि व शक्ति के होते हुए भी, वहाँ घोर विप्लव हो जाना कोई असम्भव नहीं है। पिछड़े हुए देशों को अब भी अमेरिका से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए और औद्योगिक विकास के अन्वेषन से निकलकर अपनी आर्थिक दृढ़ता, गृह व कुटीर उद्योगों की भित्ति पर ही आधारित करनी चाहिए। हमें कार्ल-मार्क्स के बुद्धिमत्ता के व विवेक पूर्ण उस कथन से सावधान हो जाना चाहिए कि, किसी भी घोर आर्थिक दुरावस्था के पहले औद्योगिक उत्पादन अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है।

रुस के प्रमुख अर्थ शास्त्री प्रोफेसर यूगेनी वर्गा (Eugene Varga) ने आज यह दावा किया है कि अमेरिका (U. S. A.) के ऊपरी पाल का आवरण व स्तम्भ समाप्त हो गया है और नजदीक आती हुई आर्थिक दुरावस्था साफ नजर आने लग गई है

प्रोफेसर वर्गा ने गहरे आर्थिक विपत्ति की आती हुई अवस्था का एक खाका खींच दिया — यह विपत्ति अत्यधिक उत्पादन के फलस्वरूप ही है जिससे वस्तुओं के दाम में गिरावट और जमा हुए माल की मात्रा में कमी होती जाती है।

कम्युनिस्ट पार्टी के मुख-पत्र प्रवदा' में तीन कालमों में प्रकाशित रूप रेखा में · जिसमें तीन आँकड़ों के संग्रह द्वारा समझाया गया था — वर्गा ने इस निष्कर्ष पर समाप्ति की कि, संयुक्त राज्य अमेरिका एक नये पतन के करारे पर है।

प्रोफेसर वर्गा किसी समय यह विश्वास करते थे कि संयुक्त राज्य

अमेरिका किसी भी गिरावट को सम्भाल सकता है, लेकिन हाल ही में उन्होंने यह व्यक्त किया कि उनकी यह धारणा निर्मूल थी।

प्रवदा में उन्होंने यह कार्ल-मार्क्स के सिद्धान्तों की व्याख्या की कि आर्थिक दुरावस्था के लक्षण साफ और अधिक साफ दिखाई देते जा, रहे हैं।

उन्होंने यह कहा कि संयुक्त राज्य अमेरिका का औद्योगिक उत्पादन १९५३ के प्रथम आधे वर्ष में, १९४५ से लेकर किसी भी साल के उत्पादन से अधिक है। उनकी निगाहों में यह इस बात को बताता है कि उद्योग पतियों को इसमें चिन्ता करने का कोई कारण नहीं है। यह तो केवल हमें कार्ल-मार्क्स की उन ठोस उक्तियों की याद दिलाता है जिसमें यह कहा गया है कि, आर्थिक विपत्ति आने के ठीक पूर्व उत्पादन का स्तर सबसे ऊपर होता है।

(Amrit Bazar Patrika, dated 20 th October 1953, P. 8)

६

प्रजातन्त्र बनाम....

प्रजातन्त्र का अर्थ है 'स्वतन्त्र व्यक्ति'। साम्यवाद के माने 'राज्य' है। प्रजातन्त्र में अकेले व्यक्ति को तथा उसके व्यक्तित्व को प्रधानता दी जाती है। साम्यवाद में राज्य के ही हाथों में सारी ताकत सौंप दी जाती है। प्रजातन्त्र में व्यक्तियों के अधिकारों के साथ साथ उनके कर्तव्यों पर भी जोर दिया जाता है। साम्यवाद में, राज्य के सर्वांग-पूर्ण अधिकारों में, कर्तव्यों का लोप हो जाता है। प्रजातन्त्र में स्वतन्त्र उद्यम करने, सम्पत्ति पर निजी अधिकार रखने, तथा अपनी समृद्धि करने की खुली छूट दे दी जाती है। साम्यवाद में स्वतन्त्र उद्यम व निजी सम्पत्ति तथा व्यक्तिगत समृद्धि करने का किसी को अधिकार नहीं होता। राज्य ही समस्त उद्यमों, सम्पत्तियों व समृद्धि की उत्तराधिकारी होती है और समस्त जनता राज्य की मुखापेक्षित होती है।

प्रजातन्त्र में आप जो चाहे कर सकते हैं। आपको यह अधिकार है कि आप सड़कों पर घूम सकें, नाँच सकें, हाथ-पाँव इधर उधर फेंक सकें, उछल कूद भी मचा सकते हैं, जैसा चाहे वैसा मुँह भी बना सकते हैं,—लेकिन आपका यह सभी काम उसी समय तक यथोचित कहा जा सकता है, जब तक

आप अन्य व्यक्ति के अधिकारों में दखल नहीं देते। आपको हाथ पाँव घुमाने, नचाने का अधिकार अवश्य है लेकिन यदि आप अपनी पाई हुई स्वतन्त्रता या अधिकार का दुरुपयोग कर किसी की नाक पर अपनी कला दिखाने लगे तो आप अपने कर्तव्यों से च्युत हो जायेंगे और आपको बन्दी गृह की सैर करनी पढ़ सकती है। प्रजातन्त्र में सभी व्यक्तियों को लिखने, बोलने व विचार करने की आजादी होती है। व्यक्ति ही राज्य का निर्माण करते हैं और स्वयं या अपनी प्रतिनिधि-व्यवस्था द्वारा अपने अधिकार व कर्तव्यों की विवेचना कर अपने आपको नियन्त्रण में रखते हैं। प्रजातन्त्र में व्यक्ति अपनी गुरुता का अनुभव करता व अपनी जिम्मेदारी को समझता है। वह स्वयं अपना कार्यक्रम बनाता है और अपने भले तथा समाज के भले के लिए उस पर अमल करता है। स्वेच्छा से वह अपने हाथ पाँव में फूलों की बेड़ियाँ डालकर बिना किसी उकताहट या अखरन के, उन बेड़ियों को जन्म भर वहन करता है। सामाजिक व आर्थिक बन्धनों में बँधा रह कर भी वह जन्म पर्यन्त अपने को सदैव मुक्त ही समझता है। वह अपनी तुलना उस समय से भी कर डालता है जिस समय वह पैदा होता है और जिस समय वह इस संसार से निर्वाण लेता है। वह कहता है मैं अकेला आया हूँ, अकेला ही जाता हूँ, इसलिए मैं इस बीच की अवस्था में भी अकेला यानी स्वतन्त्र व्यक्तित्व को ही धारण करके रहूंगा।

साम्यवाद कहता है—व्यक्ति स्वतन्त्र व अकेला तो आता है और जाता भी अकेला है, लेकिन इस बीच की अवस्था में यानी संसार में सर्वत्र बेड़ियों द्वारा बँधा हुआ है। साम्यवाद कहता है—यह बेड़ियाँ लोहे की हैं। इसलिए वह इस निष्कर्ष

पर पहुँचता है कि मनुष्य कभी भी पूर्ण स्वतन्त्र होने का दावा नहीं कर सकता। उसका 'स्वतन्त्र व्यक्तित्व' वाला कहलाना केवल एक ढोंग मात्र है। ऐसा कहकर साम्यवाद अपने सिद्धान्त की पुष्टि करता है और सभी मनुष्यों को यह शिक्षा देता है कि तुमको अपने को पूर्णतः राज्य के ही सिपुर्द व नियन्त्रण में छोड़ देना चाहिए। राज्य ही तुम्हारे लिए कार्य-क्रम बनाएगी, तुम्हें काम व खाने तथा रहने को देगी। लिखने, बोलने व विचार करने की सारी स्वतन्त्रता सरकार ही अपने पास रखती है। साम्यवाद कहता है तुम इतने योग्य नहीं हो जो सही सही सोंच, विचार व लिख सको। साम्यवाद में राज्य की नीति ही सर्वोपरि होती है और सरकारी अफसरों व कर्मचारियों का अत्यधिक महत्व व प्रभाव होता है।

प्रजातन्त्र का जन्म अत्यन्त ही प्राचीन काल में हो चुका था। उस प्राचीन काल से ही यह प्रजातन्त्र अबाध गति से चलता चला आया है। गिरता, पड़ता, लड़खड़ाता, कभी चोटें खाता, कभी दौड़ता तो कभी कराह भी पड़ता—लेकिन यह प्रजातन्त्र उन्नत अथवा गिरी हुई अवस्था में भी हमेशा से मनुष्यों के दिमाग में डटा रहा। हमने पहले परिच्छेदों में यह देख लिया है कि मानो प्रजातन्त्र ही मानव की राजनैतिक, आर्थिक व सामाजिक व्यवस्था का सबसे उपयुक्त व प्राकृतिक सिद्धान्त हो। जबकि कितने ही हजार वर्षों से प्रजातन्त्र का उत्थान व पतन होता आया, लेकिन उसके बीज का, उसके सिद्धान्त का, उसकी महत्ता का लोप कभी नहीं हुआ। लेकिन वर्तमान युग में इस प्रजातन्त्र की केवल दुरावस्था ही नहीं होने जा रही है, बल्कि उसका समूल नाश, उसके बीज का भी क्षय, तथा उसकी उपयोगिता को मानव हमेशा के लिए भूल

जाने वाला है। यह खतरा सबसे बड़ा है। इसका कारण मशीनों का आधुनिक युग में प्रयोग व इन मशीनों की सहोदर साम्यवाद का जन्म ही है। प्राचीन काल के कितने ही हजार सालों में मशीनों को कोई महत्ता न दी जाती थी, इसलिए पुराने जमाने की कोई भी बात विशेष रूप से उल्लेखनीय नहीं है। हमारा ध्यान उस समय की ओर आकृष्ट होता है जब अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरणो में योरप, विशेषकर इंगलैंड में औद्योगिक क्रान्ति हुई और मशीनों का उच्छृंखल प्रयोग किया जाने लगा।

जिस समय योरप में मशीनों का प्रादुर्भाव हुआ, उसी जमाने में प्रजातन्त्र ने भी अपनी पूरी शक्ति से सिर उठाया। प्रजातन्त्र अपने विनाशक मशीन की प्रति-द्वन्द्विता करने लगा। लेकिन अब उसकी शक्ति क्षीण होती जा रही है। योरप में रिनेसेन्स शुरू होने के पहले बड़ी ही दुरावस्था थी। धार्मिक कट्टरता, नृशंस हत्या, राजाओं सामन्तों तथा धर्माधिकारियों की आपसी लड़ाई, सर्व-साधारण पर अत्याचार तथा उन पर करों का अत्यधिक बोझ—यह सभी कुछ उस काल में मानव को उत्पीड़ित व असभ्य बनाने वाली बाते थीं। सर्व—साधारण राजाओं की निरंशकुता, उनकी स्वेच्छा चारिता व विलासिता से, तथा अपनी गरीबी व दरिद्रता के कारण ऊब उठा था। दिन प्रतिदिन जनता पर अधिकाधिक अत्याचार होते रहते थे। उनसे जबर्दस्ती करों को वसूल किया जाता था जिससे राजाओं व सामन्तों की विलासिता व वैभव पूर्ण जीवन कायम रहे। इन निरंकुश राजाओं ने अपने विरोधी धर्माधिकारी पोप को पहले नीचा दिखाकर अपनी शक्ति को जनता की धर्मान्धता से बचा लिया। अब इसी शक्ति का प्रयोग जनता को

कुचलने के कार्यों में लगाया जा रहा था।

शीघ्र ही समस्त योरप में एक चेतना की लहर दौड़ी। उत्पीड़ित जनता अब वारा-न्यारा करने पर तुल गई। प्रजातन्त्र को उसने फिर से स्मरण किया। इंगलैंड में, प्रजा के विरुद्ध विद्रोह करने के अपराध में चार्ल्स प्रथम का सिर काट दिया गया (१६४६), जो इस बात का लक्षण था कि योरपीय विचारों ने नया पलटा खा लिया है। फ्रांस के स्वच्छन्द राज्य शासन का अत्यन्त शीघ्रता पूर्वक अन्त हो गया। पेरिस की जनता ने वैस्तील के घोर कुतोय बन्दीगृह का, धावा बोलकर, विध्वंस कर डाला (१७८६) और विद्रोहानल अत्यन्त शीघ्रता से समस्त फ्रांस में फैल गया। समस्त फ्रांस के हृदय में इस समय देश प्रेम तथा प्रजातन्त्र की प्रचंड अग्नि-ज्वाला भड़क उठी। फ्रांस से भागते समय महाराज, महारानी सकुटुम्ब गिरिफ्तार कर लिए गए और देश द्रोह के अभियोग में उन्हें इंगलैंड का आदर्श सामने रखकर, गिलोटिन पर चढ़ा दिया गया (जनवरी १७९३)। १८४८ ई० में योरप में प्रजातन्त्रीय क्रान्तियाँ हुईं और प्रजातन्त्र ने अपनी अभूतपूर्व पूर्णता के साथ इस संसार में पदार्पण किया।

लेकिन प्रजातन्त्र की उन्नति के व पूर्णता के पहुँचने तक मशीनों की काफी उन्नति हो चुकी थी। उद्योग धन्धों में उनका प्रयोग होने लग गया था, और योरप निवासियों का नए किस्म से शोषण व तबाही की जा रही थी। पूँजी का केन्द्रीकरण होने से जनता बेकार होने के साथ दरिद्र हो रही थी। योरप के इतिहास में यह एक अनोखी स्थिति थी। जब कि प्रजातन्त्रवादी बड़ी-बड़ी दार्शनिक व सैद्धान्तिक उक्तियों का निर्णय, विचार व प्रयोग हो रहा था, दूसरी ओर जनता का

अस्तित्व खतरे में पड़ गया था। एक ओर तो राजनैतिक सुधार व अधिकारों की चर्चा चल रही थी, दूसरी ओर मशीनों के व कल-कारखानों के निर्माण से जनता दिन-दिन भुखमरी, कंगाली व अत्यधिक बेकारी के निकट पहुँचती जाती थी। यह आर्थिक दुरावस्था, जिसके मूल में मशीन ही थी. प्रजातन्त्र के पनपते हुए पेड़ की जड़ में मूसों की बिल के समान थी। प्रारम्भ में ही प्रजातन्त्र में, उसके नाश के हेतु घुन लग गए। आर्थिक दुरावस्था के कारण साम्यवाद का प्रादुर्भाव हुआ - मशीनों का सहोदर पैदा हुआ—और प्रजा-तन्त्र, व्यक्तिगत अधिकारों तथा राजनैतिक स्वतन्त्रता को, एक और करारा प्रहार सहना पड़ा।

अपनी अयोग्यता और कमीनेपन के बावजूद भी पन्द्रहवें लुई की राज्य में उसकी एकमात्र सत्ता के बारे में कोई सन्देह न था। ...पेरिस में १७७६ ई० में एक सभा के सामने बोलते हुए उसने जो शब्द कहे थे वे सुनने लायक हैं: —...राज्य सत्ता पूरे तौर पर सिर्फ मेरे ही व्यक्तित्व में निवास करती है।...सिर्फ मुझको ही बिना किसी का सहारा या मदद लिए कानून बनाने का पूरा हक है। प्रजा की शान्ति का एक-मात्र स्त्रोत मैं ही हूँ। मैं ही इसका सबसे बड़ा रक्षक हूँ। मेरी प्रजा की मुझसे अलहदा कोई हस्ती नहीं है। राष्ट्र के अधिकार और हित, जो कुछ लोगों के दावे के मुताबिक बादशाह से कोई अलग चीज हैं, वे जरूरी तौर पर मेरे ही अधिकार और हित हैं और मेरी मुट्ठी में रहते हैं। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ४८२ प्रथम खण्ड)

सोलहवाँ लुई बड़ा बेवकूफ और बुद्धिहीन था। उसकी रानी मेरी एन्तोइनेत थी, जो आस्ट्रिया के हैप्सबर्ग सम्राट की बहन थी। यह भी बिल्कुल बेवकूफ थी जिससे सोलहवाँ लुई बिल्कुल उसकी मुट्ठी में था।

उसमें बादशाही के 'दैवी अधिकार' की भावना लुई से भी ज्यादा थी और वह आम लोगों से नफरत करती थी। इन दोनों पति और पत्नी ने सल्तनत के ख्याल को लोगों के लिए घृणापूर्ण बनाने में कोई कसर न रखी।

ठीक इसी तरह १६१७ में रूस की राज्य क्रान्ति शुरू होने से पहले रूस के जार और जरीना ने अजीब बेवकूफी का बर्ताव किया था। लैटिन की एक प्रसिद्ध कहावत इन लोगों पर ठीक तरह लागू होती है। 'परमात्मा जिसका नाश करना चाहता है, उसको पहले पागल बना देता है।" बिल्कुल ऐसी ही कहावत संस्कृत में भी है "विनाश काले विपरीत बुद्धिः।" (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ५१४ प्रथम खण्ड)

'राज सत्ता मेरी खेल है"—नेपोलियन।

काल के गाल में पड़ा हुआ कोई भी समाज या वर्ग समय के इशारों को शायद ही पहचानता हो। शायद ही कभी यह समझता हो कि उसका अपना काम और मकसद पूरा हो चुका है, और इसलिए सर्व शक्तिमान् घटना चक्र द्वारा बेईज्जती से खदेड़े जाने के पहले ही वहाँ से हट जाना चाहिए। वह इतिहास की शिक्षा को शायद ही कभी समझता है, और शायद ही कभी इस बात को महसूस करता है कि दुनिया उसे, किसी के शब्दों में, 'इतिहास की रद्दी की टोकरी' में छोड़ती हुई आगे धावा बोलती जा रही है। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू पृ० ५८८ प्रथम खण्ड)

वह तो एक मानवी भूकम्प था जो इतिहास में समय-समय पर हुआ करता है और जिनको सामाजिक परिस्थितियाँ और वर्षों की लगातार मुसीबतें और जुल्म धीरे धीरे लेकिन जरूरी तौर पर तैयार करती हैं। (विश्व इतिहास की झलक ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ५३२ प्रथम खण्ड)

शुरु के दिनों में यानी अठारहवीं सदी के आखीर और उन्नीसवीं के शुरु में लोक सत्तावादियों में बड़ा जोश था कि लोक सत्ता सबको आजाद और समान नागरिक बना देगी और हुकूमत सबके सुख का उपाय करेगी। अठारहवीं सदी के राजाओं और सरकारों ने जिस मनमानी और अपनी निरंकुश सत्ता का जैसा बुरा इस्तमाल किया था उसके खिलाफ बड़ी प्रतिक्रिया हुई, इससे लोगों को अपनी घोषणाओं में मनुष्यों के अधिकारों का भी एलान करना पड़ा। (विश्व-इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ७४६ प्रथम खण्ड)

बुराइयों का एक मात्र इलाज समझा जाने लगा। प्रजातन्त्र का आदर्श यह था कि किसी के कोई विशेषाधिकार न होने चाहिए। राज्य हरेक व्यक्ति को राजनैतिक और सामाजिक दृष्टि से समान हैसियत का समझकर बर्ताव करे। अवश्य ही लोग कई बातों में एक दूसरे से बहुत भिन्नता रखते हैं; कुछ लोग दूसरों की बनिस्बत ज्यादा मजबूत होते हैं, कुछ ज्यादा बुद्धिमान और कुछ ज्यादा निःस्वार्थ होते हैं, लेकिन प्रजातन्त्र के पक्षपातियों का कहना था कि उनमें चाहे और कुछ भी अन्तर हो, मनुष्यों का राजनैतिक दर्जा एक ही रहना चाहिए। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ५७६ प्रथम खण्ड)

जनता को यह पता लगाने में बहुत दिन लगे कि, सिर्फ कानूनी बराबरी और वोट देने का हक असली समानता या स्वाधीनता या आनन्द नहीं दे सकते। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ५२२ प्रथम खण्ड)

चूसने की तरकीबें अलग अलग युगों में भले ही बदलती रहें लेकिन तत्व वही रहता है। (विश्वइतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू पृ० ४६४ प्रथम खण्ड)

गरीबी और मुसीबतों और पूँजीवादी प्रणाली की पारस्परिक विरोधी बातों अथवा बुराइयों का खात्मा करने में उन्होंने इसे असफल होते

पाया। उन्होंने सोचा कि भूख से पीड़ित मनुष्य को मताधिकार मिलने से क्या फायदा हुआ और उसे मिली हुई आजादी का क्या महत्व, अगर उसका मत या सेवायें एक समय के भोजन के मूल्य पर खरीदी जा सकें ? इसलिए प्रजातन्त्र बदनाम हो गया, या यों कहना ठीक होगा कि, राजनैतिक प्रजातन्त्र का पक्ष कमजोर हो गया। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ५७६ प्रथम खण्ड)।

भूखे आदमी से कहना कि तुम आजाद हो; उसका मुँह चिढ़ाना है। इसलिए दूसरा कदम आर्थिक आजादी की लड़ाई की तरफ बढाया गया और यह लड़ाई सारी दुनिया में आज जारी है। सिर्फ एक देश के बारे में यह कहा जा सकता है कि वहाँ आमतौर पर जनता को आर्थिक आजादी मिली है और वह देश रूस है, या यों कहो कि सोवियट यूनियम है। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ३३१ प्रथक खण्ड)

धीरे धीरे प्रजातन्त्र एक आदर्श न होकर कुछ स्वार्थी लोगों का पन्थ हो गया। प्रजातन्त्र पूँजीपतियों के अनुकूल था और उन्हें इस बात की स्वतन्त्रता प्रदान करता था कि वे, निजी उद्यम करके, मशीनों की सहायता से स्वदेश-विदेश दोनों का शोषण कर सकें। लेकिन मजदूरों व सर्व साधारण, कुटीर उद्योगियों, कारीगरों तथा शिल्पकारों के लिए यह प्रजातन्त्र—एक तन्त्र से भी ज्यादा उत्पीड़न देने वाला हो गया। इसलिए जब अपनी नवीन आदर्श व्यवस्था व मानवीय अधिकारों की घोषणा करता हुआ यह प्रजातन्त्र प्रगति कर रहा था—मशीनों के भी साथ साथ विकास के कारण प्रजातन्त्र की आर्थिक अवस्था असन्तुलित व अत्यन्त ही निकृष्ट श्रेणी की हो गई। निरंकुश शासन व धर्माधिकारियों के ईश्वरीय अधिकारों के समय में मशीनें न थीं, इसलिए मानव अस-

शक्ति का मूल्य समझा जाता था। सभी व्यक्तियों को श्रम मिल जाता था और किसी भी व्यक्ति को आर्थिक दुरावस्था नहीं देखना पड़ता था। इन निरंकुश व एकतन्त्रीय शासन में जनता की आजीविका को न छीनकर, उनके द्वारा उपार्जित धन को ही छीना जाता था। एकतन्त्री शासन में यदि कोई खराबी थी तो केवल यही थी कि जनता के ऊपर अत्याचार किया जाता था। आर्थिक पहलू तो कोई भी सामने न था।

प्रजातन्त्र ने जनता की इस राजनैतिक दुरावस्था व उसके ऊपर किए जाने वाले अत्याचार से ही बचने का उपाय बताया। अपने इस प्रयत्न में प्रजातन्त्र सफल भी हुआ। लेकिन उसे क्या मालूम था कि जमाना तेजी से आगे बढ़ रहा है। प्रजातन्त्र तो अभी ही, बहुत बड़ी लड़ाई लड़ कर, थोड़ा दम मार रहा था। इसी बीच में सर्वत्र मशीनें छा गईं, और आर्थिक पहलू सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया। मानव का उद्धारक प्रजातन्त्र इस एकाएक पैदा हुई नवीन परिस्थिति का मुकाबला करने में नितान्त असमर्थ था। इसलिए प्रजातन्त्र को छोड़कर जनता उन आदर्शों अथवा व्यवस्थाओं की ओर आकर्षित होने लगी, जो आर्थिक मामलों पर विशेष ध्यान देती थी। साम्यवाद का जन्म ही आर्थिक नवीन-व्यवस्था के लिए हुआ था, इसलिए सर्वसाधारण का झुकाव, प्रजातन्त्र की उपेक्षा कर, साम्यवाद की ओर होना स्वाभाविक ही था।

साम्यवाद (Socialism) क्या है ? साम्यवाद की सैकड़ों परिभाषाएँ हैं, और साम्यवादियों के सहस्रों पंथ हैं, परन्तु साम्यवाद वास्तव में, सार्वजनिक कल्याण के दृष्टि-कोण से, सम्पत्ति विचार की विवेचना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। (संसार का संक्षिप्त इतिहास, ले० एच० जी० वैल्स; अनु० श्री मदन गोपाल, पृ० १६६ द्वितीय-खण्ड)

यदि मशीनों का विकास कुछ काल पश्चात् होता तो प्रजातन्त्र को थोड़ा बहुत समय अवश्य मिल जाता, जिसमें हम साफ तौर से उसकी अच्छाइयाँ, राजनैतिक दृष्टि के साथ साथ आर्थिक दृष्टि से भी, देख सकते थे। लेकिन यह प्रजातन्त्र का दुर्भाग्य ही था जो ऐन मौके पर मशीनों के कारण यह नई उलझन में फँस गया। शीघ्र ही संसार दो भागों में विभाजित हो गया और दोनों ही सर्व शक्तिमान् प्रमाणित हुए। स्वार्थी, मानवता के शोषक व केवल अपनी ही समृद्धि करने वाले व्यक्ति व राष्ट्र, प्रजातन्त्र की आड़ में खड़े होकर अपना कार्य सिद्ध करने लगे। दूसरी ओर मानव के व्यक्तित्व को अपहरण कर राज्य को ही सर्व-शक्तिमान् व सर्वाधिकार पूर्ण बनाकर, कुछ प्रभावशाली व्यक्ति साम्यवाद की आड़ से अपनी अधिकार लिप्सा को तृप्त करने लगे। शीघ्र ही प्रजातन्त्र—शोषकों, साम्राज्यवादियों, व हृदय होन मानवों की बपौती हो गई। इस भीषण क्रूरता व भोग तथा अपने 'अत्याचार को अपना अधिकार समझने की भावना'—की प्रज्वलित अग्नि में घृत की आहुति पड़ी। वह आहुति डारविन थ्योरी (१८५६) के रूप में हुई। स्वार्थवादियों व साम्राज्यवादियों ने, उसे तोड़ मरोड़ कर, गलत अर्थों को निकालकर, अपने घृणित कार्यों की उपयुक्तता सिद्ध करना शुरू किया।

संसार का प्राणी आदि अवस्था से ही अपनी रक्षा करता आया है। प्रकृति के थपेड़ों दैवी आपदाओं, अन्य पशुओं से रक्षा व सहन शक्ति का आधिक्य करके ही—सांसारिक प्राणी जीवित रह सका। जो प्राणी ऐसा न कर सके उनका, उनकी जाति का अस्तित्व हमेशा के लिए समाप्त हो गया। "संसार में वही रह सकता है जो यहाँ रहने की शक्ति रखता हो। जो

कमजोर हैं, वे यहाँ पर नहीं रह सकते।" यह सिद्धान्त संसार की उस आदिम अवस्था पर लागू होता है जब चारो ओर घोर अव्यवस्था, जंगलीपन और परिवर्तन हो रहे हों। घोर संकट, अव्यवस्था तथा उलट-फेर के समय अक्सर ऐसा होना स्वाभाविक है। किसी भूकम्प के कारण, या ज्वालामुखी फटने के कारण, या भीषण बाढ़ के समय अथवा युद्ध के समय या भीषण आर्थिक संकट या दुर्भिक्ष के समय में भी, ऐसी स्थिति देखने को मिल जाती है। जिस समय सांसारिक जीव या प्राणी पर विपत्ति आती है, उस समय ही उसे अपनी शक्ति विवेक तथा सहनशीलता—या अपने को परिस्थितियों के अनुकूल बदलने की आवश्यकता पड़ती है। भीषण आँधी में स्वभावतः वही पेड़ खड़े रह सकते हैं जो अत्यधिक तथा सबसे मजबूत होते हैं।

संसार की उथल पुथल हमेशा नहीं कायम रहती। यह उथल पुथल थोड़े ही समय के लिए होती है। ज्यादा समय शांति व सुव्यवस्था का ही होता है। ऐसी अवस्था में सांसारिक प्राणी भी शान्त व सुव्यवस्थित होकर उन्नति के पथ पर निरन्तर अग्रसर होता है। डारविन थ्योरी के अनुसार मानव भी इसी निरन्तर विकास का ही द्योतक व परिणाम है। सांसारिक प्राणी, विकास के साथ साथ, सभ्यता की ओर भी अग्रसर होता जाता है। धीरे धीरे उसमें मानवीय गुण पैदा होने लगते हैं। उसमें भावनाओं का प्रादुर्भाव हो जाता है। एक समय वह भी आता है जब समस्त सृष्टि को वह सांसारिक प्राणी बन्धु समझने लगता है और प्राणी मात्र की सेवा करना ही अपना धर्म समझ लेता है। सत्य, अहिंसा, प्रेम, व त्याग आदि गुणों का उसमें समावेश हो जाता है। तब वह सांसा-

रिक जीव या प्राणी उन्नति व विकास के एक उच्च शिखर पर पहुँच जाता है ।

कान्टे को ऐसा लगता था कि पुराने कट्टर धर्म का समय चला गया । मगर समाज को किसी न किसी धर्म की आवश्यकता जरूर है । इसलिए उसने 'मानवी धर्म' का प्रस्ताव किया और उसका नाम वास्तविकता वाद (Positivism) रखा इसके आधार प्रेम व्यवस्था और उन्नति रखे गए । इसमें कोई बात अलौकिक नहीं थी । जो कुछ था वह विज्ञान के अनुसार था । (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ७५२ प्रथम खण्ड)

संस्कृति के अंदर पाई जाने वाली अनेक बातों में से निस्सन्देह एक चीज यह भी है—अपने ऊपर संयम और दूसरों की सुविधा का लिहाज । अगर किसी आदमी में अपने पर संयम नहीं पाया जाता और वह दूसरों की सुविधा का कोई ख्याल नहीं करता तो हम निश्चय पूर्वक कह सकते हैं कि वह आदमी असभ्य और बदतमीज है । (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ५६ प्रथम खण्ड)

यह श्लोक जो सबक हमें सिखाता है वह सबक है सहयोग का और सार्वजनिक हित के लिए बलिदान करने का । हिन्दुस्तान के हम लोग असल महानता के इस राज मार्ग को बहुत दिनों तक भूले रहे, इसीलिए हमारा पतन हुआ । (श्लोक—कुल के लिए व्यक्ति को, समाज के लिए कुल को, देश के लिए समाज को और आत्मा के लिए सारी दुनिया को छोड़ देना चाहिए) (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू पृ० १४ प्रथम खण्ड)

मानव समाज को सम्बोधन कर प्लेटो ने (ई० पू० ४२७-३४७) स्पष्ट शब्दों में कहा है 'जिन सामाजिक एवं राजनैतिक बुराइयों के कारण आप इस समय कष्ट उठा रहे हैं उनमें से अधिकांश का निराकरण आपकी ही शक्ति में है । प्रबल इच्छा शक्ति और साहस के द्वारा आप

उन्हें दूर कर सकते हैं। यदि आप विचार करें तो आप अबसे कहीं अच्छी और बुद्धिमता पूर्ण रीति से जीवन यापन कर सकते हैं। आपको अपनी शक्ति का ज्ञान नहीं है। (संसार का संक्षिप्त इतिहास, ले० एच० जी० वैल्स, अनु० श्री नारायण चतुर्वेदी, पृ० १६२ प्रथम खण्ड)

जब हम किसी जटिल एवं गहन विषय का मनन करते हैं तब उस विषय का हमारा ज्ञान इतने धीरे-धीरे बढ़ता है कि उसकी वृद्धि का हमको लेश मात्र भी बोध नहीं होता। परन्तु पूर्ण ज्ञान प्राप्त करते ही सहसा प्रकाश की भाँति अंतरात्मा दीप्तिमान् हो उठती है और उसी समय आत्मा को पूर्ण विजय का बोध होता है। (संसार का संक्षिप्त इतिहास, ले० एच० जी० वैल्स, अनु० श्री नारायण चतुर्वेदी, पृ० १८३ प्रथम खण्ड)

मनुष्य की वासनाएँ ही दुःख का मूल हैं – यही इनकी (गौतम बुद्ध) शिक्षा थी। जब तक मनुष्य की वासनाओं का अन्त नहीं होता तब तक उसका जीवन कष्ट-मय रहेगा, और अंत भी दुःखपूर्ण होगा। जीवन में तीन प्रकार की वासनाएँ होती हैं और तीनों ही बुरी हैं। प्रथम वासना में क्षुधा, लोभ, तथा सब प्रकार के विषय भोगों की गणना होती है। व्यक्तिगत अहंकार और अमरत्व की वासनाएँ द्वितीय श्रेणी की वासनाएँ हैं। तीसरी वासना व्यक्तिगत सफलता, सांसारिकता, लोभ इत्यादि हैं। प्रत्येक प्रकार की वासना को जीत कर ही मनुष्य जनित कष्ट एवं घृणा से बच सकता है। इनको जीत लेने पर और अहंभाव के नाश हो जाने पर आत्मा को परम पद अर्थात् निर्वाण की प्राप्ति होती है। (संसार का संक्षिप्त इतिहास, ले० एच० जी० वैल्स, अनु० श्री नारायण चतुर्वेदी, पृ० १८४ प्रथम खण्ड)

चन्द्रगुप्त के पुत्र ने इस नवीन साम्राज्य की सीमा में और वृद्धि की, यहाँ तक कि उसका पौत्र अशोक—जिसका वृतांत हम लिखने जा रहे हैं (ई० पू० २६४) मदरास से लेकर अफगानिस्तान तक समस्त

प्रदेशों पर शासन करने लगा। युद्ध में उसको पूर्ण सफलता मिली, परन्तु पृथ्वी के समस्त विजेताओं में केवल अशोक ही ऐसा हुआ जिसका हृदय युद्ध की नृशंसता एवं यन्त्रणाओं से ऐसा द्रवित हो गया कि उसने सदा के लिए ही त्याग दिया। उसने युद्ध की सदा के लिए मनाही कर दी। (संसार का संक्षिप्त इतिहास, ले० एच० जी० वैल्स अनु० श्री नारायण चतुर्वेदी, पृ० १८६ प्रथम खण्ड)

कनफुची (ई० पू० छटी शताब्दी) के उपदेशों में बताया गया है कि श्रेष्ठ अथवा उच्च कुलाभिभूत पुरुष को किस रीति से जीवन व्यतीत करना चाहिए। गौतम बुद्ध जिस प्रकार अहंभाव को भुलाकर शान्ति प्राप्त करने पर, तथा यूनानी बाह्य ज्ञान पर और यहूदी धार्मिकता पर जोर देते थे, उसी प्रकार उसने भी व्यक्तिगत आचरण पर विशेष जोर दिया। कनफुची अन्य शिक्षकों से कहीं अधिक जनता का हित चिन्तक था। संसार की अव्यवस्था एवं दुःखों को देखकर उसका हृदय व्यथित हो उठता था। उसकी अभिलाषा थी कि मनुष्य श्रेष्ठ हो जायँ जिससे कि संसार श्रेष्ठ हो जाय। (संसार का संक्षिप्त इतिहास, ले० एच० जी० वैल्स, अनु० श्री नारायण चतुर्वेदी, पृ० १६४ प्रथम खण्ड)

१७ जुलाई को इकटेरिन्बर्ग में जार जरीना का वध किया गया। १८ जुलाई को ड्यूकों और डचेजों का नम्बर आया। सबकी आँखों पर पट्टियाँ बाँध दी गई और लोहे के काटों के ढेर पर उन्हें छोड़ दिया गया और तब पलीते में आग लगा दी गई—एक ही धड़ाके में सब कुछ समाप्त हो गया।

तभी उधर से गुजरते हुए किसी किसान ने सुना—'भगवान, इन्हें क्षमा करना। ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं'।

निश्चय ही यह वाणी मानवता की पुजेरिणी संत ऐलिजाबेथ की थी। (नवनीत, हिन्दी डाइजेस्ट, अक्टूबर १६५३ पृ० २४)

जो व्यक्ति स्वार्थी व लोभी होते हैं वे अपने ही दृष्टिकोण से सर्वत्र देखते हैं। स्वार्थ और लोभ उन्हें भावना हीन बनाकर, उनमें क्रूरता, हिंसा तथा अनैतिकता को जन्म देती है। पुरातन काल से ही जीवों को एक दूसरे से लड़ते झगड़ते देखकर, मजबूतों द्वारा कमजोरों का विनाशकर दिए जाने पर, तथा अनेकों रोमांचकारी दृश्यों की अवस्था में,– इन क्रूर मनुष्यों को अपने अनुकूल वातावरण मिल गया। आपसी मारकाट, दूसरों पर प्रभुत्व, तथा दूसरों की आजीविका का नाश—सृष्टि के आरम्भ से ही होता चला आया देखकर उन्होंने उसे अपनी प्रकृति के सामंजस्य में ही पाया। मनुष्यों में अपने को सर्व-श्रेष्ठ व सर्व-शक्तिमान् कहने वाले इन व्यक्तियों ने डारविन थ्योरी की केवल ऊपरी बातों को ही देखा, और यह भूल गए कि विकास का मूल बीज क्या है, और वे स्वयं बन्दर से आदमी के रूप में विकसित क्यों कर हो गए ? यदि आदिम प्राणियों ने उचित रीति का अवलम्बन कर अपना विकास न किया होता तो आज न तो यह मानव सृष्टि (डारविन थ्योरी के दृष्टिकोण से) ही सम्भव होती और न यह सिद्धान्त ही निकाला जा सकता कि सांसारिक प्राणी निरन्तर स्वाभाविक रीति से विकसित ही होता जाता है। हम यह देखेंगे कि संसार में प्राणियों का विकास तभी सम्भव हुआ जब उन्होंने आपसी सहयोग, प्रेम, व भावना को अपने में जाग्रित किया। एक दूसरे का अनुकरण कर, उससे शिक्षा ग्रहण कर, तथा विपत्ति में आपसी सहायता व भाई-चारा का आदर्श ही सामने रखकर, सांसारिक प्राणियों ने अपनी उन्नति की। प्राणियों के विकास का मूल मन्त्र ही यही है –सहयोग प्रेम, व भाई-चारा। यदि इस मूल मन्त्र के

अनुसार न चला जाय तो विकास की जगह ह्रास ही होता है। हम यह आसानी से समझ सकते हैं कि, इन अपने को सर्व-शक्तिमान् कहने वाले व्यक्तियों ने यदि अपने विकास के हेतु अन्य मार्गों का अवलम्बन किया तो क्या उन्होंने उचित या न्याय संगत कार्य किया ?

ताज्जुब की बात यह हुई कि शासक वर्ग ने भी डारविन के उसूलों को तोड़ मरोड़ कर उससे अपनी सुविधा का अर्थ निकाल लिया। उनको पक्का विश्वास हो गया कि इस उसूल से उनके बड़प्पन या उच्चता का प्रमाण मिल गया। यह साबित हो गया कि जिन्दगी की लड़ाई में वे सबसे काबिल थे, इसलिए बच रहे थे और इस तरह वे 'प्राकृतिक चुनाव' से ऊपर आ गए और शासक वर्ग बन गए। एक वर्ग के दूसरे वर्ग पर और एक जाति के दूसरी जाति पर प्रभुता रखने के पक्ष में यह एक दलील बन गई। साम्राज्यवाद और गोरी जातियों के सबसे ऊंचे होने के अधिकार की यह आखिरी दलील हो गई और पश्चिम के बहुत से लोग सोचने लगे कि वे दूसरों पर जितनी धौंस रखेंगे और जितने बेरहम और ताकतवर बनकर रहेंगे, उतनी ही मनुष्य रूप में उनकी कीमत और ईज्जत बढ़ेगी। यह कोई सुहावना तत्व ज्ञान नहीं है। मगर इससे एशिया और अफ्रीका में पश्चिम की साम्राज्यवादी कौमों ने जैसे शर्मनाक काम किए है, उनका अर्थ कुछ कुछ समझ में आ जाता है। डारविन के उसूल का साम्राज्यवादियों ने जो मतलब किया है उसके मुताबिक तो चंगेज़ खाँ को उस जमाने का, संस्कृति का बढ़िया से बढ़िया नमूना मानना होगा, क्योंकि उसने एशिया और योरप को कब्जे में करके उनका खासा हिस्सा बर्बाद कर दिया था। अथवा यूं कहो कि अटिला के हूण अनुयायी अपने जमाने के आदर्श थे। आज भी पश्चिम के कुछ लोग इन मकालों को मानकर उन पर अमल करने को तैयार

है। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ७४३ प्रथम खण्ड)

यह सर्व सम्मत सिद्धान्त है कि जिस विश्व में हम रहते हैं वह युग युगान्तरों से और सम्भवतः अनादिकाल से, ऐसा ही चला आता है। (संसार का संक्षिप्त इतिहास, ले० एच० जी० वैल्स, अनु० श्री नारायण चतुर्वेदी, पृ० १ प्रथम खण्ड)

विश्व वैचित्र्य तो अनन्त और धारावाही है, यहाँ सदैव उन्नति होती रहती है। इतिहास में किसी घटना की पुनरावृत्ति नहीं होती, और न किसी दूसरे से पूर्णतया सादृश्य ही हो सकता है। (इस मान्यता के अनुसार) ध्यान पूर्वक देखने से मध्य जीव-युग और नवीन जीव-युग के प्राणी वर्ग में, सादृश्य की अपेक्षा अन्तर ही अधिक स्पष्ट और गहरा दृष्टिगोचर होता है।

वास्तव में इन दोनों कालों का मौलिक भेद इन दो युगों की मानसिक जीवन की विभिन्नता में है। इस विभिन्नता का मुख्य कारण यह है कि स्तनपेयी जीव और (कुछ सीमा तक) पक्षी भी अपनी सन्तान से उनके जन्म के बाद कुछ दिनों तक तो अवश्य ही सम्पर्क बनाए रखते हैं। सरी सृपों के जीवन में यह बात नहीं होती। रेंग कर चलने वाले प्राणी बहुधा अपने अण्डों को नहीं सेते और उन्हें छोड़ कर चल देते हैं। इसी कारण सरी सृप की सन्तान को अपने माता पिता का तनिक सा भी ज्ञान नहीं होता। उनका मानसिक जीवन का आरम्भ और अन्त, जितना कुछ भी है, अपने ही अनुभव पर निर्भर रहता है। वे अपने सजातियों को अपने पास चाहे सहन कर लें, किन्तु वे उनसे किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रख सकते। अतएव वे न तो दूसरों का अनुकरण करते हैं, न उनसे कुछ सीखते हैं, और न उनके साथ मिलकर सामुहिक शक्ति द्वारा कोई कार्य ही सम्पादन कर सकते हैं। उनकी जीवन लीला एकांकी रहने वाले प्राणियों की भाँति समाप्त हो जाती है। परन्तु इन नवीन

स्तनपेयी जीवों और पक्षियों का प्रधान लक्षण नवजात सन्तति को स्तन-पान कराना, उनकी शुश्रुषा और भरण पोषण करना था। अतएव इनमें अनुकरण द्वारा शिक्षा प्राप्त करने और भय सूचक शब्दों अथवा पारस्परिक नियन्त्रण और शिक्षा देने वाले सामूहिक कार्य करने तथा एक प्राणी का दूसरे प्राणी से सहयोग होने की सम्भावना हो गई। संसार में शिक्षा प्राप्त करने योग्य प्राणी जीवन का सर्व प्रथम जन्म हुआ। (संसार का संक्षिप्त इतिहास, ले० एच० जी० वैल्स, अनु० श्री नारायण चतुर्वेदी, पृ० ४२ प्रथम खण्ड)

अधिक प्राचीन काल के स्तन पेयी जीव तो शायद स्तन पान का समय बीतते ही अपनी सन्तति से पृथक हो जाते थे। परन्तु एक बार एक दूसरे को समझने का सामर्थ उत्पन्न होने पर पारस्परिक सम्पर्क का लाभ भली भाँति मालूम हो जाता है, और शीघ्र ही हमको स्तन पेयी प्राणियों की कुछ जातियाँ मिलने लगती हैं जिनमें सामाजिक जीवन का उदय हो चला था, और जो समूह अथवा झुण्डों में रहकर, न केवल एक दूसरे की रक्षा और अनुकरण करती थीं, प्रत्युत दूसरों के कार्य और चीत्कारों से भी आदेश ग्रहण करती थीं।...इन सामाजिक और यूथा-चारी स्तनपेयी प्राणियों का संसर्ग वाह्य हेतुओं के स्थान में आन्तरिक चित्त प्रवृत्तियों के आवेग के कारण ही स्थायी बना रहता है। एक दूसरे के सामाना-कृत होने के कारण ही वे स्थान पर एकत्र होते हों सो बात नहीं, वरन् पारस्परिक मोह होने से ही वे झुण्ड बना फिरते हैं।...स्तन-पेयी पशुओं और पक्षियों में आत्म निरोध और दूसरों के लिए चिन्ता का भाव पाया जाता है। अर्थात् उनमे ऐसा सामाजिक प्रेम और आत्म संयम है जो निम्न श्रेणी पर मानवीय प्रकृति के अनुसार ही है। इसी कारण हम प्रायः उन सबसे सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। जब वे कष्ट में होते हैं तब वे इस प्रकार चिल्लाते और अंग विक्षेप करते हैं कि उनके साथ हमारी सहानुभूति हो जाती है और हम दयार्द्र हो जाते हैं।

हम उनको समझदार पालतू बना सकते हैं, जिससे हम दोनों परस्पर पहिचान सकें। हम उन्हें शिक्षा दे सकते हैं और उनमें ऐसा भाव पैदा कर सकते हैं कि वे हमारे साथ आत्म निग्रह से बर्ताव करें। (संसार का संक्षिप्त इतिहास, ले० एच० जी० वैल्स, अनु० श्री नारायण चतुर्वेदी, पृ० ४४ प्रथम खण्ड)

इस प्रकार आधुनिक युग में मशीनों के प्रचार और क्रूर व्यक्तियों के अनोखे सिद्धान्त ने प्रजातन्त्र की दुर्दशा कर डाली। गलत सिद्धान्तों को ग्रहण कर मानव, उन्नति के पथ पर, अग्रसर होने के बजाय अवनति के गढ़े में गिरने लगा। मानव जाति बन्दर की सन्तान—अपने में ही एक दूसरे पर अत्याचार व नृशंस व्यवहार करने लगी। फिर यह मानव जाति की तुलना उन सरी सृपों से आसानी से की जा सकती है, जिनमें कोई भी सहयोग या चित्त-प्रवृत्तियों का आवेग नहीं होता। इसका नतीजा वही हुआ जो स्वभावतः होना चाहिए था। प्रथम, व द्वितीय विश्व युद्ध ने मानव को भयानक रीति से उत्पीड़ित व संहार किया। दो भिन्न वर्गों का प्रादुर्भाव हुआ और आज इन नृशंस व घोर-कृतीय महाप्रभुओं पर जिस विपत्ति के बादल मंडरा रहे हैं वह किसी से छिपा नहीं है।

प्रजातन्त्र सिद्धान्तः अच्छा है, लेकिन मशीन युग के कारण यह पूर्ण विफलता को प्राप्त हो रहा है। आज हम रावण युग की ओर अग्रसर हो रहे हैं, न कि रामराज्य की ओर। हमारी आर्थिक अवस्था ही बालू की भित्ति पर आधारित है। मानव, मानव पर प्रभुता पाने का प्रयत्न करता है। वह ज्यादा भोग विलास व सुख चाहता है। पर किस तरह? दूसरों के हितों का बलिदान कर। दूसरों की रोटी छीनकर, दूसरों का शोषण करके। आज एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का शोषण करता है। एक जाति

दूसरे जाति का शोषण करता है। एक देश दूसरे देश का शोषण करता है। वर्तमान में शोषण शब्द अत्यन्त ही प्रसिद्ध व सर्व-प्रचलित है। आज शोषण के सिवा और कुछ है ही नहीं। इंगलैंड, अमेरिका, जापान (!) आदि देश इस क्रिया के अगुआ व जन्मदाता हैं। यह सभी देश दूसरे अन्य देशों का शोषण कर चुके हैं और अभी भी करते हैं। ये देश दूसरे देशों से अधिक धनी व सम्पन्न रहे हैं। यहाँ का प्रत्येक व्यक्ति दूसरे देशों के व्यक्ति से ज्यादा धनवान व खुशहाल होता चला आया है। अमेरिका (U. S. A.) की जमीन, वहाँ की धरती ज्यादा विस्तृत व सम्पन्न है। सम्पत्ति का उत्पादन अत्यधिक है। वहाँ के निवासी भी अत्यधिक सम्पन्न हैं। लेकिन यह सम्पन्नता भी स्वाभाविक ढंग की नहीं है। स्वाभाविक बनाने के लिए उसे भी शोषण की प्रथा का अवलम्बन करना पड़ता है। पर्दे की ओट से वह आर्थिक साम्राज्य, जो राजनैतिक साम्राज्य से भी कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण है, स्थापित करता रहा है।

अमेरिकन लोग किसी मुल्क को मिलाने की जिल्लत में नहीं पड़ते जैसे अंग्रेज़ों ने हिन्दुस्तान को अपने राज्य में मिला रखा है। उनको तो अपने असली माली मुनाफे से मतलब है। इसलिए दूसरे मुल्क की दौलत पर कब्जा जमाने की तरकीबें निकालते रहते हैं। दौलत पर कब्जा करने के बाद, मुल्क की जनता पर और फिर मुल्क पर ही कब्जा करना सहज हो जाता है। सो बिना जिल्लत या झगड़े के ये लोग मुल्कों पर कब्जा करके दौलत में हिस्सा बाँट लेते हैं। इस चालाकी के उपाय को आर्थिक साम्राज्यवाद कहते हैं। नक्शे में इसका पता नहीं चलता। अगर भूगोल की किताब या एटलस में देखो तो मुल्क आजाद मालूम होगा। पर अगर परदे को हटा कर देखो तो मालूम होगा कि यह किसी

दूसरे ही देश के चंगुल में है, या यह कहना बहुत ज्यादा ठीक होगा कि वहाँ के साहूकारों और बड़े बड़े व्यवसाइयों के चंगुल में है। अमेरिका के कब्जे में जो साम्राज्य है, वह इसी तरह का अदृश्य यानी आँखों की ओट में रहने वाला साम्राज्य है। यह साम्राज्य चाहे नजरों से ओझल हो पर है जोरदार। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ६८२ प्रथम खण्ड)

प्रजातन्त्र में स्वतन्त्र व्यक्ति ने अपने स्वाधीन व्यक्तित्व का मशीनों की सहायता से नाजायज व घृणित लाभ उठाया। शोषितों का शोषण कर उन्हें अपने भाग्य पर ही जीने-मरने को छोड़ दिया। मशीनों का निरन्तर व प्रगतिशील व्यवहार कर उन्होंने करोड़ों नर-नारियों को बेकार बना दिया। प्रजातन्त्र में बिना उपयोगी श्रम के किसी को पुरस्कार नहीं मिलता। बेकार व्यक्ति उपयोगी श्रम करना चाहता हुआ भी और श्रम करने की योग्यता व शक्ति रखते हुए भी जीवनोपार्जन के लिए को. भी काम नहीं पा सकता। अन्त में उसे भिखारी बनना पड़ता है या भूखों मर जाना पड़ता है। यही कारण है प्रजातन्त्र में भिखारियों, अपराधियों, तथा भुखमरी का निरन्तर प्रसार व इनकी वृद्धि होती रहती है। सिद्धान्त रूप से प्रजातन्त्र चाहे कितना ही स्वाभाविक व हृदय-स्पर्शी तथा सुन्दर क्यों न हो, पर व्यवहार रूप से वह पूर्णतः निष्फल सिद्ध हुआ है। ज्यादा से ज्यादा संख्या में ये पीड़ित जन-समुदाय और बुद्धिमान्, विवेकी समुदाय भी इस स्वतन्त्र व्यक्तित्व वाले प्रजातन्त्र से घबराकर साम्यवाद की ओर मुँह मोड़ रहे हैं। प्रजातन्त्र को शीघ्र ही अन्धकार के घोर गर्त में गिरकर विलीन हो जाने की सम्भावना होने लगी है। मशीनों का अनियन्त्रित व्यवहार प्रजातन्त्र के साथ साथ मानव को

भी घोर अज्ञान व दासता के अन्धकार में फेक देने वाला है। प्रजातन्त्र और मानव दोनों पर ही मशीनों की वक्र दृष्टि गड़ी हुई है।

सम्पत्ति के अन्दरुनी शक्ति के साथ औद्योगिक बेकार सेना की संख्या में भी वृद्धि होती है। लेकिन काम में लगे मजदूरों की तादाद के अनुपात में बेकारों की संख्या जितनी अधिक होती है उतनी ही उस अतिरिक्त जनसंख्या की वृद्धि होती है जिनकी मुसीबत उतनी ज्यादह है – जितना कम काम उनके करने को हो। अन्तिम बात यह है कि, बेकारों की तादाद में वृद्धि के साथ सरकारी बही खातों में दर्ज भिखारियों की तादाद बढ़ जाती है। (मार्क्स वादी अर्थशास्त्र, ले० श्री भूपेन्द्रनाथ सान्याल, पृ० १२३)

मनुष्य स्वतन्त्र और एक दूसरे के समान क्यां कर हो सकते हैं कि, जब बहुतों के खड़े होने के लिए भूमि और भोजन के लिए यत्किंचित अन्न भी नसीब नहीं होता। बिना श्रम के मालिक या पूँजी पति न तो भोजन ही देते हैं और न विश्राम ! यही था निर्धनों का लोक व्यापी क्रन्दन। (संसार का संक्षिप्त इतिहास, ले० एच० जी० वैल्स, अनु० श्री मदनगोपाल, पृ० १७१ द्वितीयखण्ड)

आजकल समझदार लोगो का झुकाव वैज्ञानिक रुप से अनुशीलन एवं आयोजित किये हुए साम्यवदीय क्रम की ओर शनैः शनैः हो रहा है। ......वर्ग शक्ति संज्ञा प्राप्त ये मजदूर लोग (भी !)। किसी न किसी प्रकार से शक्ति ग्रहण कर एक नवीन साम्यवादी राज्य स्थापित करेंगे। यही मार्क्स की भविष्य वाणी था। (संसार का संक्षिप्त इतिहास, ले० एच० जो०वैल्स, अनु० श्री मदनगोपाल, पृ० १७३ द्वितीयखण्ड)

———

*

७

साम्यवाद

गुलामी प्रथा तथा सामन्तशाही और निरंकुश सम्राटों को समाप्त कर प्रजातन्त्र ने जन्म लिया। प्रजातन्त्र ने अपने जन्म के साथ साथ मशीनों को भी जन्म दिया। दोनों ही जब व्यस्क हुए तो प्रजातन्त्र ने किसी प्रकार मशीनों को अपना दास बना लिया। लेकिन मशीनों ने अपनी इस पराजय को तथा गुलामी को हमेशा याद रखा। अपनी पराधीन अवस्था में ही अपनी बनावटी उपयोगिता दिखलाकर, उन्होंने अपनी शक्ति देखते देखते इतनी शीघ्रता से इतनी ज्यादा बढ़ा ली कि इन मशीनों का स्वामी प्रजातन्त्र भी आश्चर्य में आ गया। यह आश्चर्य शीघ्र ही भय में परिवर्तित हो गया। मशीनों ने अब स्वामी-भक्त नौकर की जगह नमक हराम नौकर का स्थान ग्रहण कर लिया। प्रजातन्त्र उसे अब किसी प्रकार काबू में न रख सकता था। प्रजातन्त्र ने दौड़ कर साम्यवाद की शरण ली। साम्यवाद अपनी सारी शक्तियों को एकत्रित कर मोर्चे पर आया। इस बार मशीनें फिर गुलाम बना ली गईं। प्रजातन्त्र के साम्राज्य को साम्यवाद हड़प गया। प्रजातन्त्र बिचारा भी अब गुलाम बना लिया गया। लेकिन मशीनों ने इस पराजय

को और भी अधिक क्रूरता से देखा। उन्होंने फिर वही पुराना उपयोगिता का ढोंग रचकर अपनी शक्ति को साम्यवाद से भी ज्यादा बढ़ा ली। मौका पाकर अब उन्होंने साम्यवाद को अपने चंगुल में जकड़ लिया और उसे भाग जाने का अवसर ही न दिया। अब बिचारा साम्यवाद मशीनों का गुलाम बन गया और मशीनों ने राजसिंहासन पर बैठकर कुटिल मुस्कान व चमकती आँखों के साथ अपनी मूछों पर ताव देना शुरू किया। राज-दरबार लगा था। प्रजातन्त्र और साम्यवाद दोनों ही बन्दी के रूप में असहाय व दीन अवस्था में, हाजिर थे। इनको प्राण दण्ड मिलने वाला था। जड़ मशीनों के साम्राज्य में चेतन का अस्तित्व कैसे सम्भव हो सकता था ? संसार में गुलामी प्रथा हमेशा से रही है और अभी भी है। भविष्य में उसका अन्त तभी होगा जब स्वयं गुलामी ही का साम्राज्य स्थापित हो जायगा। उस समय समस्त सृष्टि का अन्त हो जायगा !

इन गुत्थियों व कश-मकश में मानव आखिर करे तो क्या करे ? मशीनें न थीं तो वह गुलाम था और उस पर नाना प्रकार के अत्याचार व उसकी लूट खसोट की जाती थी। मशीनों को गुलाम बनाया गया तो मानव को गुलामी—यानी दास प्रथा से छुटकारा तो अवश्य मिला, लेकिन अब वह बेकार होकर दरिद्र होने व भूखों मरने लगा। साम्यवाद में जाकर मानव मशीनों के साथ स्वयं भी गुलाम बन गया और अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व को खो बैठा। मानव कितना बड़ा बेवकूफ है जो इतनी ज्यादा बुजुर्गी व अनुभवों को प्राप्त कर भी वह अपनी समस्या का हल, व अपनी खुशहाली, तथा अपनी गुलामी का अन्त न कर सका।

आज साम्यवाद ही, थोड़े ही समय के लिए सही, समस्त मुसीबतों व समस्याओं का अन्त करने वाला दिखाई देता है। साम्यवाद की व्यवस्था नवीन, अनोखी व हैरत में डालने वाली है। इसकी अपूर्व दृढ़ता व शक्ति देखकर दांतों तले उँगली दबानी पड़ती है साम्यवाद का जन्म व प्रयोग कथा भी अजीब व गरीब है। हम यह देख चुके हैं—साम्यवाद का जन्म क्यों कर और किस अवस्था में हुआ था। योरप में जिस जमय औद्योगिक क्रान्ति प्रारम्भ हुई, मशीनों की बाढ़ आने लगी, व बड़े बड़े कल कारखाने खुलने लगे उसी समय योरप में सर्व साधारण जनता का जीवन बड़ा अस्त-व्यस्त हो उठा। सर्वत्र बेकारी, दरिद्रता व भुखमरी फैलने लगी। मजदूरों की अवस्था विशेष रूप से शोचनीय थी। योग्य व बुद्धिमान् व्यक्तियों ने इस दुरावस्था को साफ देखा और इससे छुटकारे का उपाय वे खोजने लगे। कुछ महत्वपूर्ण व्यक्तियों ने साम्यवाद के सिद्धान्त को जन्म दिया ज आगे चलकर बड़ी तेजी से विकसित व शक्तिशाली हो गया। योग्य व्यक्तियों द्वारा नेतृत्व किए जाने से मजदूरों का आपसी संगठन अत्यन्त ही दृढ़ हो गया। इस साम्यवाद की छाया में रहने वाले मजदूरों के संगठन में पूर्ण रूप से नैतिक शक्ति मौजूद थी। इसी नैतिक शक्ति ने ही आगे चलकर बहुत बड़ा आश्चर्यजनक कार्य कर डाला।

उसने (नैपोलियन) कहा था—"तुम जानते हो मुझे सबसे ज्यादा ताज्जुब किस बात पर होता है ? इस बात पर कि हिंसापूर्ण शक्ति या जोर जबर्दस्ती की ताकत किसी भी चीज को संगठित करने के लिए कमजोर है। दुनियाँ में सिर्फ दो ही ताकतें हैं, एक तो आत्मा और दूसरी तलवार। आखिर में आत्मा हमेशा तलवार पर विजय प्राप्त करेगी।"

(विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ५५७ प्रथम खण्ड)

योरप के ठीक पूर्व ही रूस का विशाल भूखण्ड फैला था। इस विशाल भूखण्ड में जारशाही का निरंकुश शासन था। राज दरबार रास-पुटिन नामक एक अत्यन्त विलक्षण धूर्त धर्मध्वजी के हाथ में कठपुतली के समान नाच रहा था। जार की तलवार शक्ति अभी कम न थी, और किसानों पर जुल्म दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जाता था। किसानों का सर्वस्व अपहरण कर लेना जार के फौजियों या सिपाहियों के लिए मामूली बात थी। लेकिन अभूत पूर्व सहनशील रूसी किसानों के साथ इतनी ही छेड़खानी तक की जाती तो भी गनीमत थी। योरप की देखा देखी रूस ने भी औद्योगिक प्रसार करना शुरू किया। मशीनों का प्रादुर्भाव व कल कारखानों में बढ़ोती होने लगी। अन्त में इसका भी कुप्रभाव वही हुआ जिसे योरप का सर्व-साधारण भुगत रहा था। योरप के साम्यवादी, योरप में कुछ विशेष कार्य या सफलता न प्राप्त कर सके। इसका कारण यही था कि योरप की आर्थिक व्यवस्था बहुत कुछ हद तक साम्राज्यवादी नीति के कारण व एशियाई देशों के शोषण से सन्तुलित थी। लेकिन रूस के पास कोई अन्य देश शोषण करने के लिए न था। इसलिए असली, औद्योगिक विकास व मशीनों के प्रयोग का दुष्प्रभाव यहाँ की आर्थिक व्यवस्था व सन्तुलन पर भीषण रूप से पड़ा। यही कारण था कि, साम्यवाद के लिए सर्व प्रथम यहीं पर अपना कार्य क्षेत्र बनाने का मौका मिल गया।

जारशाही का जुल्मी शासन व उद्योग धन्धों में मशीनों के प्रयोग के कारण रूसी किसान व कारीगरों, गृह उद्योगियों

तथा शिल्पकारों पर दोहरी आफत आ गई। इनका रोजगार मारा गया व सर्वत्र बेकारी का व्यापक प्रादुर्भाव हुआ। किसानों की अतिरिक्त आमदनी मारी गई और काश्तकारी पर ही अधिक दबाव पड़ जाने से उनकी दशा और भी शोचनीय हो गई। इसके अतिरिक्त फैक्टरियों, कारखानों, में काम करने वाले मजदूरों की दशा योरप के मजदूरों से भी बुरी ही मानी जा सकती है। इन मजदूरों का संगठन धीरे धीरे दृढ़ होता गया और अन्त में साम्यवादियों के हाथ की यह कठपुतली हो गया। साम्यवादियों का बढ़ता हुआ प्रभाव देखकर जारशाही ने दमन नीति का अवलम्बन किया और इस निरंकुशता में उसने निर्दोषों व किसानों के ऊपर भी अत्यधिक अत्याचार करना प्रारम्भ किया। उस समय समस्त रूस में जनता की आँखों से शोले बरस रहे थे और साम्यवादियों द्वारा नैतिकता में वृद्धि होने से वे सब कुछ करने को तैयार हो गए।

लेकिन अभी तलवार पर आत्मा की विजय प्राप्त होने में देर थी। अभी और भी अधिक उद्योग धन्धों में मशीनों के विस्तार की प्रतीक्षा थी। जनता की मुसीबतों में अभी और ज्यादा बढ़ती की अपेक्षा थी। किसानों की सहनशीलता की परीक्षा और भी अधिक कड़ी व उनकी शक्ति के बाहर की होने में अभी कुछ समय चाहिए था। साम्यवादी अभी शासन सत्ता पर मजदूरों की ही सहायता से केवल अधिकार जमाने में असमर्थ थे। किसान अभी भी साम्यवाद का साथ देने को तैयार न थे। इसलिए साम्यवादियों को उस समय तक इन्तजार करना पडा जब तक किसानों में भी असन्तोष व सहनशीलता—उनके चरम सीमा के बाहर न हो गई। साम्य-

वादियों को यदि कोई सहारा था तो वह मजदूरों के दृढ़ संगठन का व किसानों के भीषण असन्तोष का ही था। मजदूरों को तो इस बात का प्रलोभन था कि क्रान्ति हो जाने पर समस्त उद्योग धन्धों, फैक्टरियों व कारखानों पर उन्हीं का अधिकार हो जायगा और फिर समस्त लाभ के वे ही अधिकारी हो जायेंगे और इस प्रकार वह सभी ज्यादा धनवान् व विलासपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकेंगे। किसानों के असन्तोष में बढ़ौती होने का यही उपाय था कि कल कारखानों का विस्तार हो, जिससे गृह उद्योगों का नाश हो और किसानों की ऊपरी आमदनी मारी जाकर काश्तकारी पर अत्यधिक दबाव पड़े व सर्वत्र बेकारी का नग्न नृत्य हो।

एक दल तो साम्य लोकमतवादियों का था (रूस में) जो इस बात पर जोर देता था कि अभी हमें रूस की शिल्प संबंधी उन्नति और आर्थिक विकास की प्रतीक्षा करनी चाहिए। जब देश में बड़े बड़े कारखाने स्थापित हो जायँ और उनके कारण दरिद्रों का बहुत बड़ा वर्ग तैयार हो जाय तब उसकी सहायता और सम्मति से कोई काम करना चाहिए। इस दल को अपने आन्दोलन में साधारण कृषकों से किसी प्रकार की सहायता की कोई आशा नहीं थी, क्योंकि वह समझता था कि जब तक बड़ी बड़ी जमींदारियों और बड़े बड़े कारखानों की स्थापना के कारण उन कृषकों का अपहरण नहीं होगा और वे दरिद्र नहीं हो जायेंगे तब तक उनकी आँखें न खुलेंगी। (साम्यवाद, ले० बाबू रामचन्द्र वर्मा, पृ० २१४)

प्रथम विश्व-युद्ध के दौरान में रूस की भीषण सैनिक शक्ति का ह्रास हुआ। जारशाही की तलवार की शक्ति कम हो गई, लेकिन जुल्म पहले की भाँति ही जारी रहा। जारशाही में अब घोर निःसत्वता के लक्षण उत्पन्न होने लगे थे। अपने सैनिकों का युद्ध क्षेत्र में अन्धा-धुन्ध फेंके जाने के कारण रण क्षेत्र में

ही स्थान स्थान पर विद्रोह होने प्रारम्भ हो गए। यह स्थिति साम्यवादियों के लिए अत्यन्त ही अनुरुप थी। मजदूरों तथा थोड़े बहुत अत्यन्त ही असन्तुष्ट किसानों के भीषण उत्साह व उनकी अदम्य शक्ति व संगठन को पाकर, रुसी साम्यवादियों को जारशाही के उखाड़ फेकने में ज्यादा देर न लगी और फिर शीघ्र ही इन संत्रस्त किसानों व लोभी तथा पीड़ित मजदूरों ने आतताइयों तथा सामन्त सरदारों व धनिकों से भीषण रुप से बदला लिया। एक बार मानों खूनी होली का दृश्य व्याप्त हो गया। किसानों तथा अन्य कुटीर उद्योगियों ने इस परिवर्तन का स्वागत किया। परिवर्तन ही तो वे असन्तुष्ट किसान, शिल्पकार व गृह उद्योगी चाहते थे! लेकिन इस परिवर्तन से उन्हें स्थाई लाभ व खुशी न हासिल हुई। कल कारखाने पूर्ववत् चालू रहे। किसानों की भूमि छीनी जाने लगी। कुटीर उद्योगियों को जबर्दस्ती अन्य कामों को करने के लिए मजबूर किया गया। इन सभी अनोखी व नयी बातों का रुसी किसानों व कारीगरों ने विरोध किया, लेकिन उसका फल यह हुआ कि, प्रलोभित मजदूरों की सहायता से इन किसानों व गृह-उद्योगियों का भी भीषण रुप से, बिना किसी हिचक के, घोर संहार किया गया। स्थान-स्थान पर दुर्भिक्ष पड़े। लाखों व्यक्ति भूखे ही पेट की ज्वाला में भस्म हो गए (१६२१)।

इसमें सन्देह नहीं कि आरम्भ में अपनी सत्ता स्थापित करने के लिए बोल्शेविकों ने रुसी प्रजा पर अनेक प्रकार के अत्याचार और अन्याय किए और इस प्रकार के कृत्यों के साथ किसी समझदार की जरा भी सहानुभूति नहीं हो सकती। सैकड़ों हजारों आदमियों का रक्तपात करके सार्वजनिक मत के आधार पर शासन सत्ता स्थापित करने का उद्योग कभी प्रशंसनीय अथवा अनुकरणीय नहीं हो सकता।

(साम्यवाद, ले० बाबू रामचन्द्र वर्मा, पृ० ४४६)

कट्टर साम्यवादी लेनिन ने अब अपनी बोल्शेविक पार्टी का नेतृत्व करते हुए समस्त रुस के शासन पर अधिकार जमा लिया था। शासन यंत्र हाथ में लेते ही उसने सुधारों और विकास योजनाओं तथा साम्यवादी आदर्शों की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना शुरु किया। एक ओर तो रुसी किसानों व कुटीर उद्योगियों में घोर अव्यवस्था तथा बेकारी थी, दूसरी ओर उनके खेतों वगैरह को छीनकर भुखमरी का दृश्य मानों रंग-मंच पर दिखाया जा रहा था। साम्यवादियों के लिए उस समय धर्मान्धता या कट्टरता के कारण मानव का मूल्य कुछ रह ही नहीं गया था। उँगली का उठाना भी मौत का पैगाम था। भूखी मरती हुई जनता खाना भी न माँग सकती थी, न इस दुरावस्था का विरोध ही कर सकती थी। लेकिन जनता को इतनी ज्यादा यंत्रणा देकर, लाखों व्यक्तियों को छट-पटाते हुए भूखा मर जाने पर, जब रुस की साम्यवादी सिद्धान्तों पर आधारित—यन्त्रों द्वारा अधिक उत्पादन की व्यवस्था एवं विचार से शून्य- सभी प्रयत्न सर्वथा असफल हो गए तब कहीं उनकी आँखें खुलीं। सन् १९२० के बीतते न बीतते, रुस में आधुनिक सभ्यता के सर्वथा अधःपतन का अपूर्व दृश्य दिखाई देने लगा। कैसी पागलपन व मूढ़ता थी—इस नवीन कट्टर साम्यवादियों के शासन में—जिसके द्वारा संत्रस्त हुए मानव की भीषण कराह की कल्पना मात्र से रोमांच हो आता है। रुस एक विशाल, संसार का सबसे बड़ा देश है। लेकिन जिस काल का हम निरीक्षण कर रहे हैं उस समय रुस का सीमा-पर यानी उसके द्वार पर शत्रुओं से रुसियों का युद्ध चल रहा था। युद्ध स्वयं एक संकट कालीन स्थिति का द्योतक होता है, जिसमें समस्त देश की जनता अस्त-व्यस्त व उद्विग्न हो जाती

है। लेकिन इस संकट-कालीन स्थिति में भी निरीह् जनता पर नवीन साम्यवादी व्यवस्था का उकताहट के साथ प्रयोग करने लगना, यंत्रों, कल-कारखानों का भी विकास करने लग जाना—जनता की रक्षा, उन्हें सहायता न देकर बल्कि उनके खेत, जमीन व धन्धों को भी छीन लेना यह सभी बातें मूर्खता-पूर्ण और अविवेकी ही थीं। लेकिन क्या किया जाय ? मानों इन पीड़ितों व अनाथों के भाग्य में ही ऐसा लिखा हुआ था।

अन्त में उन्हें अपने सारे पुनर्निमाण व साम्यवादी सुधारों में—अव्यवस्था के कारण पूर्ण रुप से असफल हो जाने पर—फिर वापस प्रजातन्त्र की आदर्श व्यवस्था को अपनाना पड़ा। मशीनों का नियंत्रित कर, कल-कारखानों को बन्द कर भी शायद, वैयक्तिक अधिकार (Owner Ship) की स्वतन्त्रता दी गई और कुटीर उद्योग तथा स्वतन्त्र कृषि की फिर से स्थापना की गई। साम्यवाद की यह पहली और भयानक असफलता थी। रुस की दशा में अब आर्थिक सुधार व उन्नति तथा सम्पन्नता के लक्षण दिखाई देने लगे। कृषक सम्पन्न व सम्पत्तिमान् हो गए और कुटीर उद्योग का तीव्रता से विस्तार होने से सभी बेकार व्यक्तियों को धन्धा मिल गया और उनको जीविका चलने लगी। मालूम हुआ रुस अब साम्यवाद को त्याग कर शीघ्र ही एक पूर्ण सम्पन्न, आदर्श व खुशहाल राज्य होने जा रहा है। वर्तमान बोल्शेविक पार्टी द्वारा इस प्रकार के सुधारों का अवलंबन करने से यानी मुख्यत: मशीनों पर नियंत्रण करने व व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा स्वतन्त्र उद्योग प्रदान करने से—रुसी जनता शीघ्र ही अपने पुराने दुःख दर्दों को भूल गई और वर्तमान शासन की पूर्ण भक्त व अनुरक्त हो गई। जनता का बिश्वास भी सरकार

पर जम गया और वह जो कुछ भी कहे उसे करने को तैयार हो गई। हमको इस सद्‌भावना व सुमति के लिए उस प्रजातन्त्र की आदर्श व्यवस्था का ही कृतज्ञ होना चाहिए, जिसके मूल में केवल दो ही बातें हैं :—व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा मशीनों का नियंत्रण।

ऐसी कठिन परिस्थिति में पुनर्निर्माण की गति धीमी करनी निश्चित की गई तथा...वैयक्तिक अधिकार (Owner ship) संबंधी स्वतन्त्रता एवं उद्योग का बहुत अंशों में पुनः प्रतिपादन किया गया। इस प्रकार उत्पादक उद्योगों में उन्नति होने लगी। रूस उस समय निर्माणक साम्यवाद (Constructive Socialism) के प्रवाह से पृथक हुआ सा प्रतीत होता था और वहाँ की परिस्थिति भी वैसी ही हो रही थी जैसा कि, अमेरिका के संयुक्त राज्यों की एक शताब्दी पहले थी। अमेरिका के क्षुद्र क्षेत्रपतियों के सदृश रूस में भी 'कुलक' कहे जाने वाले सम्पन्न कृषकों का नवीन वर्ग उत्पन्न हो गया। छोटे स्वतन्त्र व्यवसायियों की संख्या बढ़ गई। परन्तु समष्टिवादीय वर्ग (Communists) अपने ध्येय से इस प्रकार विचलित हो रूस को १०० वर्ष पहले के अमेरिका का पृथानुगामी बनाना न चाहता था। समष्टिवादीय उन्नति के पथ पर देश को फिर लौटाकर लाने का सन् १९२८ में, वहाँ अत्यन्त प्रबल उद्योग प्रारम्भ हुआ। (ससार का संक्षिप्त इतिहास, ले० एच० जी० वेल्स, अनु० श्री मदनगोपाल, पृ० २१५ द्वितीय खण्ड)

रूस सुधार व सम्पन्नता के मार्ग पर बिल्कुल उचित व प्राकृतिक रीति से अग्रसर हो रहा था। उसकी समस्याएँ हल हो चुकी थीं, और थकी हुई व भीषण आँधी से अस्त-व्यस्त रूसी जनता शांति की साँस व आराम लेने लग गई थी। लेकिन साम्यवादियों को यह शांति अखरी। उन्हें बड़े-बड़े कल कार-खाने चाहिए थे। सरकारी अफसर, कर्मचारी तथा स्वयं

शासक भी अपनी अधिकार लिप्सा को तृप्त करना व अपने प्रभाव और महत्ता को बढ़ाना चाहते थे। मजदूरों का अरमान भी अभी अन्दर का अन्दर ही रह गया था। उन्होंने तो काफी लम्बे अर्से तक मिल-मालिक, पूँजीपति, सेठ बनने का स्वप्न देखा था। इसलिए एक बार फिर उथल-पुथल प्रारम्भ हुई। स्वार्थियों ने अपने स्वार्थ साधन के हेतु फिर से यन्त्रोद्योग, कल-कारखानों की बाढ़, सम्पत्ति का अपव्यय, व जनता को चूसना प्रारम्भ कर दिया। सरकारी अफसर व कर्मचारी अपनी जेबें भरने लगे। खेतों को किसानों से छीनकर सामुहिक बड़े पैमाने पर खेती का प्रारम्भ हुआ। खेत किसी की निजी मिल्कियत न होने के कारण भ्रष्ट व अनैतिक अधिकारी वर्ग अपनी गोटी लाल करने लगे। कृषि का सुव्यवस्थित प्रबन्ध न हो सकने के कारण अनाजों की पैदावार में भीषण ह्रास हुआ। ऐसी हालत में चोर बाजारी व अनाजों का छिपाव भी प्रारम्भ हो जाना स्वाभाविक ही था। अधिकारी पुरुषों ने अपने घरों को अनाजों से भर लिया होगा! इन सब उलटफेरों का नतीजा यह निकला कि एक बार फिर खाद्य पदार्थों की भीषण कमी पड़ी (१६३३, ३४) और लोगों का अस्तित्व खतरे में पड़ गया।

मजदूरों की अवस्था इस समय वास्तव में बड़ी उपहास योग्य थी। साम्यवादियों का सिद्धान्त था कि कारखानों के उत्पादन व लाभ में मजदूरों का भी हिस्सा होना चाहिए। फिर थोड़ा और आगे बढ़कर वे कहने लगे कि समस्त लाभ का अधिकारी वही हो सकता है जिसके श्रम से कारखाने चलते हैं और मालों का उत्पादन होता है। साम्यवादियों के ख्याल में, बिना किसी प्रकार का श्रम करने वाले पूँजीपतियों

या कारखाने-दारों द्वारा श्रमिकों का श्रम अपहरण कर समस्त अपरिमित लाभ को अपने में ही हड़प कर जाना, सरासर अन्याय था। साम्यवादियों के इन सभी व अन्य अनेकों दलीलों से श्रमजीवियों के मुँह में पानी आ गया था। साथ ही साथ किन्हीं अभागे व पीड़ित श्रमिकों को रोमांच व गद्गद् हो जाने के कारण भावावेश में, उनके नेत्रों से अविरल अश्रु धारा भी फूट पड़ी थी। इन सभी मजदूरों का रूस में अब अपने स्वप्नों को साकार होने की आशा हो चली थी। लेकिन शीघ्र ही उनकी सभी आशाओं पर रूसी तुषारापात हुआ जिनसे उनके हाथ पैर सभी सुन्न हो गए। श्रमिकों से कहा गया कि, यह सही है कि तुम ही सम्पत्ति के उत्पादक हो। लेकिन जो माल तुम अपना श्रमदान करके तैयार करते हो, वह तुम्हारे साथ साथ समस्त राष्ट्र की सम्पत्ति है और इस प्रकार इस सम्पत्ति का उचित वितरण होगा, और जितना अन्य सब व्यक्तियों के हिस्से में पड़ेगा उतना ही तुम्हें भी मिलेगा। श्रमजीवी लाचार था। उसकी सारी तमन्नाओं का अन्त हो गया। अब भी वह वैसा ही श्रमिक व उसी हालत में बना रहा जैसा वह साम्यवादी व्यवस्था के पूर्व था। अप्रत्यक्ष रूप से और बाद में प्रत्यक्ष रुप से, फिर यह मजदूरा पूंजीपति सरकार या राज्य का गुलाम हो गया और समस्त उत्पादित सम्पत्ति राज्य की मिल्कियत—सरकारी अफसरों की देख रेख व आधीनता में—हो गई।

उन्हें यह बात समझा दी गई कि कारखाने केवल श्रमजीवियों की ही सम्पत्ति नहीं हैं बल्कि सारे समाज की सम्पत्ति हैं।

(साम्यवाद, ले॰ बाबू रामचन्द्र वर्मा, पृ॰ ४४६)

साम्यवाद समस्त मानव जाति के लिए, अब तक के इति-

ह्रास में भी, पूर्णतः मौलिक व नवीन तथा प्रारम्भिक अवस्था में होने के कारण बड़ा जटिल, सूक्ष्म व रहस्यमय है। नवीन वातावरण तथा अनुभवहीन स्थान में जाने के पूर्व, ऐसे ही साम्यवाद का सूक्ष्म अध्ययन व कार्य-व्यवस्था प्रणाली समझ लेना अनिवार्य है। साम्यवाद की अच्छाई-बुराई, उपयोगिता-अनुपयोगिता, तथा उसके बन्धन व मोक्ष को अच्छी तरह समझ लेना हर एक सर्व-साधारण के लिए अत्यन्त आवश्यक है। रुस एक ऐसा ही नवीन, आश्चर्ययुक्त व गहन देश है। कितने ही व्यक्तियों के लिए रुस एक उदाहरण स्वरूप भी बना हुआ है। लेकिन केवल उदाहरणों के भरोसे ही हमें किसी सिद्धान्त को पूर्णतः उसी के अनुरूप नहीं समझ लेना चाहिए। उदाहरण, व्यवहार द्वारा उत्पन्न होते हैं। व्यवहार—प्रणाली सिद्धान्तों व विधानों पर निर्भर करते हैं। ये सिद्धान्त या विधान कभी उदार या ढीले कर दिए जाते हैं, और कभी निरंकुश व कड़े कर दिए जाते हैं। साम्यवादी रुस ही कट्टर साम्यवादी शासक लेनिन के नेतृत्व में कितने ही वर्षों तक प्रजातन्त्र के 'स्वतन्त्र उद्यम' व 'व्यक्तिगत स्वतन्त्रता' को व्यवहारिक रुप से मानता रहा। इस प्रकार अपने को साम्यवादी सिद्धान्त का मानने वाला घोषित करते हुए भी उसने कार्यरुप में अन्य उपायों का ही सहारा लेकर अपनी स्थिति दृढ़ की। लेकिन कुछ समय पश्चात साम्यवाद का कड़ा रुप शीघ्र ही दिखाई देने लगा, जिसका नतीजा एक बार फिर अव्यवस्था तथा जनता के कष्ट व चिन्ता के रुप में पैदा हुआ। इसलिए हमें केवल वर्तमान रुस के वर्तमान उदाहरण को ही पूरे तौर से अपनी कसौटी न मानकर, उसके द्वारा माने जाने वाले साम्यवादी नीति व विधान का ठोस व सूक्ष्म अध्ययन करना

चाहिए। फिर सभी बातों को जानकर हम स्वयं ज्ञान व विवेक के प्रकाश में अपना सही रास्ता चुन सकेंगे और पूर्ण विश्वास के साथ उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सकेंगे।

हमने यह अच्छी तरह देख लिया है कि, साम्यवाद की उत्पत्ति कहाँ और किस प्रकार हुई थी। साम्यवाद ने अपनी प्रगति द्वारा संसार में सर्व-प्रथम विशाल रूस-देश में ही, आततायी जारशाही को उखाड़ फेक कर, अपनी शासन सत्ता स्थापित की थी। प्रजातन्त्र में मशीनों के प्रयाग के कारण भीषण आर्थिक विषमता का प्रादुर्भाव व अधिकांश जन समुदाय में बेकारी, भुखमरी व कंगाली व्याप्त हो गई थी। इसलिए साम्यवाद का सर्व-प्रथम ध्येय यही था और है—'आर्थिक समानता'। प्रथम ध्येय को कार्य रूप में परिणित करने के लिए इसका दूसरा ध्येय है—'समस्त सम्पत्ति पर राज्य का अधिकार और समस्त उत्पादन का सारी जनता में बराबर-बराबर विभाजन'। इस प्रकार साम्यवादी व्यवस्था में प्रजातन्त्र के आर्थिक रूप से पीड़ित दरिद्र वर्ग को राहत व तसल्ली प्राप्त हो जाती है और उन्हें ही केवल अभागों की भाँति तड़प-तड़प कर नष्ट हो जाने का भय नहीं रहता। साम्यवाद में प्रत्येक व्यक्ति की आर्थिक आवश्यकता-पूर्ति की जिम्मेदारी राज्य ही ले लेता है, इसलिए यहाँ का प्रत्येक व्यक्ति प्रजातन्त्र की जीविकोपार्जन हेतु—कठोर परिश्रम, भीषण प्रतियोगिता तथा घोर मानसिक व्यथा से मुक्ति पाकर अप को आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेने का दावा करता है।

मुझे प्रजातन्त्र के गुण अच्छी तरह मालूम हैं। मैं उनकी खुले दिल से तारीफ भी कर सकता हूँ। लेकिन इस समय मुझमें उसकी तरफदारी करने का नैतिक साहस नहीं है। इस

समय हम साम्यवाद का सूक्ष्म विवेचन करने जा रहे हैं। इस दौरान में हमें साम्यवाद के गुण व दोष दोनों ही मिलेंगे और यदि अन्त में यह साबित हो जाय कि, साम्यवाद वास्तव में मानव-समस्याओं का हल नहीं है और हमें फिर वापस प्रजातन्त्र की ही ओर चलना चाहिए, तो हमें शीघ्र ही क्षुब्ध हो जाने की आवश्यकता नहीं है। उच्छृंखल मशीनों के व्यवहार वाले, स्वतन्त्र उद्यम व अधिकार की प्रथा के साथ, वर्तमान प्रजातन्त्र से साम्यवाद की परवशता तथा व्यक्तित्व-हीनता सैकड़ों गुना अच्छी व मान्य है। लेकिन यदि वास्तव में मानव अपना भला चाहता है तो उसे साम्यवाद को भी हाथ जोड़ना चाहिए और प्रजातन्त्र की आदर्श व्यवस्था में, मशीनों के नियंत्रण के साथ ही, जाना चाहिए। अस्तु, हमें यह पूर्ण नैतिक अधिकार प्राप्त है कि हम साम्यवाद का भी सूक्ष्म छिद्रान्वेषण करें और विवेचन द्वारा उसकी उपयुक्तता अथवा अनुपयुक्तता साबित करने की कोशिश करें। सांसारिक प्राणी, विशेष कर मानव, सर्वदा विकास-वान् है और निरन्तर प्रगति करता जाता है। इसलिए यदि हम साम्यवाद से भी अधिक अच्छी व्यवस्था ढूढ़ निकाल सकें तो हमें अपनी कट्टर साम्यवादिता तथा रूढ़िता को छोड़ कर उस नए पन्थ का अनुसरण करने को तैयार रहना चाहिए। साम्यवाद में भी कम से कम इतनी विचार स्वतन्त्रता तथा विवेक की छूट तो मिलनी ही चाहिए।

विद्या और ज्ञान लोगों में सोचने और विचारने की ताकत पैदाकर देता है और शंका, कौतूहल और तर्क—श्रद्धा के लिए कोई अच्छे साथी नहीं हो सकते। विज्ञान का रास्ता परख और खोज का है। श्रद्धा का रास्ता यह नहीं है। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० २६० प्रथम खण्ड)

अज्ञान तब्दीली से हमेशा डरता है। वह अज्ञात वस्तु से डरता है, इसलिए वह अपनी जानी-बूझी लीक पर ही चलना पसन्द करता है। चाहे उसमें उसे कितनी ही मुसीबत क्यों न हो। वह अपने अधेपन में गिरता पड़ता और लुड़कता हुआ किसी तरह चलता है। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ३६४ प्रथम खण्ड)

जब इंसान कुछ उसूलों में अन्धविश्वास रखने लग जाते हैं और उन विश्वासों को धक्का लगता है, तो वे अपने आपको दुःखी और असहाय समझ बैठते हैं और खड़े होने को उन्हें कहीं पक्की धरती दिखाई नहीं देती। मगर जिस धक्के से हमें सत्य ज्ञान हो वह अच्छा ही है। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ७४२ प्रथम खण्ड)

समाज हमेशा पुराने विचार का होता है, उसे तबदीलियाँ नापसन्द होती हैं। एक बार जिस लकीर पर लग जाता है, उसी पर चलते रहने में उसे मजा आता है, और उसे पक्का विश्वास हो जाता है कि वह सदा उसी लकीर पर चलने को बना है। इतना ही नहीं, जो व्यक्ति उसकी हालत सुधारने की ख्वाहिश से उसे लकीर छोड़ कर चलने को कहते हैं, उन्हीं को समाज ज्यादा सजा देता है।

परन्तु सामाजिक और आर्थिक हालात उन लोगों की मर्जी का इन्तजार नहीं करते, जो समाज के बारे में कुछ नहीं सोचते या उससे सन्तुष्ट रहते हैं। हालात आगे बढ़ते ही जाते हैं और लोगों के ख्यालात जहाँ के तहाँ रहते हैं। इन दकियानूसी विचारों और असली स्थिति के बीच का फासला बढ़ता रहता है और यदि इस खाई को पाट कर दोनों को मिलाने का कुछ भी उपाय नहीं किया जाता है, तो व्यवस्था चकनाचूर होकर प्रलय उपस्थित होता है। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ७१५ प्रथम खण्ड)

आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना एक अच्छी चीज है।

आर्थिक स्वतन्त्रता का अर्थ है—भीषण आर्थिक दुरावस्था से मुक्ति। इसलिए आर्थिक सुदृढ़ता का ही नाम आर्थिक स्वतन्त्रता है। वर्तमान प्रजातन्त्र में कारखानेदार, मिल मालिक आदि पूँजीपति तो आर्थिक स्वतन्त्रता को उच्छृंखल रूप से प्राप्त करते हैं, लेकिन सर्व-साधारण आर्थिक दुरावस्था, कंगाली व बेकारी का शिकार होकर, आर्थिक गुलामी को प्राप्त होता है। गुलामी चाहे कैसी भी क्यों न हो, बुरी ही है। इसलिए आर्थिक गुलामी भी बुरी, और ज्यादा उपयुक्त होगा, सबसे ज्यादा बुरी है। साम्यवाद में यदि आर्थिक स्वतन्त्रता सभी को प्राप्त है तो यह बड़े हर्ष व सन्तोष का विषय है। लेकिन साम्यवाद में भी एक प्रकार की गुलामी पाई जाती है, वह है व्यक्तिगत यानी शारीरिक व मानसिक गुलामी। प्रजातन्त्र इस माने में ज्यादा अच्छा है। प्रजातन्त्र-व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति अपना स्वयं का शरीर व आत्मा लेकर जो उद्यम चाहे अथवा जैसी क्रिया करनी चाहे कर सकता है। मानसिक स्वतन्त्रता उसे हद दर्जे की प्राप्त होती है, यहाँ तक कि सर्व-साधारण भी अपने विचारों, अपनी शिकायतों को खुले रूप में व्यक्त करने का अधिकारी होता है। साम्यवाद की इस शारीरिक व मानसिक गुलामी को देखकर हमें उस रोम साम्राज्य की दास प्रथा का ख्याल हो आता है जिसके कारण ही उसकी अटूट शक्ति, विशाल साम्राज्य, अतुलित सम्पत्ति तथा महान् परम्पराओं और जनता के अदम्य साहस, उत्साह व नागरिक भावों का देखते देखते भीषण रूप से पतन हो गया, जिसके केवल स्मरण मात्र से रोमांच व आश्चर्य होता है।

(ई० पू० पहली शताब्दी) इस समय कुछ राजनीतिज्ञ जिनमें सिसरो सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति था—रोम साम्राज्य की उच्च परंपराओं

को सुरक्षित रखने और उसके कानूनों को लोगों से पालन कराने के लिए भरपूर प्रयत्न कर रहे थे। परन्तु स्वतन्त्र किसानों के लुप्त हो जाने के साथ ही इटली से नागरिकता का भाव भी जाता रहा था। अब यह दासों और दरिद्र लोगों का देश हो गया था जिनमें न तो स्वतन्त्रता के भाव को समझने की शक्ति ही थी और न इसकी इच्छा ही। सिनेट के प्रजातन्त्रवादी नेताओं को किसी भी शक्ति का सहारा न था, किन्तु इन बड़े-बड़े महत्वाकांक्षी साहसी लोगों के साथ—जिन्हें वे डरते थे और वश में रखने की इच्छा करते थे—असंख्य सैन्यदल था। (संसार का संक्षिप्त इतिहास, ले० एच० जी० वैल्स अनु० श्री नारायण चतुर्वेदी, पृ० २२१ प्रथम खण्ड)

प्रजातन्त्र के अन्तिम दिनों में और रोमन साम्राज्य के उदय काल में इटली के खेतों के मजदूरों को बहुत भयंकर अपमान सहने पड़ते थे। उन्हें भागने से रोकने के लिए रात्रि होने पर जंजीरों से बाँध दिया जाता था या उनके आधे सिर मुड़ा दिये जाते थे जिनसे उन्हें भागने में कठिनता हो।

उनके स्वयं भार्याएँ न होती थीं। स्वामी अपने दासों पर बलात्कार कर सकते थे। उनका अंग भंग कर सकते थे और उनका वध भी कर सकते थे। दंगल में पशुओं से युद्ध करने के लिए दास का स्वामी उसे बेच सकता था। यदि कोई दास स्वामी का वध कर डालता तो केवल घातक ही नहीं वरन् उसके घर के सब दास सूली पर चढ़ा दिए जाते थे। ग्रीस (यूनान) के कुछ भागों में विशेष करके एथेन्स में दासों की दशा इतनी भयावह न थी, जितनी कि यहाँ के दासों की थी, परन्तु फिर भी वह घृणित थी। रोमन सेना को भेद कर जब बर्बर आक्रमणकारी रोमन साम्राज्य में घुस आए तो दासों की जनता को वे शत्रु नहीं प्रतीत हुए—उन्हें ऐसा मालूम पड़ा कि वे लोग उद्धारक हैं। (संसार का संक्षिप्त इतिहास, ले० एच० जी० वैल्स, अनु० श्री नारायण चतुर्वेदी, पृ० २३४ प्रथम खण्ड)

शस्त्र धारी दास भी होते थे। ई० पू० २६४ में प्यूनिक युद्धों के काल का आरम्भ होने पर ऐट्रस्कन जाति का एक खेल रोम में फिर से प्रचलित हो गया था। इस खेल में दासों को अपनी प्राण रक्षा के लिए लड़ने के लिए छोड़ दिया जाता था। इसका प्रचार शीघ्र ही हो गया और प्रत्येक बड़ा रोमन धनिक ग्लेडिटियर नामक शस्त्रधारी दासों का एक वर्ग अपने पास रखने लगा। कभी कभी ये अखाड़ों में भी युद्ध करते थे। परन्तु स्वामी के साथ गँडों के समान अंगरक्षक होकर चलना इनका प्रधान कर्म था। उस समय विद्वान दास भी मिलते थे। पिछले समय के प्रजातन्त्र ने यूनान, उत्तरी अफ्रीका और एशिया माइनर के अत्यन्त उन्नतिशील नगरों पर विजय प्राप्त की थी और इसलिए वहाँ बहुत से ऊँचे विद्वान भी दास रूप में पकड़ लाए गए थे। उच्च कुल के रोमन नवयुवक का शिक्षक बहुधा दास ही होता था। धनिक पुरुषों के पुस्तकालय का अध्यक्ष यूनानी दास ही बनाया जाता था। धनिकों के मुहर्रिर तथा विद्वान लोग दास ही होते थे। दास कवि को वह अपने पास उसी प्रकार अपना आश्रित करके रखता था, जिस प्रकार वह किसी खेल करने वाले कुत्ते को पालता था। आधुनिक साहित्य की विद्वता और समालोचनाओं की परम्पराएँ, दासता के इस वायुमंडल में विकसित हुईं। ये परम्पराएँ श्रमपूर्ण, साहसहीन, और विवाद शील थीं। कुछ ऐसे उद्योगशील लोग भी थे जो मेधावी बालक दासों को मोल लेकर पढ़ाते थे, जिससे बाद में उनके अच्छे दाम खड़े कर सकें। दासों को नकल-नवीसी, स्वर्णकारी और अन्य कितनी ही कारीगरियाँ सिखलाई जाती थीं। (संसार का संक्षिप्त इतिहास, ले० एच० जी० वैल्स, अनु० श्री नारायण चतुर्वेदी, पृ० २३६ प्रथम खण्ड)

जब हम इस बात का अनुभव करते हैं कि इसवी सन् की प्रथम दो शताब्दियों का यह लैटिन तथा ग्रीक भाषा-भाषी विशाल रोमन-साम्राज्य वास्तव में कितना बड़ा दास राज्य था और उसमें उन लोगों की

संख्या कितनी कम थी जिन्हें जीवन में स्वाधीनता प्राप्त थी या जिन्हें अपने जीवन पर गर्व था, तो हम उसके विनाश और पतन के कारणों का ठीक ठीक पता पा जाते हैं। जिसे हम ग्राहस्थय जीवन कहते हैं, उसकी उस समय बहुत कमी थी। ऐसे परिवार बहुत कम थे जिनमें लोगों का जीवन संयत था अथवा जिनमें अच्छी तरह विचार करने और अध्ययन करने की परीपाटी थी। स्कूल और कालेज बहुत कम थे, और जो थे भी वे एक दूसरे से बहुत दूरी पर थे। स्वतन्त्र इच्छाशक्ति और स्वतन्त्र विचार शक्ति का कहीं पता भी न था। रोमन साम्राज्य की बड़ी सड़कों, भव्य भवनों के भग्नावशेषों और कानून और शक्ति की परम्पराओं से बाद की पीढ़ियों के लोग आश्चर्यचकित होते रहे हैं। किन्तु ये चकित करने वाली वस्तुएँ इस बात पर पर्दा नहीं डाल सकतीं कि उस साम्राज्य की सारी तड़क भड़क मनुष्यों की रोकी हुई इच्छाशक्ति, दबाई हुई मानसिक शक्ति और विकृत तथा बिगड़ी हुई कामनाओं के शवों से बनाई गई थी। और उन अल्प-संख्यक लोगों की आत्मा भी—जो उस जकड़े हुए और बेगार के साम्राज्य पर प्रभुत्व कर रहे थे—अशांत और दुःखी थी। उस वातावरण में साहित्य और कला, विज्ञान और दर्शन भी मुर्झा गए थे। क्योंकि ये वस्तुएँ तो स्वतन्त्र और सुखी मस्तिष्कों की उपज हैं। उस समय बहुत सी बातों का अनुकरण और अनुसरण किया गया। कलाप्रिय कलाबजो की भरमार थी। दासता की भावना से जकड़े हुए विद्वानों में बहुत कुछ रुढ़ियों पर चलने वाली दिखाऊ विद्वता थी। किन्तु चार शताब्दियों में भी सारे रोमन साम्राज्य ने कोई ऐसी वस्तु उत्पन्न न की जिसकी तुलना उन साहस-पूर्ण और उन्नत विचारों से की जा सके जिन्हें एथेन्स की अपेक्षाकृत छोटे नगर ने अपनी महत्ता की एक शताब्दी में उत्पन्न किया था। रोम के अधिकार में आकर ऐथेन्स का ह्रास हुआ। सिकन्दरिया के विज्ञान का ह्रास हुआ। ऐसा मालुम होता था कि उन दिनों मानों मनुष्य की आत्मा का भी ह्रास हो रहा था। ‘ संसार का

संक्षिप्त इतिहास, ले० एच० जी० वैल्स, अनु० श्री नारायण चतुर्वेदी, पृ० २३७, २३८ प्रथम खण्ड)

साम्यवाद में राज्य ही स्वतन्त्र व्यक्तित्व रख सकता है। शासक तथा शासन व्यवस्था को नियंत्रित करने वाले कर्मचारी-गण ही भाग्यवान व महाप्रभु कहलाते हैं। इन कर्मचारियों व अधिकारी व्यक्तियों की ही आधीनता में बहुत ज्यादा संख्या में स्वतन्त्र व्यक्तित्व-हीन व्यक्तियों का समुदाय होगा। यह आधीनता प्राप्त जन समुदाय-पूर्ण रूप से राज्य व अधिकारियों के नियन्त्रण में होगा। राज्य ही को केवल अपना मत व विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता होगी। राज्य के पास ऐसे कितने ही वैज्ञानिकों, दार्शनिकों कलाकारों तथा साहित्यकारों का झुन्ड होगा जो राज्य के ही इशारोंपर नाचा करेंगे। सारी मानव जाति की इच्छा-शक्ति, स्वतन्त्र विचार, व हृदय को उत्साह प्रदान करने वाली कामनाओं का इस साम्यवाद की बलिवेदी पर बलिदान हो जायगा। समस्त मानव उत्साह-हीन, मशीन युग में मशीनों की भाँति ही, राज्य के लिए उसी के आदेशानुसार केवल अपने हाथ-पैरों से काम ही ले सकेगा। मानव भी जड़ तुल्य होकर मशीनों की समता करने लग जायगा, लेकिन इस समता में भी वह हार जायगा। रोमन साम्राज्य में मशीनें न थीं इसलिए दासों का मूल्य महाप्रभुगण समझते थे और उनकी कद्र करते थे। साम्यवाद की मशीन व्यवस्था के अन्तर्गत, मशीनों की आश्चर्य-जनक शक्ति व उपयोगिता के सामने, मानव की महत्ता नाचीज़ व निकृष्ट हो जायगी। राज्य के लिए फिर इन सभी अनुपयोगी व्यक्तियों की क्या आवश्यकता ? राज्य इनसे धीरे-धीरे होने वाला कौन सा काम लेगी ? राज्य फिर इनको कौन सा निर्देश देगी ? मुफ्त का खाना खाते हुए मुफ्त

में पहनने को वस्त्र, रहने को स्थान व मनोरंजन की सामग्री पाते हुए ये साम्यवादी प्रजातन्त्र के उद्धारक नागरिक, फिर अपने स्वामी राज्य की कौन सी चाकरी करेंगे ?

योग्यतम व्यक्तियों को ही ज्ञान करने व किसी विषय विशेष का अध्ययन करने की सुविधा होगी। राज्य सभी करोड़ों अल्प-बुद्धि व उत्साह हीन, उदासीन व क्षुद्र स्मरण शक्ति वाले अविवेकी व्यक्तियों को शिक्षा देकर क्या करेगी ? बहुत ज्य'दा स्कूल, कालेज व विश्वविद्यालय खोलने से भी क्या लाभ ? राज्य थोड़े से वैज्ञानिकों, कवियों व कलाकारों का पालन पोषण व देखभाल अपने पालतू कुत्ते 'गिल्डा' की भाँति करे तो इसमें आश्चर्य ही क्या ? निठल्ले बैठे हुए नागरिकों से यदि पहाड़ तोड़ कर मैदान, व मिश्र के पिरेमिडों से भी कितने ही गुने बड़े व आश्चर्यकारी इमारतों व नाट्य व नृत्य शालाओं अथवा दंगलों के अखाड़े या पशुओं से युद्ध करने के रंग-मंच बनवाए, तो हमारे लिए यह स्वाभाविक कल्पना ही होनी चाहिए। फिर यदि भोग व मनोरंजन प्रधान, उद्यम-हीन शासक वर्ग व अधिकारी गणों को भी घोर क्षब्धता, मन का उचाट व अन्तिम परिणाम में प्राप्त होने वाली भीषण आत्मिक व्यथा व भावना हीनता से हृदय का हाहाकार यह सभी प्राप्त हो जाएँ और वे बावले हो जाएँ, तो इसे भी हमें स्वाभाविक, नियमित अथवा अवश्यम्भावी ही समझना चाहिए। अन्य साधारण नागरिकों का तो ख्याल भी करना व्यर्थ है। आचार हीनता, उच्छृंखलता, मानसिक दौर्बल्य व भोगेच्छा के कारण सर्व-साधारण भी शारीरिक कष्ट के साथ साथ मानसिक व आत्मक असन्तोष व उद्विग्नता तथा उचाटता को प्राप्त करेगा। मशीनों के आधिक्य से व्याप्त श्रम

की कमी, निठल्लापन व उद्योग-हीनता—यह सभी व्यक्तियों के दिमाग, मन व आत्मा में भी जंग लगा देगी। मानवता फिर पतंगों की भाँति नाशोन्मुख होकर, असंयमित भोगों व मनोरंजनों से दिल बहलाव करना चाहती हुई अथवा करती हुई भी, अपना आस्तित्व भी लोप कर दे तो हमें आश्चर्य नहीं होगा। मशीनों की पूर्णावस्था में साम्यवाद मानव का उद्धारक न होकर उसका विनाशक व उसके नारकीय जीवन का ही प्रारूप हो जायगा। मानव को फिर आत्म-हत्या ही में अपनी शान्ति स्थिरता व अपना कल्याण दिखाई देने लगेगा।

सन् ईसवी की प्रथम दो शताब्दियों में लैटिन (रोमन) और ग्रीक साम्राज्यों में मनुष्य की आत्मा दुःखित और विफल मनोरथ थी। उस समय निर्दयता और पशु बल का ही निरंकुश राज्य हो रहा था। अहंकार और बाहरी दिखावा तो बहुत था, पर आत्म सम्मान की कमी थी। अनुद्विग्न शान्ति और सतत् सुख नहीं के बराबर थे। अभागे लोग घृणा की दृष्टि से देखे जाते थे और दुःखी थे। भाग्यवान अपने को अरक्षित समझते थे और लालसाओं की पूर्ति के लिए बुरी-तरह लालायित थे। अधिकांश नगरों की जनता का जीवन अखाड़ों या दंगल स्थानों की रक्त-रंजित उत्तेजना में व्यस्त रहता था जिनमें मनुष्यों और पशुओं का द्वन्द युद्ध होता, उन्हें यन्त्रणा दी जाती और जहाँ उनका बध किया जाता था। रोम-कालीन भग्नावशेषों में दंगल या अखाड़ों के खण्डहर सबसे महत्वपूर्ण और विशेष वस्तु हैं। जीवन का राग इसी (निर्दयता के) स्वर में बजा करता था। मानव हृदय की इस अस्थिरता ने घोर धार्मिक अशांति का रूप धारण कर लिया। (संसार का संक्षिप्त इतिहास, ले० एच० जी० वैल्स, अनु० श्री नारायण चतुर्वेदी, पृ० २३६ प्रथम खण्ड)।

विषयेन्द्रिय संयोगा द्यत्तदग्रे अमृतोपयम् ।
परिणामें विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥

और जो सुख विषय और इन्द्रियों के सयोग से होता है, वह यद्यपि भोग काल में अमृत के सदृश भासता है, परन्तु परिणाम में विष के सदृश है, इसलिए वह सुख राजस कहा गया है ।

(श्रीमद्भागवत गीता—अध्याय १८ श्लोक ३८)

एक कारखाना कुछ सौ आदमियों को रोजी देता है पर हजारों को बेकार बनाता है । तेल की मिल बनाकर टनों से तेल निकाला जा सकता है पर हजारों तेलियों की रोजी छीन कर । इसे मैं संहारक शक्ति कहता हूँ । वहाँ दूसरी तरफ करोड़ों आदमियों के परिश्रम से काम लेना रचनात्मक शक्ति कहता हूँ । इसी में से सर्वोदय सधता है । यन्त्रों की सहायता से ढेरों से माल बनता है । पर अगर उन पर सम्मिलित स्वामित्व भी हो, तो भी उनसे कोई लाभ नहीं । यहाँ आगे चलकर यह भी पूछा जाता है कि, यन्त्र शक्ति का उपयोग करने से लाखों आदमियों के परिश्रम की बचत की जा सकती है । उनका समय बचाकर उन्हें अपना बौद्धिक विकास करने का मौका क्यों न दिया जाय ? पर ऐसा अवकाश एक खास मात्रा में ही जरूरी और फायदेमन्द होता है । पर ईश्वरीय संकेत तो यह है कि, मनुष्य खुद अपने हाथों से परिश्रम करके अपना पेट भरे और खासकर मुझे उस शक्ति से डर लगेगा, जो जादू की लकड़ी घुमाकर हमारी खान-पान की जरूरतों की पूर्ति करने का लालच बताती हो । — महात्मा गान्धी (यन्त्रों की मर्यादा, पृ० २५)

यों कहा जा सकता है कि, आज रूस में बड़े यन्त्रो-द्योग पराकाष्टा को पहुँच गए हैं । उस रूस पर जब मैं नजर डालता हूँ तो वहाँ का जीवन मुझे आकर्षक नहीं लगता । बाइबिल की भाषा में कहूँ तो "मनुष्य सारे जगत पर विजय कर ले पर अपनी आत्मा को खोदे तो उससे क्या भला हो सकता है ?" आधुनिक भाषा में कहें तो मनुष्य अपने व्यक्तित्व को

गँवाकर यन्त्र में एक जड़ कील या स्क्रू के जैसा बन जाय तो मनुष्य की हैसियत से उसका जो गौरव है उसमें एब लगता है।

—महात्मा गाँधी (यन्त्रों की मर्यादा, पृ० २६)

...पर क्या हम यह व्यवस्था नहीं कर सकते कि, दिन में हम केवल दो ही घंटे काम करें, शेष समय हम विनोद और मनोरंजन कर सकते हैं ?

...यही तो मुझे आपत्ति है। हमारे आदमियों के पास नित्य नई चीजें निर्माण करने के लिए खूब—आठ घण्टे काम न हो तब तक मुझे सन्तोष नहीं हो सकता।

—महात्मा गांधी (यन्त्रों की मर्यादा, पृ० २३)

"दुःखी सदा को ? विषयानुरागी।"

(ब्रह्मचर्य ही जीवन है, ले० स्वामी शिवानन्द, पृ० ४१)

सदैव शुभ कर्मों में ही डूबे रहना चाहिए। हाथ पर हाथ रखकर निठल्ले बैठने में कुछ विश्रान्ति नहीं है। सच्ची विश्रान्ति काम को बदल-बदल कर करने में है अर्थात् भिन्न भिन्न कार्य करने में है।

(ब्रह्मचर्य ही जीवन है, ले० स्वामी शिवानन्द, पृ० १५५)

मुझे दोहराकर यह कहने की या समझाने की आवश्यकता नहीं कि, मशीनों के कारण व प्रलोभन से ही साम्यवाद की उत्पत्ति हुई, मशीनों के कारण ही प्रजातन्त्र का अस्तित्व खतरे में पड़ा, और इन मशीनों के कारण ही समस्त मानव जाति प्राचीन रोम कालीन दासता के बन्धन को प्राप्त होकर व निठल्ली होकर भी—विषय भोगों, घृणित व घोर मनोरंजनों से अपने को बहलाना चाहती हुई—नाशोन्मुख हो नष्ट हो जायगी। हम न तो प्रजातन्त्र को दोष दे सकते हैं, न साम्यवाद को और न ही किसी हद तक मानव स्वभाव को। एक प्रकार से हमें सारा दोष मशीनों को ही देना उचित होगा। मशीनें न होतीं

तो मानव उठता और गिरता हुआ भी पृथ्वी पर ही रहता, लेकिन मशीनों के कारण तो मानव, मानव न होकर जड़ हो जाता है और तब उठने और गिरने का भी सवाल कहाँ रह जाता है। मशीनें वर्तमान काल में मानव की भीषण शत्रु साबित हो रही हैं और इस शत्रु का मुकाबला करने के लिए उसे कमर कसकर एक स्वर से जुट जाना चाहिए। मशीनों का नियन्त्रण करके ही मानव अपनी सारी बुराइयों को समाप्त कर सकता है।

साम्यवाद में उन्नति अथवा सुव्यवस्था तभी तक संभव है, जब तक उसका शासक व अधिकारी-वर्ग कर्तव्य परायण, नीतिवान, व चारित्रिक दृष्टि से पूर्ण होता है। भ्रष्ट व भोगी शासक या सरकार, भ्रष्टाचारी, अनैतिक व दंभी अधिकारियों तथा उनकी भोग लालसा प्रधान प्रवृत्तियों के उत्पत्ति होने के साथ ही, समस्त सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाती है और सर्वत्र घोर अव्यवस्था व नारकीय तथा यातनापूर्ण तथा परवशता का दृश्य व्याप्त हो जाता है। फिर निरंकुशता का प्राधान्य अथवा उसकी उत्पत्ति भी हो जाना संभव हो सकता है। राज्य निरंकुश तो पहले से ही रहता है। केवल नामधारी प्रजातन्त्र का ढोंग रहता है। जनता के प्रतिनिधि जनता द्वारा चुने तो अवश्य जाते हैं लेकिन सच पूछा जाय तो केवल एक पार्टी की ही निरंकुश शाही चलती है। साम्यवाद में अन्य अनेकों पार्टियों का अस्तित्व नामुमकिन व अव्यवहारिक है। यहाँ राज्य के कारनामों, उसके अधिकारियों की छिपी गुस्ताखी, तथा अप्रमाणित अनैतिक व्यवहारों व सरकार की नीति आदि पर किसी भी नागरिक या व्यक्ति विशेष को उँगली उठाने, कुछ लिखने, बोलने या भाव

प्रदर्शन करने का व्यवहारिक अधिकार नहीं होता। ऐसी हालत में यदि पार्टी, शासक या सरकार विवेकी, दयालु, भावनायुक्त व संयमित हुई, तो जनता अपनी मूक खुशी व अन्तरात्मा से दुआएँ देती है। परन्तु यदि वही पार्टी या सरकार किसी ऐसे व्यक्ति विशेष के आधीनता में आ गई जो दंम्भी, क्रूर, उद्दण्ड व भोगी साथ ही निरंकुश भाव वाला हो तो जनता अपनी मूक दासता में ही जकड़ी रहकर अनुदार शासक व अधिकारियों के बनाए हुए कार्यक्रम के अनुसार भीषण यातना व दरिद्रता का अनुभव करती है। लिखने बोलने की सारी स्वतन्त्रता सरकार के पास तो रहती ही है, फिर जनता के अपरिमित व अबला कष्ट व व्यथा की पुकार उसके शरीर के अन्दर ही घुल-घुल कर रह जाती है। जो भी व्यक्ति कुछ भी विरोध या चूँ-चपड़ करने की कोशिश करता है, उसको मौत की सजा दे देना तो, यह राज्य या सरकार की व्यवहारिक, रोजमर्रा व स्वाभाविक बात होती है। साम्यवाद की दासता ऐसी अवस्था में संसार की अब तक की बड़ी से बड़ी निरंकुश-शाही को भी मात कर देती है, जिसकी मिसाल बेजोड़ व अद्वितीय होती है।

जब कभी किसी को कुछ विशिष्ट अधिकार दिए जाते हैं तब उनसे मनुष्य की बुद्धि और विवेक की सदा हत्या ही होती है। जिस मनुष्य को कोई राजनैतिक अथवा आर्थिक सुभीता होता है वह बुद्धि और विवेक से रहित होता है। (साम्यवाद, ले० बाबू रामचन्द्र वर्मा, पृ० २२८)

डा० मेंजर को इस बात का भय है कि, साम्यवादी राज्य व्यक्तियों को अपना गुलाम बना लेने में उसी प्रकार अपनी आर्थिक शक्तियों का दुरुपयोग करेगा, जिस प्रकार वर्तमान राज्य अपनी राजनीतिक शक्तियों का दुरुपयोग कर रहा है। इसलिए उसका उपदेश है कि, व्यक्तियों की

स्वाधीनता में हस्तक्षेप करने की अपेक्षा सार्वजनिक लाभों का बलिदान कर देना साम्यवादी राज्य का अधिक कर्तव्य होना चाहिए।

मि० एच० जी० वैल्स का कहना है—"यह हमें स्पष्ट रूप से स्वीकार है कि, साम्यवादी राज्य का श्रमजीवी वर्तमान समय के ब्रिटिश श्रमजीवी की अपेक्षा अधिक स्वाधीन न होगा। यह भी सम्भव है कि, दूसरों से काम लेने पर नियुक्त उसके कर्मचारी वर्तमान समय के छोटे-छोटे व्यवसायों के मालिकों से कम निरंकुश न हों। पर ऐसे साम्यवादी राज्य का अस्तित्व भी रह सकता है। जर्मनी में तो यह अवस्था प्रायः अपने आधे स्वरूप में अभी से मौजूद है। वर्तमान अवस्था से स्वेच्छाचारी साम्यवाद की हमारी अवस्था अधिक घृणास्पद नहीं हो सकती।

(साम्यवाद, ले० बाबू रामचन्द्र वर्मा, पृ० ३४३, ३४४)

जिन टीकाओं को पढ़कर लोगों में क्रान्ति करने नई शासन पद्धति स्थापित करने—की इच्छा उत्पन्न हो, उनके प्रचार में बाधा करेंगे (सरकारी महकमें व राज्य)। यही नहीं लेखों या पत्रों को राज्य छापने तक न देगा। जहाँ तक किसी समाचार पत्र की टीका से साम्यवादी राज्य को अपने अस्तित्व के सम्बन्ध में भय न होगा, वहाँ तक उसका मुँह खुला रहने दिया जायगा, पर ऐसा भय उपस्थित होते ही उसका मुँह सी देने से साम्यवादी राज्य आगा पीछा भी न करेगा। साम्यवादी सरकार की इस नीति को स्थिर नीति मानते हुए यह अनुमान किया जा सकता है कि, उसके अमल में सेन्सरी का महकमा बड़ा ही लम्बा चौड़ा होगा और उसकी चक्की से साबित निकलने वाले पत्रों और पुस्तकों को ही संसार में आने का अवसर मिलेगा।

(साम्यवाद, ले० बाबू रामचन्द्र वर्मा, पृ० ३६२, ३६३)

साम्यवाद सर्वत्र आर्थिक समानता लाने में भी असफल साबित हुआ है। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा राजनैतिक अधिकारों के अपहरण के साथ-साथ साम्यवाद में फिर वही विष-

मता का प्रादुर्भाव होने लगता है। यह विषमता प्रथम अवस्था में तो न्यून या कम होती है, लेकिन कुछ काल पश्चात् इस विषमता में रूढ़िता आने लग जाती है। जिन व्यक्तियों के हाथ में आर्थिक नियन्त्रण व शक्ति होती है, वे तो अपने को मालामाल करके पूर्ण ऐयाशी व सुविधा-पूर्ण हो जाते हैं, परन्तु बेचारी निरीह श्रमिक जनता, अनुपयुक्त शिक्षा पायी हुई, इन बड़े व भले मानुसों का कुछ भी बिगाड़ नहीं सकती। वह तो जैसी हमेशा से रहती आई है वैसी ही रह जाती है। हो सकता है उसे बस केवल क्षुद्र आवश्यकता तथा जीविका की अनिवार्य वस्तुएँ, जिनसे उसका किसी प्रकार गुजर-बसर हो जाय ही प्राप्त हों बाकी सारी मशीनों द्वारा उत्पादित भोग व उपयोगी सामग्रियाँ सरकारी धर्माधिकारियों के महलों की शोभा व विलासिता को बढ़ावें। संभव है बेचारे श्रमिक को जाड़ों में केवल एक कम्बल से ही ठिठुरते हुए गुजर करना पड़े और हमारा उच्च विशेषाधिकारी वर्ग बन्द महलों में, गर्म कमरों के अन्दर, सुखपूर्वक सजी हुई सेज पर विश्राम करते हों और प्रातः होते ही कोड़े की फटकार से बेचारे श्रमिक की पीठ गर्माते नजर आते हों। राज्य में राज्य अधिकारियों व उच्च अफसरों तथा आर्थिक सुविधा प्राप्त लोगों का एक अजीब गठ-बन्धन व उनमें शोषण की प्रवृत्ति हो, तो भी कोई आश्चर्य नहीं। सरकार या उच्च मन्त्री इन सभी अन्दरूनी गोल-माल व गड़बड़ी तथा दुराचारपूर्ण अव्यवस्था को जानता हुआ भी कुछ महत्वपूर्ण व साहसिक कदम उठा सकने में पूर्ण रूप से असफल होता है। इसका कारण यही है कि, समस्त राजकीय कामों का नियन्त्रण तो इन्हीं अधिकारी वर्गों के हाँथ में रहता है। शासक या मन्त्री तो केवल आदेश देना जानते हैं। उस

आदेश को किस प्रकार अधिकारी वर्ग पूरा करते हैं, इसे संसार का कोई भी अन्य व्यक्ति. यहाँ तक कि स्वयं मन्त्री महोदय भी नहीं जान सकते। साम्यवाद में सर्व-साधारण को अपनी शिकायतें तथा अपनी दुःखगाथाओं को प्रकट करने की कोई व्यवहारिक सुविधा नहीं के बराबर ही समझनी चाहिए। वर्तमान स्वतन्त्र दुनियाँ के प्रजातन्त्र में इसके विरुद्ध, इतना तो अवश्य लाभ व सुव्यवस्था है कि सर्वसाधारण को व्यवहारिक रूप से लिखने, बोलने व विचार प्रकट करने की सुविधा होती है, जिससे वे किसी भी अधिकारी की अनुचित व दुराचारपूर्ण व्यवहारों या कारनामों का भण्डा फोड़कर, उन्हें जलील कर सकते हैं, और किसी हद तक उन्हें नियन्त्रण में भी रख सकते हैं।

विचार-शोल परिणाम-दर्शी जर्मन साम्यवादियों ने निश्चय कर लिया कि, समाज के वर्तमान संगठन में ही नहीं, साम्यवादी राज्य के आदर्श संगठन में भी आदर्श आर्थिक समानता असम्भव है।

डा० मेंजर 'आदर्श (आर्थिक) साम्य' केवल अराजकों की समाज रचना में सम्भव मानते हैं। साम्यवादी राज्य में इन चार कारणों से ऐसी समानता को असम्भव मानते हैं।

(१) शासितों की अपेक्षा शासकों की रहन सहन में कुछ विशिष्टता या भेद की आवश्यकता, जो साम्यवादी राज्य में और भी अधिक होगी क्योंकि, सम्पूर्ण साम्पत्तिक राज्य में भी उन्हीं को शासन करना होगा।

(२) भिन्न भिन्न व्यक्तियों के ज्ञान और शिक्षा संस्कार में भारी अन्तर का अस्तित्व।

(३) उनके कामों के परिमाण व मूल्य की असमानता और,

(४) सामाजिक क्रान्ति में बहुत बड़े-बड़े शिल्पियों और कला-कुशलों आदि का प्रभुत्व ।

डा० मेंजर को इस बात का पूर्ण भय है कि, यदि पुरस्कार को प्रलोभन रहित कर दिया जायगा तो हमारे श्रम राज्य की सारी उत्पादन शक्ति, दैनिक आवश्यकता की वस्तुएँ विशेषतः भोजन सामग्री उत्पन्न करने तक ही रह जायगी ; उन्नति अथवा नैमित्तिक आवश्यकताओं के लिए कुछ सञ्चय करना उसके लिए असम्भव हो जायगा लोग एक प्रकार से हतोत्साह या अकर्मण्य हो जायेंगे । वे कहते हैं, समाज की वर्तमान इमारत बिल्कुल जमींदोज करके दूसरी आमूल नई इमारत भले ही उठा ली जाय, पर व्यक्तियों के हृदय को आमूल परिवर्तित कर देना, किसी बड़े सामाजिक क्रान्ति के लिए भी सम्भव नहीं हो सकता । जब तक प्रत्येक मनुष्य अपने ३½ हाथ के शरीर को एक छोटा स्वतन्त्र जगत् समझता है, उसके सुख-दुःखों का उस पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है, तब तक उसके हृदय में स्वार्थ सबसे प्रबल प्रेरक शक्ति रहेगा और अवश्य रहेगा । सम्पत्ति सम्बन्धी नियमों के रूपान्तर से इसका बल कुछ घटाया जा सकता है, फिर भी अन्य प्रेरक शक्तियों में यही बलवान होगा । मेंजर को बेबेल के इस विचार पर बड़ी हँसी आती है कि, साम्यवादी राज्य में लोहार और बढ़ई, कीले ढालने और कुर्सियाँ बनाने के साथ-साथ जब उन्हें मनोरंजन की आवश्यकता होगी तब नावेल आदि न पढ़कर वैज्ञानिक खोजों से ही अपना मनोरंजन करेंगे ; क्योंकि वे देखते हैं कि, विज्ञान और कला-कौशल के उन्नति साधन पर दिन-दिन एकमात्र विशेषज्ञों के अधिकार और उपकरणों की अधिकता होते जाने के कारण प्रयोग-शाला की स्थापना अत्यन्त व्यय-साध्य कार्य होता जा रहा है ।

(साम्यवाद, ले० बाबू रामचन्द्र वर्मा, पृ० ३४८, ३४९)

सारांश यह कि सभी परिणाम दर्शी साम्यवादी किसी न किसी कारण से यह मानते हैं कि उनकी आदर्श राज्य व्यवस्था में भी थोड़ी बहुत

साम्पत्तिक असमानता रहेगी। वे व्यक्तियों को उसमें कुछ देने की प्रतिज्ञा करते हैं. वह 'सुरक्षित और सुखदायक जीवन' है. न कि पूर्ण साम्पत्तिक साम्य। (साम्यवाद, ले० बाबू रामचन्द्र वर्मा, पृ० ३५१)

जिन आर्थिक कारणों से मनुष्य का जीवन स्वतन्त्र प्रजातन्त्र में दूभर हो जाने पर साम्यवाद की स्थापना की गई, उस साम्यवाद में हमें क्षणिक आराम व सन्तोष तथा आश्वासन अवश्य मिल जाता है। लेकिन यह हमेशा नहीं कायम रहता। साम्यवाद की आर्थिक विषमता बढ़ते जाने पर फिर वही पुरानी समस्याएँ सामने आ जाती हैं। थोड़े से विशिष्ट व्यक्ति तो अत्यधिक प्रभावशाली व सम्पत्तिमान हो जाते हैं, बाकी सम्पूर्ण जनता केवल जीवित भर रह जाती है; यही उनका 'सुरक्षित व सुखदायक जीवन' रह जाता है। आर्थिक दृष्टि से ही हमारे समस्त समस्याओं के अध्ययन के सिलसिले में हम साम्यवाद में पहुँचकर, अब थोड़ा यहाँ की सामाजिक उथल-पुथल पर भी स्पष्ट रूप से गौर कर लेना चाहते हैं। एक आर्थिक समस्या को हल करने के लिए हमें सारी सामाजिक व्यवस्था को उथल-पुथल कर डालना किसी मछली की खोज में समुद्र भर को उलच डालने या किसी चींटी की खोज में सम्पूर्ण पहाड़ को ढहा देने के ही समान है।

साम्यवाद समस्त मानव जाति को निष्काम कर्मयोगी बना देता है, यह उसका गुण ही है ! अधिकांश व्यक्तियों को सांसारिक मायाजाल से विमुक्त कर वह उन्हें मोक्ष प्रदान करनेवाला हो जाता है ! 'जीसस' की इस उक्ति से वह शिक्षा ग्रहण करता है कि, 'सम्पत्तिमान् व्यक्तियों को स्वर्ग में जाने की अपेक्षा उँट का सूई की नोक से गुजर जाना ज्यादा सरल है' ! पदाधिकारी व विशेष वर्ग को छोड़कर, सर्व-साधारण को साम्यवाद स्वर्ग

का अधिकारी बना देता है ! माता पिता से बच्चों को छीनकर, उनको कहीं दूर ले जाकर, वह ममता व मोह को भी मानव जाति से दूर कर देता है ! किस बालक को कौन सा कार्य देना चाहिए या कौन सी शिक्षा देनी चाहिए, इसके निर्णय का अधिकार भी बालकों की स्वयं की इच्छा व कामना तथा जोश को छीनकर – कुछ पोप सरीखे धर्माधिकारी विशेषज्ञों को दे दिया जाता है, जो कहीं छिपकर बच्चों की कार्य-विधि का निरीक्षण करते हैं और अपने को ब्रह्मा बनाकर उनकी जन्म कुण्डली बनाते व उनके भाग्य का निर्णय कर डालते हैं। बच्चे भी इस प्रकार भीषण व स्वप्नों की दुनिया तथा ख्याली महलों से बचा लिए जाते हैं। दाम्पत्य प्रेम उच्छृंखल होने के साथ-साथ सन्तति निरोध व ग्राहस्थ जीवन के अभाव के कारण — मानव अतुलित सुखसागर में बहने के लिए छोड़ दिया जाता है। इस प्रकार संसार के सरायँ में ठहरकर मानव फिर अपनी अज्ञात मंजिल पर रवाना हो जाता है।

साम्यवाद का राजनैतिक व अन्तर्राष्ट्रीय विषय भी रोचक व विवादशील है। कुछ भावना-युक्त कच्चे दिल व पक्के दिमाग के व्यक्ति विश्व-जाति का तथा समस्त संसार में एक ही राष्ट्रीयता का प्रादुर्भाव करना चाहते हैं। अन्य व्यक्ति जो अनुभवी व व्यवहारिक संसार क्षेत्र में रहते हैं, वे इसकी भर्त-सना करते हैं। निश्चय ही साम्यवाद में सम्पत्ति उत्पादक-साधनों यानी भारी-भारी मशीनों व कारखानों की स्थापना के कारण—कुछ क्षेत्र तो अधिक महत्वपूर्ण व समृद्धिशाली हो जाते हैं और अन्य अधिकांश क्षेत्रों में वैसी ही उदासी, सादगी व छिछलापन व्याप्त रहता है। इस प्रकार संसार के विभिन्न भागों में असमानता तथा विषमता व्याप्त हो जाती है। सर-

कारी अधिकारियों के पक्षपात, जन्म-भूमि के प्रति लगाव व जनता की आपसी विवाद-शीलता के कारण शीघ्र ही कलह व राष्ट्रीयता तथा गुटबन्दी का प्रादुर्भाव होना स्वाभाविक है। स्थान-स्थान पर चंगेज खाँ सरीखे 'आदर्श मानवों' का प्रादुर्भाव भी हो सकता है, जो समस्त उद्योग-धन्धों को अधिकार में करके किसी जाति या स्थान विशेष की जनता को ही मालोमाल कर, बाकी समस्त संसार की समस्त जनता को नादिरशाही हुक्म का शिकार होने की घोषणा कर दे।

मनुष्य का पक्का अराजक होना केवल जन्मतः ही हो सकता है, परिस्थितियाँ किसी मनुष्य को पक्का अराजक नहीं बना सकतीं। जिन लोगों का स्वभाव उग्र होता है और जो हठी तथा दृढ़ निश्चयी होते हैं, वे प्रस्तुत दुर्दशा देखकर और आदर्श विचारों से परिचित होकर स्वभावतः अधीर हो जाते हैं।

(साम्यवाद, ले० बाबू रामचन्द्र वर्मा, पृ० २३८)

वह समय भी अभी समीप नहीं है जब कि, साधारण मनुष्य इतने आचारवान् और उन्नत हो जाएँ कि, बिना किसी प्रकार के दबाव के अपने अंशका पूरा पूरा काम करें और बदले में उन्हें उतना पुरस्कार मिल सके जितने में वे अपने आराम से दिन बिता सकें।

(साम्यवाद, ले० बाबू रामचन्द्र वर्मा, पृ० २४१)

जार्ज रेनार्ड कहते हैं "मातृभूमि" सार शून्य और निरर्थक शब्द अथवा मूर्ति रहित कल्पना नहीं है। वह उस देश की प्रतिनिधि है जिसमें हमने जन्म लिया है, जिसमें हम बालक से युवा हुए हैं, और जिसमें हमें जीवन तथा विचार प्राप्त हुए हैं। हमारा 'वसुधैव कुटुम्बकम' वाला भाव कितना ही क्यों न बढ़ जाय, जिनसे हमारा सबसे पहले परिचय हुआ, बहुत समय तक हमारे संसार की परिधि जिनसे आगे नहीं बढ़ सकती थी—जिनके बीच में हमारा लड़कपन बीता है, उन सभी वस्तुओं

के लिए हमारे हृदय में एक विशेष प्रकार की अनुभूति अवश्य होती रहेगी। हमारा हृदय उनको छोड़कर अधिक दूर नहीं जा सकता। मातृ-भूमि इसी जन्म भूमि का न केवल विराट स्वरूप है, बल्कि हम लोगों के संयुक्त स्वार्थों, ऐतिहासिक चरितावलियों, आशाओं और हमारी आत्माओं तथा पेशों के परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध की प्रतिनिधि भी है।" रेनार्ड उस युग का आना सम्भव मानता है जब कि, सारे राष्ट्र मिलकर विश्व कुटुम्ब के आकार में परिणित हो जायेंगे। पर अपने झोंपड़े इस आशा पर ढा देने का कोई कारण नहीं दीखता कि, किसी दिन हमको एक बड़ी हवेली मिलेगी। उसका कहना है कि, साम्यवादी स्वदेश भक्ति का उच्छेद करना नहीं चाहते, रूपान्तर करना ही उनको अभीष्ट है। वे स्वदेश को प्यार करते हैं और संसार के अन्य राष्ट्रों के मुकाबले में उसको बलवान् बनाकर खड़ा करना अपना धर्म मानते हैं।

(साम्यवाद, ले० बाबू रामचन्द्र वर्मा, पृ० ३९७, ३९८)

युद्ध की संकट-कालीन अवस्था में—साम्यवाद की भ्रष्ट शासन व नियन्त्रण करने वाली व्यवस्था में—घोर सामाजिक व आर्थिक दुरावस्था उत्पन्न हो सकती है, जिसकी कल्पना करना भी पागलपन की द्योतक ही कही जानी चाहिए। अभी तक ऐसा कोई साम्यवादी काल का उदाहरण सामने नहीं आया है। साम्यवादियों में अभी जोश, नैतिकता तथा सदाचार व दयालुता का भाव पाया जाता है। इसका कारण यही है कि, अभी साम्यवादियों को 'स्वतन्त्र प्रजातन्त्र' से प्रतियोगिता करना है तथा अपनी व्यवस्था को सर्वोत्तम साबित करना है। लेकिन अपनी प्रौढ़ी अवस्था के साम्यवाद में, जब समस्त संसार में वह व्याप्त हो चुकेगा और पतन के कगारे यानी वृद्धावस्था की ओर अग्रसर होगा, भीषण दुर्दशा, अद्वितीय व अवर्णनीय घटनाओं व उथल-पुथल का प्रलय कालीन दृश्य यह सभी

यहाँ देखने को मिल सकता है। राज्य की भित्ति पर ही आधारित समस्त समाज का आर्थिक ढाँचा, राज्य के संकट में पड़ने के साथ ही साथ नष्ट हो जायगा और तब आधारहीन समस्त राज्य की जनता असहाय हो, बिना किसी सूत्र संगठन के खानाबदोश व आदिम युग के प्रकृति के थपेड़ों को खाने वाले मानव के समान हो जायगी। पशु, पक्षी व जानवर भी समयानुकूल अपनी व्यवस्था पहले से ही कर लेते हैं। लेकिन साम्यवादी सामुहिकता—पशु पक्षियों की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा उनकी बुद्धि-मत्ता से भी कहीं ज्यादा गई गुजरी होती है। मशीनें तब भी शायद रहें, और अवश्य रहेंगी ; मानव की दुर्दशा को देखकर तो उन्हें खुशी ही होगी।

अक्तूबर १६१६ में बहुत से कारखानों के मजदूरों ने हड़ताल कर दी (रूसी)। उनका कहना था कि, हम लोगों को दिन भर तो कारखानों म काम करना पड़ता है और रात भर भोजनालयों में भोजन पाने के लिए खड़े रहना पड़ता है। अतः सरकार हम लोगों को अधिकारियों द्वारा भोजन दिलवाने की व्यवस्था करे।

(साम्यवाद, ले० बाबू रामचन्द्र वर्मा, पृ० ३८२)

साम्यवाद की उपयोगिता वर्तमान काल में हमें माननी पड़ेगी। वर्तमान समस्या का, मशीन प्रेम के साथ-साथ, अस्थाई हल साम्यवाद ही हो सकता है। वर्तमान काल जिस आर्थिक, सामाजिक व नैतिक दुरावस्था को प्राप्त हो रहा है, उसको उंगली दिखाने वाला तथा दीन, अभागों व दानें-दानें को मोहताज अनगिनत व्यक्तियों को अजीब सहारा देने वाला, आज साम्यवाद ही साबित हो रहा है। साम्यवाद वास्तव में आज मानव का उद्धारक मालुम पड़ता है, जैसा कि स्वयं वह अपने को कहता भी है। वर्तमान प्रजातन्त्र-युग की भीषण जीविका उपार्जन हेतु

प्रतियोगिता, सर्व शक्तिमान् को ही संसार में जीवित रहने के अधिकार वाला भाव, व दूसरों के हितों का बलिदान कर स्वयं को अधिक भोगी, सम्पन्न व सुविधाजनक बनाना—इन सभी मानव को विक्षुब्ध करने वाले, दुर्गणों को दूर करने का एक-मात्र उपाय आज साम्यवाद ही है। साम्यवाद ने ही प्रजातन्त्र के धन लोलुपों, क्रूर हृदय व विवेक हीन पूँजीपतियों के चंगुल से बचाने के लिए दीन-हीन मजदूरों तथा बेकार व्यक्तियों को एक अजीब संगठन व ताकत तथा रोशनी प्रदान की है, जिससे प्रजातन्त्र-वादियों को अपने कारनामों पर गौर फर्माने के लिए बाध्य होना पड़ा है। साम्यवाद निश्चय ही एक ऐसा सिद्धान्त है, जो कितने ही महापुरुषों द्वारा सींचा व सेवा-सुश्रुषा किया गया है और जो अपनी कमजोरियों और छिद्रों के बावजूद भी—यदि उचित अनुशासन व व्यवस्था में, सम्पादित किया जाय तो—वह समस्त संसार में साम्य, खुशहाली व स्वर्ण-युग उपस्थित करने में पूर्ण समर्थ है। फिर सम्पूर्ण मानव की सात्विक व सहिष्णु तथा त्यागवान अवस्था में संसार में उत्पन्न होने वाली सम्पूर्ण सम्पत्ति पर समस्त मानव जाति का अधिकार हो और बिना किसी प्रकार के द्वेष भाव व झिझक के सभी अपने-अपने अंशों को प्राप्त करें अथवा सम्पत्ति का आदान-प्रदान करें। इस प्रकार निश्चय ही विश्व-बन्धुत्व की भावना के अन्तर्गत सभी व्यक्ति समान रूप से अपनी शक्ति व योग्यता के अनुसार काम करते हुए आवश्यकता की समस्त वस्तुएँ प्राप्त कर उपभोग कर सकते हैं।

साम्यवाद ने दरिद्र वर्ग के कष्ट सभ्य जगत् के सामने रख दिए हैं। साम्यवाद सम्बन्धी आन्दोलन का सबसे बड़ा परिणाम यह हुआ है कि, मनुष्य जाति का जो बहुत बड़ा दुःखी और दरिद्र अंश पहले उपेक्षा

की दृष्टि से देखा जाता था, अब उसी के कल्याण और दुःखमोचन के उपाय समस्त उन्नतिशील देशों में सोचे जा रहे हैं।

(साम्यवाद, ले० बाबू रामचन्द्र वर्मा, पृ० ४७७)

शीघ्र ही वह समय आवेगा जब कि दरिद्रों के दुःखमोचन का प्रश्न संसार में सबसे अधिक महत्वपूर्ण हो जायगा और दूसरे समस्त प्रश्न उसके सामने दब जायेंगे।

(साम्यवाद, ले० बाबू रामचन्द्र वर्मा, पृ० ४७७)

आजकल संसार में जो प्रतियोगिता चल रही है वह बहुत अंशों में प्रायः अराजकता के ही समान है। उसे यह दुष्ट स्वरूप किसी घटना के कारण नहीं प्राप्त हुआ है, बल्कि वास्तव में यही उसका स्वाभाविक स्वरूप है। यह अराजकता दो प्रकार से अपना अस्तित्व प्रकट करती है। एक तो इसका पता बड़ी बड़ी हड़तालों से लगता है, जिन्हें हम औद्योगिक अथवा आर्थिक युद्ध ही कह सकते हैं। इन हड़तालों के कारण बहुत से लोगों को अनेक प्रकार के कष्ट पहुँचते हैं और कभी कभी तो सारे राष्ट्र का औद्योगिक और सामाजिक जीवन ही बड़े संकट में पड़ जाता है। अराजकता के प्रकट होने का दूसरा प्रकार यह है कि, कभी कभी व्यापारिक क्षेत्रों में ऐसा अवसर आ जाता है जब कि बड़े-बड़े कारखानों और रोजगारों के वारे-न्यारे की नौबत आ पहुँचती है। कभी कभी तो इसका नाशक प्रभाव समस्त सभ्य जगत पर होने लगता है। उस समय बड़े बड़े कारखानों का दिवाला निकल जाता है, और ऐसे लाखों करोड़ों आदमी भूखे मरने लगते हैं, जिनका इस सम्बन्ध में कुछ भी अपराध नहीं होता। (साम्यवाद, ले० बाबू रामचन्द्र वर्मा, पृ० ४७८, ४७६)

इस बात को हर समझदार मंजूर करेगा कि साम्यवाद ने समाज के इन दोषों पर प्रकाश डालकर उसकी बहुत बड़ी सेवा की है। उसने स्वयं श्रम-जीवियों को भी उनकी दुर्दशा बतला दी है, और धनवानों को भी आने वाले संकट से सचेत कर दिया है। आजकल पूँजीदारी की जिस

प्रथा की वृद्धि हो रही है उसके द्वारा भी उत्पादन और विभाग के साधनों पर से व्यक्तिगत अधिकार उठता जा रहा है, और दल-बद्ध लोगों का अधिकार होता जा रहा है। अबतक जितने बड़े बड़े कारखाने बन चुके हैं, प्रतियोगिता के कारण उनसे भी बहुत बड़े बड़े पूँजीदार मिलकर अपनी पूँजी लगाते हैं और एक बहुत बड़ा नया कारखाना खोलते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि व्यापार क्षेत्र में छोटे छोटे पूँजीदारों के लिए कोई जगह नहीं रह जाती और उन्हें विवश होकर व्यापारिक वर्ग से निकलना और श्रमजीवी दल में सम्मिलित होना पड़ता है। भूमि के संबंध में भी कृषकों की यही दशा होती है। इसी दशा के सुधार के लिए साम्यवादी चाहते हैं कि, जमीन और पूँजी पर सारे समाज का अधिकार हो जाय। (साम्यवाद, ले० बाबू रामचन्द्र वर्मा, पृ० ४८०, ४८१)

(वर्तमान पूँजीदारी प्रथा में) केवल एक व्यक्ति ही अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए दूसरे व्यक्ति के साथ नहीं लड़ता झगड़ता। इसमें देशों, जातियों तथा राष्ट्रों में भी परस्पर संग्राम होता है। इसके अतिरिक्त एक ही देश, जाति अथवा राष्ट्रों के अनेक वर्ग भी परस्पर जूझते रहते हैं। (साम्यवाद, ले० बाबू रामचन्द्र वर्मा, पृ० ४८४)

८

आदर्श व्यवस्था

यहाँ पर प्रश्न उठता है कि, रोम साम्राज्य की उन्नति का कारण क्या था ? और क्यों उसका इस प्रकार सर्वथा नाश हुआ ? उन्नति का कारण था नागरिकता का भाव कि जिससे समस्त जनता एक ही भाव—सूत्र में गुथी रहती थी। प्रजातन्त्र के समस्त उन्नति काल में और साम्राज्य के प्रथम दिनों में, रोमन नागरिकता को सजग रखने वाले ऐसे पुरुषों की संख्या पर्याप्त थी जो रोम की नागरिकता को अधिकारवत् (अमूल्य) और धर्मवत् (पवित्र कर्तव्य समझतद्देशीय कानून में अपनी अधिकार विषयक गहरी आस्था रखने के कारण रोम के नाम पर सब कुछ न्योछावर करने को तैयार थे। न्याय को अक्षरशः मानने और मनवाने के कारण न्याय-परक और महान् शक्तिशाली साम्राज्य के रूप में रोम की प्रतिष्ठा सीमान्त प्रदेशों में दूर दूर तक फैल गई थी। परन्तु ऐश्वर्य एवं दास प्रथा की उन्नति एवं वृद्धि के कारण प्यूनिक-युद्धारंभ के समय से ही भीतर पोली होनी प्रारम्भ हो गई। पश्चात् काल में नागरिकता तो फैली परन्तु नागरिकता के भावों का सर्वथा लोप हो गया था। (संसार का संक्षिप्त इतिहास, ले० एच० जी० वैल्स, अनु० श्री मदनगोपाल, पृ० २६ द्वितीय खण्ड)

प्रजातन्त्र ही आदर्श व्यवस्था है, जिसमें नागरिक भाव ही मुख्य उन्नति का श्रोत है। आदर्श प्रजातन्त्र तभी सम्भव है जब सभी व्यक्तियों को समान राजनैतिक अधिकार प्राप्त हों व व्यक्तिगत स्वतन्त्रता भी सभी को समान रूप से प्राप्त हो। आदर्श व्यवस्था तभी सम्भव हो सकती है जब निरंकुश शासन पद्धति का सर्वथा अभाव हो और गुलामी प्रथा का पूर्ण अन्त हो। इसके साथ ही एक और भी अत्यन्त महत्वपूर्ण वस्तु ध्यान देने योग्य है, और वह है—आदर्श व्यवस्था यानी प्रजातन्त्र में मशीनों का प्रयोग। मशीनों के प्रयोग से प्रजातन्त्र के नागरिक भावों व व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, दोनों पर ठेस लगती है। इसका नतीजा यह होता है कि, प्राचीन रोम साम्राज्य की भाँति ही ऐश्वर्य एवं दास प्रथा की उन्नति व वृद्धि होती है, जिससे महान् सभ्यता, शक्ति व सुव्यवस्था का अन्त हो जाता है और मानव फिर कराह उठता है। इसलिए हमारी आदर्श व्यवस्था या प्रजातन्त्र की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है—

प्रतिनिधि व्यवस्था के अनुसार, पूर्ण व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के साथ, नागरिक भावों यानी अपने अधिकारों व कर्तव्यों के पूर्ण ज्ञान के सामंजस्य से, सम्पूर्ण विवेकशील, मानव तनुधारी जनता, बिना किसी जाति, वर्ग, रंग व धर्म भेदभाव के शासन-यन्त्र का संचालन करती हुई, मानव श्रम को ही महत्ता देते हुए, यन्त्रों का विवेकशील व नियंत्रित व्यवहार करे।

उपर्युक्त व्याख्या को हम प्रजातन्त्र की परिभाषा भी कह सकते हैं, जिसके अनुसार हम आदर्श व्यवस्था को अच्छी प्रकार व्यक्त कर सकते हैं। उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार हम यह स्पष्ट देख सकते हैं कि, हमें आदर्श व्यवस्था (प्रजातन्त्र) के लिए जिन वस्तुओं या विषयों की आवश्यकता है वे सभी हमें

प्राप्त हो जाती हैं। शासन-यन्त्र का संचालन करने के लिए वही व्यक्ति उपयुक्त हो सकता है, जिसे जनता बहुमत द्वारा मान्यता प्रदान करे। जनता इस प्रकार शासक पर अपना नियन्त्रण रख सकती है। यह निर्वाचित प्रतिनिधि कुछ काल विशेष के लिए ही कार्याधिकारी चुना जाता है। निश्चित काल पश्चात् जनता फिर अपने मताधिकारों का प्रयोग करती है और फिर से अपने इच्छानुसार उसी व्यक्ति को या अन्य योग्य व्यक्ति को चुनती है।

व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का महत्व यहाँ अत्यधिक है। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के अनुसार कोई भी व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को शारीरिक अथवा मानसिक, या आर्थिक गुलाम बनाने का सैद्धान्तिक अधिकार प्राप्त नहीं करता। व्यवहार रूप में स्वेच्छा से, बिना किसी प्रकार के अनैतिक बन्धन या बेड़ी के, एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की सहायता व उसके उचित आदेशों का पालन कर सकता है। जिस समय भी चाहे ऐसा व्यक्ति, ऐसे स्वेच्छापूर्ण बन्धन को तोड़ सकता है। इसके निर्णय का पूर्ण अधिकार उस व्यक्ति विशेष को ही होता है।

नागरिक भावों यानी अपने अधिकारों व कर्तव्यों के पूर्ण ज्ञान का सामंजस्य भी किसी भी आदर्श व्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग है। यदि सभी व्यक्ति अपने अधिकारों को ही देखने लग जाएँ और अपने कर्तव्यों को न देखें तो बड़ी गड़बड़ी होने लगे। प्रजातन्त्र में सभी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता वाले व्यक्तियों को यह अधिकार होता है कि, वे समाज में अथवा अपने व्यक्तिगत कार्यक्रम में जिस प्रकार चाहें व्यवहार करें। लेकिन इतने से ही काम नहीं होने का है। इस अधिकार के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि, कहीं ऐसा न हो कि सामाजिक व्यवस्था ही

छिन्न-भिन्न हो जाय और सर्वत्र उच्छृंखलता तथा अव्यवस्था व्याप्त हो जाय, साथ ही आप अन्य स्वतन्त्र व्यक्तियों के अधिकारों में भी दखल देने लग जाएँ। उदाहरण के तौर पर व्यस्क पुत्र को यह पूर्ण स्वतन्त्रता है कि, वह चाहे जहाँ रहे या जा चाहे कार्य करे। लेकिन यह उसका एक सामाजिक कर्तव्य होना चाहिए कि, वह अपने माता-पिता की सेवा-सुश्रुषा भी करे, उनका आदर व उनसे शिष्ट व्यवहार करे। हमें सभी अधिकारों व कर्तव्यों को कानून का रूप देने की आवश्यकता नहीं। सभ्य व शिक्षित समाज जिसमें एक व्यक्ति का दूसरे से व्यवहारिक सम्बन्ध हो, देना व पावना तथा रिश्तेदारी या पड़ोसी का सम्बन्ध हो, हम यह आसानी से समझ सकते हैं कि, कितने ही अधिकार व कर्तव्यों का सामंजस्य स्वतः, स्वाभाविक रूप से ही हो जाया करेगा।

मनुष्य और मनुष्य के बीच नाता होता है, स्वार्थ और नगद देना पावना का।

(मार्क्सवादी अर्थ शास्त्र ले० भूपेन्द्र नाथ सान्याल, पृ० १०४)

विवेक-शील मानव तनुधारी जनता, बिना किसी जाति, वर्ग, रंग व धर्म भेद भाव के शासन यन्त्र का संचालन करेगी। जो भी व्यस्क व्यक्ति होता है, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, साधारण तौर से यह समझना चाहिए कि, वह विवेकशील है और भले बुरे का उसे ज्ञान है। बच्चे नादान होते हैं। वे आग से तथा साँप से भी खेल सकते हैं। ज्यों-ज्यों वे बड़े होते जाते हैं उनका अनुभव, ज्ञान व शिक्षा भी बढ़ती जाती है, जिससे वे अधिकाधिक विवेकी स्वभावतः होते जाते हैं। अस्तु, कोई उम्र ऐसी निश्चित की जाती है जिसे प्राप्त कर लेने पर, अपवाद को छोड़कर, सभी व्यक्ति विवेक शील समझे जाते हैं।

मानव तनुधारी जनता वही मनुष्यों का वर्ग है, जिसमें हम और आप तथा अनेकों अन्य व्यक्ति रहते हैं। भिन्न-भिन्न मानव तनुधारी भिन्न-भिन्न प्रकार के पाए जाते हैं। कुछ व्यक्ति उजले रंग के, तो कुछ गेहुंए रंग के और दूसरे साँवले अथवा काले भी—आदि अनेकों रंग के होते हैं। इन अनेकों रंग का मिश्रण भी नए-नए रंगों का प्रादुर्भाव करता रहता है। भिन्न-भिन्न देश के जलवायु तथा जाति का प्रभाव और साथ ही माता-पिता के रंग, रूप व स्वभाव का छाप भी बच्चों के रंग, रूप व स्वभाव पर ज्यादातर पड़ा करता है। प्रकृति में पला हुआ मानव, उसके इस अनोखे व्यवहार व गुण को कैसे बदल सकता है? हो सकता है सभी व्यक्ति स्त्री या पुरुष यह चाहें कि, उनका रंग भी उजला ही हो, लेकिन अभी तक तो हम इस चाहने को पूरा करने में असमर्थ ही हैं। फिर भी मनुष्यों में रंग व रूप की विभिन्नता चाहे कितनी भी क्यों न हो, प्रत्येक मानव सभ्य है अथवा बनाया जा सकता है और प्रत्येक मानव में उन्हीं अनुभूतियों, भावनाओं तथा सुख-दुःखों का बोध होता है, जो सभी अन्य व्यक्तियों के अन्तःकरण में होता है। इसलिए बिना किसी प्रकार की रोक टोक के सभी मानव को, रंग रूप का कोई भी भेद न करते हुए, राजनैतिक किंवा आर्थिक या सामाजिक समान अधिकार प्राप्त होना चाहिए।

जाति और वर्ग—ये मनुष्य की अहंभाव की ही प्रदर्शन मात्र हैं। सच तो यह है, संसार की सृष्टि में मानव एक प्राणी है जो स्वयं एक जाति अथवा वर्ग है। इसलिए सम्पूर्ण मानव जाति से सम्बन्ध रखने वाले सिद्धान्तों अथवा व्यवहारों में हमें सभी मानव तनुधारी को एक ही जाति अथवा वर्ग का मानना होगा। फिर भी सम्भव है, मानव स्वभाव, उसका अहं

अथवा उसका सुविधाजनक वर्गीकरण—मनुष्यों में भिन्न-भिन्न जाति अथवा वर्ग का प्रादुर्भाव किया करे, लेकिन यह सभी वर्ग अथवा जाति समान अधिकार प्राप्त व समान सुविधा का उपभोग करने वाले होने चाहिए। कोई ऊँची जाति का हो या नीची, अमीर हो या गरीब, उसका पेशा भी चाहे सुन्दर हो या असुन्दर, उसका स्वभाव भी चाहे क्रोधी, रुक्ष, कृपण हो या दयालु, उदार व मनोहर हो हम हर एक दृष्टि से सभी मानव से समान व्यवहार व उसका समान आदर करेंगे, इसमें किसी को भी आपत्ति अथवा अपना दैवी अधिकार दर्शाने की इजाजत नहीं दी जा सकती।

धर्म का अर्थ है किसी व्यक्ति विशेष, या जाति विशेष अथवा सम्पूर्ण मानव तनुधारी का ही—किन्हीं सिद्धान्तों को मानना अथवा उन्हें कार्य रूप में भी परिणित करना। इसी सिद्धान्त-विशेष का ही नाम धर्म है। धर्म लौकिक अथवा पारलौकिक दोनों ही होते हैं। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों व जातियों के सिद्धान्त व कार्य प्रणाली में भी अन्तर हुआ करता है। भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न प्रकार से आचरण करते हुए भी नजर आते हैं। कुछ व्यक्ति विशेष कट्टर होते हैं, कुछ उदार। लेकिन धर्म चाहे जितने हों, मनुष्यों के विश्वास, नियम, तरीके व रीति-रिवाज चाहे कितने ही क्यों न हों, हमें प्रत्येक व्यक्ति को उसके मन व श्रद्धा के अनुसार अपने मत का अनुसरण करने देने का अधिकार प्रदान करना होगा। इसके साथ ही यह बात भी हमें ध्यान में रखना होगा कि, सभी धर्मों के ऊपर भी एक धर्म है, जिसे मानव धर्म भी कहा जा सकता है और जिसका सिद्धान्त व नियम सर्व-व्यापक व सर्व-सम्मत है और वह है—मानव जाति से प्रेम व सहयोग।

शासन-यन्त्र के संचालन हेतु सभी धर्मों को भुला दिया जायगा और सभी व्यक्तियों को केवल और एकमात्र मानव तनुधारी मानकर ही उनसे व्यवहार किया जायगा।

प्रत्येक युग में और प्रत्येक राष्ट्र में सत्य के तीव्र शोधक और जन कल्याण के लिए अत्यन्त उत्साह रखने वाले विभूतिवान पुरुष और सन्त पैदा होते हैं। उस युग और देश के दूसरे लोगों की अपेक्षा वे सत्य का कुछ अधिक दर्शन किये होते हैं। कुछ तो यह दर्शन सनातन सिद्धान्तों का होता है और कुछ तत्कालीन परिस्थिति से उत्पन्न हुआ होता है। फिर कभी कभी ऐसा भी होता है कि, कितने ही सिद्धान्तों को वे सनातन रूप से देख और समझ तो लेते हैं, किन्तु उन्हें कार्य रूप में परिणित करने के लिए, उस युग और देश की स्थिति के अनुकूल मर्यादा के अन्दर ही उसकी प्रणाली उन्हें सूझती है। इन्हीं कारणों से जगत् में भिन्न भिन्न धर्मों की उत्पत्ति हुई है।

जो इस तरह विचार करता है उसे किसी धर्म में सत्य का अभाव नहीं दिखाई देगा, साथ ही किसी धर्म को वह पूर्ण सत्य के रूप में भी नहीं ग्रहण करेगा। वह देखेगा कि, सब धर्मों में परिवर्तन और विकास के लिए जगह है। वह यह भी देखेगा कि, यदि विवेक पूर्ण अनुसरण किया जाय तो प्रत्येक धर्म अपनी प्रजा का कल्याण साधन कर सकता है और जिसके दिल में लगन लगी है, उसे सत्य की झलक दिखाने तथा शान्ति और समाधान प्राप्त कराने में समर्थ है।—महात्मा गांधी
(गांधी विचार दोहन, ले० किशोर लाल घ० मशरुवाला, पृ० २४)

आदर्श व्यवस्था में मानव श्रम को ही महत्ता देते हुए, यन्त्रों का विवेक-शील व नियन्त्रित व्यवहार करना अनिवार्य है। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के सिद्धान्त को सर्वोपरि मानते हुए, हमें इस यन्त्रों की मर्यादा को भी उसी के समान ही दर्जा प्रदान करना होगा अथवा उससे 'नहीं के बराबर ही' कम दूरी पर

नीचे का दर्जा देना होगा। यन्त्रों का उच्छृंखल प्रयोग करने से व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की व्यवहारिक उपयोगिता समाप्त हो जाती है और मानव का आपसी देना व पावना का सम्बन्ध नष्ट होने लगता है। यन्त्रों के नियन्त्रण को हमें विवेक के अनुसार ही करना चाहिए। देश, काल व पात्र को देखते हुए हम अपनी समस्याओं को दूर करने के लिए, इस यन्त्रों की मर्यादा में ढ़िलाई या कड़ाई कर सकते हैं। इस विषय में निर्णय करने के लिए हमें विशेष सतर्क होना पड़ेगा और यदि हो सके तो सर्व-साधारण की राय लेना भी उचित होगा।

आदर्श व्यवस्था में गाँवों का गृह उद्योग—वहाँ के निवासियों को काम, पैसा व आराम सभी प्रदान करता है। सभी व्यक्ति स्वतन्त्रता पूर्वक अपना-अपना धन्धा करते हैं और परिवार, समाज व गाँव के साथ सन्तोष का जीवन व्यतीत करते हैं। सभी व्यक्तियों को कोई न कोई उपयोगी धन्धा अवश्य प्राप्त होता है। सभी व्यवहारोपयोगी सामग्रियों का उत्पादन इस गृह उद्योग के धन्धे से हो जाता है। सभी ग्रामवासियों में भाई चारा, प्रेम, आदर व आपस में सम्मान रहता है। जितने भी व्यक्ति व जन हैं, सभी की अपनी अपनी आवश्यकता होती है। किसी को जूता चाहिए, किसी को कपड़ा चाहिए। अन्य को उनके हल-बैल का सामान ही चाहिए। किन्हीं को रस्सी या लोटा-बर्तन चाहिए, तो किसी को बाल ही बनवाने की आवश्यकता है। कुछ व्यक्तियों को अपने अपने घरों में कहारों या अन्य श्रमिकों से पानी भी भरवाना है। यह सभी काम आपसी सहयोग व स्वार्थ से सम्बन्धित, देना व पावना के सिद्धान्त के आधार पर ही होता है। समाज का आर्थिक सन्तुलन कायम रहता है। समाज का व्यवहारिक

व आचार-विचार का सम्बन्ध भी एकाकार हो जाता है।

यदि उस ग्राम की जन-संख्या ५०० की है तो यह सभी व्यक्ति अपने आवश्यक कार्यों को अपने में ही बाटे हुए होते हैं। कोई लोहारी करता है, कोई दुकानदारी। अन्य रस्सी बनाने का तो कोई बाल बनाने का ही काम करते हैं। कुछ लोग जुलाहे हैं जो कपड़ा बुनने का काम करते हैं। सभी व्यक्तियों का स्वार्थ एक दूसरे में निहित है। किसी का भी काम बिना दूसरे की सहायता के नहीं चल सकता। यही कारण है, जब कभी ग्राम के दो व्यक्ति सर्व-प्रथम प्रतिदिन मिलते हैं तो प्रत्येक बार वे आपस के परिचय को सम्मान सूचक प्रश्नों के व्यवहार से दृढ़ किया करते हैं। उदाहरण के तौर पर अधिकांश व्यक्ति 'राम-राम' ही की ध्वनियों को गुंजाते हुए आपसी व्यवहार, सहयाग व प्रेम को दृढ़ करते रहते हैं।

ग्राम का तेली तेल पेरता है। बनिक दुकानदारी व वाणिज्य करता है। धार्मिक व्यक्ति अपने धर्म कृत्य में लगे होते हैं। हरिजन व्यक्ति भी अपनी सेवाओं का प्रदर्शन पूर्ण सम्मान की दृष्टि से करते हैं। वैद्य, हकीम या चिकित्सकों का भी यहाँ अभाव नहीं है। सम्पत्ति को निरन्तर प्रदान करती हुई धरती माता इन अपने आश्रितों को समृद्धि प्रदान करती है। समृद्धि सम्पूर्ण समाज की समान गति से होती है। इस लिए विषमता का यहाँ सर्वथा अभाव होता है। यदि एक व्यक्ति गाड़ी घोड़ा रख सकता है तो यह सम्भव है कि, सभी व्यक्ति भी यदि चाहें तो, गाड़ी घोड़े रख सकते हैं। कुछ व्यक्ति यहाँ कंजूस हाते हैं तो कुछ फिजूल खर्ची। तेली अथवा बनिक साधारणतः अपनी इस कंजूसी के लिए प्रसिद्ध, पर साथ ही

साथ सम्मानीय भी होते हैं, क्योंकि इनके यहाँ सम्पत्ति की रक्षा व वृद्धि की जाती है। यह सभी कंजूस या मितव्ययी पैसे-पैसे को जमा कर लेते हैं। यह अपने घर को भी अच्छा बनवा लेते हैं। दान देते हैं, ब्राह्मण भोजन कराते या दावत देते हैं। त्योहारों या शादी के मौके पर यह अपने इकट्ठे किए हुए धन को दिल खोलकर खर्च करते हैं। देशाटन करने अथवा तीर्थ यात्रा करने भी यह समय समय पर जाया करते हैं। संचित कोष का इस प्रकार सद्व्यय व उसको उचित कर्मों में खर्च करने से समाज, देश व विश्व के प्रत्येक स्थान का आर्थिक सन्तुलन कायम रहता है।

जीवन के लिए आवश्यक पदार्थ उत्पन्न करने के लिए स्वयं कायिक परिश्रम करना, यह अस्तेय और अपरिग्रह से उद्भव होने वाला सीधा नियम है। जो पदार्थ बिना परिश्रम के नहीं पैदा होते और जिनके बिना जीवन निभ नहीं सकता, उनके लिए बिना कायिक परिश्रम किए उनका उपभोग करना जगत के प्रति अपने को चोर ठहराना है। महात्मा गांधी (गांधी विचार दोहन, ले० किशोर लाल घ० मशरुवाला, पृ० १३)

यदि हम यह माने कि, जगत की समस्त वस्तुओं पर परमेश्वर का स्वामित्व है और प्राणी मात्र उसके तत्वधान में एक कुटुम्ब रूप है तो फिर हमें सिर्फ उतनी ही वस्तुओं के उपभोग करने का अधिकार रहता है जो हमारे लिए अत्यन्त आवश्यक हों। उससे अधिक अपना अधिकार समझना चोरी है।— महात्मा गांधी। (गांधी विचार दोहन, ले० किशोर लाल घ० मशरुवाला, पृ० ११)

विज्ञान प्राकृतिक साधनों को ज्यादा से ज्यादा व्यवहारिक व साम्पत्तिक रूप देने में समर्थ होता है। प्रकृति का एक खजाना है। विज्ञान की सहायता से किसी युग अथवा काल

के प्राणी अपनी वैज्ञानिक गवेषणाओं को खूब उन्नत कर, इस प्राकृतिक भण्डार को तेजी से भोगना प्रारम्भ कर देते हैं। यानी स्वभोग के लिए हम इतने पागल हो जाते हैं कि, फिर हम अपनी सन्तति के लिए कुछ भी सम्पत्ति प्रकृति के भंडार में नहीं छोड़ना चाहते। शायद इसीलिए उपरोक्त नियम बनाने की आवश्यकता पड़ी कि, मनुष्य उतनी ही सामग्रियों को उपभोग करे जितनी कि उसे सख्त जरूरत हो, और उन्हीं वस्तुओं का उपभोग करे जो कायिक श्रम से उत्पादित की गई हों। अंडे देने वाली मुर्गी का पेट फाड़ कर सारे अंडे निकाल लेने की मूर्खता के समान ही, प्रकृति के भण्डार, उसकी शक्ति अथवा खनिज सामग्रियों आदि का अत्यधिक अपव्यय हानिकर ही साबित हो सकता है।

गाँवों की उपरोक्त आदर्श व्यवस्था को हम रामराज्य कह सकते हैं। इस रामराज्य की अनोखी राजधानी अयोध्या जैसी विशाल व वैभववान् नगरी होगी। रामराज्य में आदर्श प्रजातन्त्र का पूर्ण रूप से पालन होगा। सभी व्यक्ति शारीरिक श्रम से सम्पत्ति का उपार्जन करते हुए अपनी सम्पत्ति का क्रमिक विकास व सञ्चय कर वैभववान् होंगे। रामराज्य में न तो वर्तमान समय की घोर विषमता, दुःख, शोक व बेकारी ही रहने पाएगी और न ही साम्यवाद के समाजीकरण के सिद्धान्त को ही अपनाने और अनेकों विवाद-शील अस्थिर सिद्धान्तों व उनकी कार्य पद्धतियों में ही पड़ने की आवश्यकता होगी। रामराज्य की अवस्था में भोगी व्यक्ति यह न डरें कि, उन्हें तपश्चर्या अथवा संयम का जीवन व्यतीत करना पड़ेगा, जिसका उन्हें कोई भी अनुभव नहीं है। भोगी व्यक्ति यह आशा रख सकते हैं, कि उन्हें रामराज्य में भी सभी भोग सामग्रियाँ विपुल

मात्रा में उपलब्ध होगी और उन्हें यह जानकर खुशी भी होगी कि, उनके साथ-साथ अन्य सभी प्रजा-वर्ग को भी भोगों को प्राप्त करने का समान अवसर व सुविधा है।

रामराज्य स्वराज्य का आदर्श है। इसका अर्थ है धर्म का राज्य अथवा न्याय और प्रेम का राज्य।

उसमें एक ओर तो अगणित सम्पत्ति और दूसरी ओर करुणाजनक फाके-कशी नहीं हो सकती, उसमें कोई भूखा नहीं मर सकता। उसका आधार पशु बल न होगा, बल्कि लोगों की प्रीति और सहयोग पर, जो कि सोच समझ कर और बिना डरे दिया होगा, अवलम्बित होगी। —महात्मा गांधी (गांधी विचार दोहन, ले० किशोर लाल घ० मशरु-वाला, पृ० ७४)

रामराज्य का अर्थ है कम से कम नियन्त्रण। उसमें लोग अपना बहुतेरा व्यवहार आपस में ही मिल जुलकर अपने आप कर लिया करेंगे। उसमें ऐसी स्थिति प्रायः न होगी कि कानून बना बना करके अधि-कारियों द्वारा दण्ड, भय से उसका पालन कराया जाय।

रामराज्य में खेती का धन्धा तरक्की पर होगा, और दूसरे तमाम धन्धे उसके सहारे कायम रहेंगे। अन्न और वस्त्र के विषय में लोग स्वाधीन होंगे और गाय, बैल की हालत भी बहुत अच्छी होगी, जिससे आदर्श गोरक्षा की व्यवस्था होगी।

रामराज्य में सब धर्म, सब वर्ण, और सब वर्ग समान भाव से, मिल जुलकर रहेंगे और धार्मिक झगड़े या क्षुद्र स्पर्धा अथवा विरोधी स्वार्थ जैसी कोई वस्तु न होगी।...

रामराज्य में कोई सम्पत्ति या आलस्य के कारण निरुद्यमी न होगा। मिहनत करते हुए भी कोई भूखों न मरेगा। किसी को भी उद्यम के अभाव में मजबूरन आलसी न बनना पड़ेगा। —महात्मा गांधी
(गांधी विचार दोहन, ले० किशोर लाल घ० मशरुवाला, पृ० ७५)

रामराज्य में आन्तरिक कलह न होगा और न विदेशों के साथ ही लड़ाई होगी। उसमें दूसरे देशों को लूटने की, जीतने की या व्यापार धन्धे अथवा नीति को नाश करने वाली राजनीति अस्विकृत होगी। दूसरे राष्ट्रों के साथ उसका मित्र भाव होगा।

इस कारण रामराज्य में सैनिक खर्च कम से कम होगा।

रामराज्य में लोग केवल लिख पढ़ ही न सकेंगे, बल्कि सच्चे अर्थ में शिक्षा पाए हुए होंगे—अर्थात् उन्हें ऐसी शिक्षा मिलती रहेगी जो मुक्ति देने वाली और मुक्ति में स्थिर रखने वाली हो।—महात्मा गांधी

(गांधी विचार दोहन, ले० किशोर लाल घ० मशरुवाला, पृ ६७६)

"आज हम द्वेष करते हैं। मुझे तो दोपहर की धूप में, खुली सड़क पर, नंगे पाँव अपने पैरों को सेकते हुए जाना पड़ता है। दूसरे मोटर, हवाईजहाज की सफर करते हैं। एक तो पूरे ऐशो आराम से एयर-कंडीशंड कमरों में, घरों में रहता है, और दूसरा लू, ठंड का मारा, खुली हवा में ही प्रकृति के थपेड़ों को खाता है। एक दाने-दाने को मोहताज है। उसके पास पैसे की भीषण कमी है। उसका तथा उसके परिवार की परवरिश कितनी कठिनाई से होती है। खोजे काम नहीं मिलता। कोई उद्यम नहीं। बाँस गाड़ कर उतरने चढ़ने का भी तो काम नहीं मिलता! पारिश्रमिक नहीं के बराबर है। उसको जीवन धारण करने के लिए तो कुछ पैसे चाहिए ही। पैसे के लिए काम का पारिश्रमिक मिलना चाहिए। परिश्रम के लिए जब काम, उद्यम, व्यवसाय मिले तब तो! सारे उद्यम, काम का ठेका तो हमारी दुश्मन इन मशीनों के द्वारा ही संचालित होने लगा है। यह मशीनें हमारी जीविका का नाश करने वाली हैं। जब यह मशीनें ही सारी जरूरतें, कामों को तथा उत्पादन को पूरा कर लेती हैं, तो फिर हमारी क्या आव-

श्यकता हो सकती है ? लेकिन फिर हमारा गुजर कैसे हो ? मुझको ईश्वर ने क्यों बनाया ? इसलिए कि हम चूसे जायँ और भूखों मरें। क्या यही नर्क की यातना तो नहीं है ? क्या हम अपने कर्मों के फल को तो नहीं भोग रहे हैं ? लेकिन पूँजीपति भी इस प्रकार ज्यादा समय तक हमारा शोषण व हमारे धीरज की परीक्षा नहीं ले सकता। मैं क्यों मरू ? जब मरना ही है तो मार कर ही क्यों न मरूँ ? आखिर जीने का अधिकार मुझे भी तो है ! हमें इन स्वार्थियों तथा अन्यायियों का विरोध करना ही चाहिए। इस प्रकार ये मशीन मालिक हमारे कामों को छीनकर व हमारा शोषण करके, हमें भूखा नहीं मार सकते।"

जहाँ एक ओर पूँजीदारी प्रथा में मानव इस प्रकार बड़-बड़ाता है, वहीं साम्यवादी परिस्थिति में पहुँच कर अपने नैसर्गिक स्वतन्त्रता के गुणों को खो बैठता है। स्वतन्त्र व्यक्तित्व के लोप के साथ-साथ वह समस्त सांसारिक सामग्रियों पर से अपना स्वामित्व भी खो बैठता है। अभी तक तो मानव अपने को केवल सर्व-शक्तिमान् ईश्वर का ही गुलाम समझा करता था और सारी सांसारिक वस्तुओं, यहाँ तक कि अपना स्वयं शरीर व आत्मा को भी ईश्वर की ही सम्पत्ति समझता था। लेकिन अब साम्यवाद में उसे ऐसा प्रत्यक्ष देखने को भी मिल गया। मनुष्य ही मनुष्य का गुलाम हो गया मानों वह निर्गुण उपासक से सगुण उपासक में परिवर्तित हो गया। लेकिन जहाँ एक ओर ईश्वर के अधिकार व किसी भी प्रकार उसकी उपासना कर मानव आत्मिक शान्ति, सन्तोष व स्वतन्त्रता का अनुभव करता था, वहीं दूसरी ओर इस मानवकृत अस्वाभाविक साम्यवाद की परवशता व सर्वहारापन को

स्वीकार कर वह अपने को तन, मन व धन सभी दृष्टियों से पंगु कर बैठा।

इतिहास लेखक मित्र हेरोडोटूस ने...ऐथेन्स की इस उन्नति पर विचार किया था।...उसने एक नैतिक परिणाम निकाला था।—ऐथेन्स की ताकत बढ़ी यह इस बात का प्रमाण है—और ये प्रमाण आपको सब जगह मिल सकते हैं—कि आजादी एक अच्छी चीज है। जब तक ऐथेन्स वासियों पर निरंकुश शासन होता था, वे अपने किसी भी पड़ोसियों से लड़ाई में या और किसी बात में नहीं बढ़ पाते थे। लेकिन जब से उन्होंने अपने यहाँ निरंकुश शासकों को खत्म कर डाला, तब से वे अपने पड़ोसियों से बहुत आगे बढ़ गए। इससे यह जाहिर होता है कि, गुलामी में वे इच्छा से कोशिश नहीं करते थे, बल्कि अपने मालिक के स्वार्थ का काम समझ कर मजदूरी सी करते थे। लेकिन जब वे आजाद हो गए तो हर एक व्यक्ति अपनी इच्छा से, बड़ी लगन से ज्यादा से ज्यादा काम करने लगा। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ७१ प्रथम खण्ड)

प्राणी-विशेष (Species) की सामरिक नैसर्गिक वृत्ति (Combative Instincts) के कारण ही स्वामित्व के विचार की उत्पत्ति हुई है। मनुष्य के वर्तमान रूप एवं प्रकृति प्राप्त करने से बहुत समय पूर्व उसका पूर्वज वानर भी स्वामित्व रखता था। (संसार का संक्षिप्त इतिहास, ले० एच० जी० वैल्स, अनु० श्री मदन गोपाल, पृ० १६६ द्वितीय खण्ड)

प्राकृतिक, जंगली एवं अशिक्षित पुरुषों में अमित स्वामित्व के भाव आजकल भी पाए जाते हैं। (संसार का संक्षिप्त इतिहास, ले० एच० जी० वैल्स, अनु० श्री मदन गोपाल, पृ० १७० द्वितीय खण्ड)

अपने स्वामित्व एवं दूसरों के अस्तित्व तथा अधिकार विषयक समझौते होते रहने पर ही, मानव समाज की वृद्धि हुई है। (संसार का

संक्षिप्त इतिहास, ले० एच० जी० वैल्स, अनु० श्री मदन गोपाल, पृ० १६६ द्वितीय खण्ड)

फिर शनैः शनैः सुव्यवस्थित जीवन के विकास की सम्भावना होने पर प्रत्येक वस्तु में ऐसे अमित अधिकार बाधारूप प्रतीत होने लगे। यहाँ तक कि, संसार में जन्म लेते ही मनुष्य ने अन्य समस्त वस्तुओं पर ही नहीं वरन् अपने शरीर पर भी दूसरों के स्वत्व जमाते एवं अधिकार प्रतिपादन करते पाया।...सम्पत्ति अधिकार की न्यायोचित सीमा क्या है, इस विषय में निश्चल रूप से निरन्तर विवेचनाएँ होती देख पड़ती हैं, और नैजेरथ के जीसस के उन्नीस सौ वर्ष उपरान्त समस्त क्रिश्चियन धर्मानुयायी जगत् की यह धारणा हो गई कि 'मानव-तनु-धारी' किसी की सम्पत्ति नहीं हो सकता। प्रत्येक मनुष्य अपनी सम्पत्ति का चाहे जैसा उपयोग कर सकता है। (संसार का संक्षिप्त इतिहास, ले० एच० जी० वैल्स, अनु० श्री मदन गोपाल, पृ० १७१ द्वितीय खण्ड)

समाज शास्त्र (Sociology) में जो आद्य समष्टिवाद (Primitive Communism) पद व्यवहृत किया गया है, उससे अधिक असंगत उक्ति तो ध्यान में भी नहीं आ सकती। (संसार का संक्षिप्त इतिहास, ले० एच० जी० वैल्स, अनु० श्री मदन गोपाल, पृ० १६६ द्वितीय खण्ड)

मनुष्य ने अपने इस 'स्वामित्व' के अधिकार का बहुत अंशों में दुरुपयोग भी किया है। उसने अपनी अतिरिक्त शक्ति, बुद्धि या संगठन का नाजायज फायदा उठा कर, अन्य व्यक्तियों के स्वामित्व का अपहरण कर, अपने को ही सबसे ज्यादा सम्पत्तिशाली बनाने की भी कोशिश की है। इसी के बीच गुलामी-प्रथा का जन्म हुआ जबकि मानव शरीर भी दूसरों की सम्पत्ति समझा जाने लगा। धीरे धीरे मनुष्य की इस अत्यधिक स्वामित्व की बुराई को समझा जाने लगा और

इसको दूर करने का भी प्रयत्न किया गया। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर इसीलिए अत्यधिक जोर दिया गया और नागरिकों के अधिकार व कर्तव्यों की देख-रेख के लिए प्रजातन्त्र राज्य की स्थापना की गई। मनुष्य के अविरल बहते हुए आँसू, जो अब कुछ रुक रहे थे और कुछ व्यक्ति अपने आँसुओं को पोछने भी लग गए थे—उनके ऊपर फिर औद्योगिक क्रान्ति का वज्र प्रहार हुआ और फिर से इस स्वाभाविक स्वामित्व के अधिकारों का मशीनों द्वारा दुरुपयोग किया जाने लगा। अन्त में साम्यवाद के कारण आज यह स्वामित्व का अधिकार मात्र ही मानव से छिनने जा रहा है। 'न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी' वाली कहावत चरितार्थ होने वाली है।

बुद्ध ने कहा है कि, समुद्र में जितना पानी है उससे भी ज्यादा आँसू बह चुके हैं। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ४६५ प्रथम खण्ड)

अमेरिका की खोज के बाद पुराना गुलामों का व्यापार बड़ी बेरहमी की शक्ल में फिर चेत गया। स्पेन और पुर्तगाल वालों ने इस तरह शुरूआत की कि, वे अफ्रीका के किनारों पर से हब्शियों को पकड़ पकड़ कर अमेरिका ले जाते थे और उनसे खेती-बाड़ी का काम लेते थे। इस बहुत ही शर्मनाक व्यापार में इंगलैंड ने भी भरपूर हिस्सा लिया। अफ-रीका के लोगों की भयानक मुसीबतों का और जैसे जानवरों की तरह शिकार करके उनको पकड़ा जाता था और जंजीरों से कसकर अमेरिका को लादा जाता था, उसका कुछ भी अन्दाजा लगाना तुम्हारे लिए या हममें से किसी के लिए बहुत मुश्किल है। हजारों तो सफर खत्म होने के पहले ही चल बसते थे। इस दुनिया में जितने लोगों ने मुसीबत झेली है उनमें सबसे ज्यादा मुसीबतों का भार शायद हब्शियों पर ही पड़ा है। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ४८८ प्रथम खण्ड)

जहाँ एक ओर (मनुष्य देह, शिल्पी यन्त्र, वस्त्र-अवधान, दाँत साफ करने के ब्रुश इत्यादि) कुछ ऐसी वस्तुएँ हैं जो सर्वतो-भावेन अपरिहार्य रूप से वैयक्तिक सम्पत्ति हैं, वहाँ दूसरी ओर रेल, विविध भाँति के यन्त्र (मशीन), निवास स्थान, सुसज्जित उपवन और केलि-नौका इत्यादि अन्य ऐसी अमित वस्तु वर्ग भी हैं जिनमें से प्रत्येक के सम्बन्ध में यह बात विशेष रूप से विचारणीय है कि, उनमें से प्रत्येक में किस परिमाण एवं विशेषावस्थाओं में वैयक्तिक सम्पत्ति मानी जा सकती है और किस दशा में सार्वजनिक अधिकार मानकर उस पर राज्य प्रबन्ध होना और सार्वजनिक व्यवहार (Interests) के लिए उसका राज्य द्वारा नियन्त्रित होना अधिक उचित होगा।

सम्पत्ति की वैज्ञानिक विवेचना आजतक नहीं हुई है और अभी तक वह अपरिमित एवं प्रचण्ड मनोवेगों के रूप में विद्यमान है। एक ओर तो वैयक्तिक सम्पत्तिवादी हैं, जो हमारे वर्तमान कालीन यत्किंचित अवशेष अधिकारों का संरक्षण एवं विस्तार किया चाहते हैं, और दूसरी ओर हैं साम्यवादी जो बहुत दिशाओं में हमारे स्वत्वाधिकारों एवं स्वत्व व्यवहारों (Proprietory acts) को सकुचित एवं नियमित करने के लिए उत्सुक हैं। (संसार का संक्षिप्त इतिहास, ले० एच० जी० वैल्स, अनु० श्री मदन गोपाल, पृ० १७२ द्वितीय खण्ड)

विदेशी व्यवसाय के लिए रामराज्य में पूरी गुंजाइश व सुविधा रहेगी। वाणिज्य बिना संसार का काम ही नहीं चल सकता। वाणिज्य ही किसी स्थान की कमी को पूरा करती है। वाणिज्य के ही द्वारा मनुष्य को अपनी आवश्यक व अनिवार्य वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। लेकिन आजकल सर्व-साधारण वाणिज्य से कोई स्वाभाविक लाभ नहीं उठा पाता। आज तो वाणिज्य नाम की जैसी कोई वस्तु ही नहीं रह गई है। वाणिज्य के नाम पर आज असहाय जनता व दीन दुःखियों तथा निरु-

श्रमी व्यक्तियों को लूटा जाता है। उनके काम व व्यवसाय अथवा जीविका को छीन कर, मशीनों की सहायता से माल ज्यादा से ज्यादा तैयार कर, मशीनों के मालिक सारे वाणिज्य पर एकाधिकार कर जहाँ चाहे वहाँ सर्व साधारण के उपयोग के लिए उसे भेज देते हैं। इसको हम वाणिज्य नहीं कह सकते; क्योंकि इसमें केवल एक कारखानेदार को ही लाभ होता है।

वाणिज्य का अर्थ है एक स्थान के सर्व-साधारण द्वारा प्रस्तुत माल को दूसरी जगह ले जाना और उसे उचित लाभ के साथ वितरण करना। इस उचित लाभ का ही अधिकारी वह बनिक हो सकता है। इस वाणिज्य से दोनों तरफ के सर्व-साधारण को लाभ व सहूलियत होती है, क्योंकि उनके श्रम का उचित पुरस्कार वाणिज्य द्वारा प्राप्त हो जाता है। बनिक किसी का शोषण नहीं करता। लेकिन जब कारखानेदारी का कृतिम व अशुद्ध वाणिज्य किया जाता है, तो दूसरी ही स्थिति उत्पन्न हो जाती है। यह एक साधारण विवेक की बात है कि, कारखानेदारी की व्यवस्था में सर्व-साधारण केवल कच्चा माल ही उत्पादन कर सकता है, तैयारी माल व उपयोगी सम्पत्ति के निर्माण की उसे कोई सुविधा, गुंजाइश या उसमें लाभ नहीं होता। अस्तु यहाँ वाणिज्य यदि किसी वस्तु का होता है, तो वह केवल कारखानेदार के द्वारा मशीनों की सहायता से निर्मित सामानों का ही होता है। सर्व-साधारण को इस विषय में कोई लाभ या दिलचस्पी नहीं होने पाती। सर्व-साधारण तो उल्टे इन कल कारखानों द्वारा प्रस्तुत वस्तुओं का ही उपयोग कर अपने को दिन दिन कंगाल बनाती जाती है। कारखानेदार केवल थोड़े से भाड़े के टट्टुओं, मजदूरों को रख कर ज्यादा से ज्यादा उत्पादन कर लेता है, लेकिन हजारों अपने

ही देशवासियों व आत्मीयजनों के काम-धन्धों को छीन लेता और नष्ट कर डालता है। कारखानेदार इस शोषण के रुपये से मालोमाल हो जाते हैं और अपने दिखाउ भोगों को भोगते हैं। यही कारखानेदार रुपये को पानी की तरह बहाते हैं और जनता उनको देखकर अपने भाग्य को रोती है। काश! वह भी ऐसी ही हो सकती। इस कारखानेदार के धन को हम लूट का धन कहते हैं। इसका लाभ धर्म का नहीं प्रत्युत चरी का है। धर्म के रुपये में किसी को भी द्वेष नहीं होता। सर्वत्र प्रेम व सहानुभूति का ही साम्राज्य होता है।

धुरंधर अंग्रेज अर्थ-शास्त्री ऐडम स्मिथ (Adam Smith) के समय से यह बात दिन दिन अधिकाधिक स्पष्ट हो रहा है कि, जगत्-व्यापी ऐश्वर्य युग लाने के लिए समस्त भू-मण्डल पर स्वतन्त्र एवं अप्रतिबाधित रूप से व्यापार होना आवश्यक है। (संसार का संक्षिप्त इतिहास, ले० एच० जी० वैल्स, अनु० श्री मदन गोपाल, पृ० १७४ द्वितीय खण्ड)

हम ज्यादा से ज्यादा उत्पादन चाहते हैं, लेकिन वह केवल मशीनों के द्वारा ही। मशीनें बुरी नहीं हैं। आधुनिक मानव इस विज्ञान व मशीनों का सदैव कृतज्ञ रहेगा। लेकिन प्रश्न यही है कि, मशीनों की उपयोगिता तभी सम्भव है, जब सभी व्यक्तियों को उचित श्रम व पुरस्कार मिलते रहने की व्यवस्था हो। केवल कुछ पूंजीपतियों के हाथ में ही सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था दे देने से संसार की भीषण क्षति होगी। हम बिना आपस में एक दूसरे के सहयोग के जीवित नहीं रह सकते। यह अनिवार्य है कि हमारे आपसी लेन-देन के व्यवहार व हमारे नाते जारी रहें। इस प्रकार यह जरूरी है कि, हम दूसरों की वस्तुओं को लें और दूसरे हमारी वस्तुओं को लें। हमें अपने कामों

को अपने में ही बांट लेना है। हमें एक सामाजिक प्राणी बनना चाहिए। समाजिक बन्धनों में बंधे रहकर ही हम मानों पृथ्वी व आकाश की मर्यादा के घेरे के अन्दर ही, पक्षियों की भांति स्वतन्त्र विहार करना चाहते हैं।

कागज बनाने की तरकीब का पता लगाने में वह शताब्दी भी पूरी बीत गई। उसके पश्चात् फिर मुद्रण तो आवश्यक और स्वाभाविक ही था। और इस आविष्कार के होते ही जगत् के बौद्धिक जीवन ने एक नवीन और कहीं अधिक बलशाली एवं उन्नतिशील युग में पदार्पण किया। उस युग का तो अब सदा के लिए अन्त हो गया था, जब ज्ञान एक मस्तिष्क से दूसरे मस्तिष्क में बूँदों की भाँति टपकता था। अब तो उसने एक 'बहिया' का रूप धारण किया था जिससे सहस्रों, लाखों, करोड़ों आत्माएँ तृप्त होने लगीं। (संसार का संक्षिप्त इतिहास, ले० एच० जी० वैल्स, अनु० श्री मदन गोपाल, पृ० ६२ द्वितीय खण्ड)

मशीन एक अच्छी चीज है, और इन मशीनों द्वारा यदि हमारी हालत बेहतर हो सकती है तो हमें मशीनों का स्वागत भी करना चाहिए। लेकिन प्रश्न यह है कि, इससे कहीं ऐसा न हो कि सभी व्यक्तियों को जीने का अधिकार ही छिन जाय। हमें अपने आर्थिक सन्तुलन व बढ़ती हुई आबादी को रोजी व उद्यम दिलाने के लिए मशीनों का परिमित व नियंत्रित उपयोग करना लाजिमी है। बढ़ती हुई आबादी से हमें घबड़ाने की आवश्यकता नहीं। यदि प्राकृतिक सम्पदा काफी है तो प्रत्येक व्यक्ति को व्यवहारिक उद्यम अवश्य मिल जायगा। लेकिन इसके साथ एक शर्त भी है और वह यह है कि, माशीनों की कृतिमता इसके बीच में बाधा रूप से न आने पावे।

ईश्वर ने प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्राकृतिक सम्पदा दी है। हर वस्तु का, साथ ही

साथ व्यक्तियों की संख्या व उनकी आवश्यकता का सन्तुलन भी हमें प्राप्त है। सच तो यह है प्राणी वहीं निवास करता है जहाँ उसका गुजर, बसर व निर्वाह होता है। उदाहरण के तौर से उन स्थानों पर जहाँ प्राकृतिक सम्पदा कम होती है, वहाँ की आबादी भी कम ही रहती है। उन स्थानों पर जहाँ प्राकृतिक सम्पदा व सुविधाएँ अत्यधिक होती हैं, वहाँ पर घनी आबादी पाई जाती है। ज्यों-ज्यों आबादी बढ़ती जाती है, नए-नए प्राणी संसार में आते रहते हैं-- जिनके दो-दो हाथ और पैर होते हैं और जिनकी अपनी आवश्यकता भी रहती है। लेकिन उसके हाथ पाँव बाद में काम आते हैं, पहले तो उसकी आवश्यकता पूर्ति होनी चाहिए। उसकी प्राथमिक आवश्यकता की पूर्ति माँ करती है। वह अपने भोजन के हिस्से से उसे दूध पिलाती है, आँचल से उसे ढाकती है। अपनी गोद में उसे विश्राम देती है। इसमें सन्देह नहीं - अपने को शक्ति-सम्पन्न व उपयोगी बनाने के लिए बालक अपने माता पिता पर ही कुछ काल तक अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए निर्भर करता है। लेकिन जहाँ वह हृष्ट-पुष्ट व पक्के हाथ पाँव व मस्तिष्क वाला हो जाता है, वह अपने उपयोगी काम व सम्पत्ति के उत्पादन में लग जाता है। फिर वह अपने माता पिता के सहयोगी व उनकी समृद्धि करनेवाले के रूप में खड़ा हो जाता है। किसी व्यवसाय में लगाए गए मूलधन की भांति, समय आने पर वह ब्याज सहित व मुनाफे के साथ अपने माता पिता के लिए उपयोगी व लाभदायक हो जाता है। अपनी शैशवस्था में उसने जितना भी संचित सम्पत्ति का, निरुद्यमी रहकर उपयोग किया होता है, उसे वह व्यस्क

होने पर अपने अतिरिक्त शक्ति से अत्यधिक उत्पादन कर ब्याज के सहित लौटा देता है।

निश्चय ही आदर्श व्यवस्था के लिए मशीन व मानव-उद्यम का सन्तुलन आवश्यक है। हमें सभी उद्योग धन्धों का वर्गीकरण कर उनके बारे में अलग-अलग विचार करने की आवश्यकना है। नीचे हम कुछ ऐसे ही वर्गीकरण किए हुए उद्योग धन्धों में मशीनों के प्रयोग की नियंत्रित मात्रा को निर्धारित किए हुए महात्मा गाँधी के विचारों को देखेंगे, जो यद्यपि भारतीय दृष्टिकोण से ही व्यक्त किए गए हैं, लेकिन उनकी उपयोगिता तथा महत्ता सर्वव्यापक व विश्व की दृष्टि से भी की जा सकती है।

१ — भारतीय अर्थ-शास्त्र की दृष्टि से यान्त्रिक साधन और उनमें किए गए सुधारों के दो भाग किए जा सकते हैं: —

(क) ऐसे यन्त्र या उनमें किए गए सुधार जिनकी योजना खास तौर पर इस हेतु से की गई हो कि, श्रम करने वाले मनुष्य के स्नायुओं को श्रम कम पड़े और उसके समय की कुछ बचत भी हो जाए। उदाहरणार्थ गिर्री, चक्की, चरखा, साइकिल, सीने की मशीन फटका, करघा, गाड़ी वगैरह। इसी प्रकार घर्षणादि दोष कम हो जावें, इस दृष्टि से किए गए सुधारों का भी इसमें समावेश हो सकता है। उदाहरणार्थ छर्रे, कटोरी वाले धुरे, पक्की सड़कें, रेल की पटरियाँ इत्यादि।

(ख) वे यन्त्र जो श्रम करने वाले मनुष्य का स्थान लेने के लिए अर्थात् मजूरे या पशु की संख्या कम करने की गरज से अथवा मजूरे की बुद्धि चातुरी और शरीर बल का उपयोग करने के बजाय केवल जीवित यन्त्र की भाँति उसका उपयोग करने के लिए बनाए गए हों। उदाहरणार्थ आटे की मिल, धान कूटने, तेल पेरने, चीनी बनाने के कारखाने, सूत और कपड़े की मिलें, मोटर, रेल इत्यादि माल के वाहन,

ट्रेक्टर, भाप या बिजली से चलने वाले यंत्र, सूक्ष्म श्रम-विभाग के परिणाम स्वरूप बनाए गए यन्त्र इत्यादि।

२—पहले प्रकार के यान्त्रिक साधन और उनमें किए जाने वाले सुधार सामान्यतः इष्ट हैं। सम्भव है इनके कारण भी मनुष्य या पशुओं की संख्या घट जाए, पर इसकी संभावना कम से कम है।

३ दूसरे प्रकार के यान्त्रिक साधनों तथा सुधारों का उपयोग करने में बहुत विवेक और ध्यान की जरूरत है। अर्थात् जिस प्रकार शस्त्र, बारूद वगैरा के बनाने और इस्तमाल पर जनता की सरकारों का नियंत्रण होता है, उसी प्रकार इन यन्त्रों या साधनों का कौन और किस हद तक उपयोग करे इस पर भी जनता का नियन्त्रण रखना जरूरी है।

४— दूसरे प्रकार के यन्त्रों का उपयोग किस परिस्थिति में दोष रूप न होगा इसके कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं:—

(क) जहाँ काम बहुत हो और करने वाले थोड़े हों और अधिक काम करने वाले प्राप्त नहीं किए जा सकते हों, या उनका रखना सम्भव न हो जैसा कि जहाज पर।

(ख) जहाँ आकस्मिक दुर्घटना या अन्य किसी वजह से काम ही इस प्रकार का हो कि उसे बहुत जल्दी निपटाना जरूरी हो जाय या यान्त्रिक साधनों के बदले अव्यवस्था, ढील या खतरा बढ़ने की सम्भावना हो – उदाहरणार्थ आग बुझाने के लिए, अकाल या ऐसे ही प्राकृतिक संकट से लोगों को बचाने के लिए अथवा अनाज की सहायता पहुँचाने के लिए।

(ग) जो यन्त्र या सुधार जनता को सहायक उद्योग दे सकते हैं या ऐसे किसी सहायक उद्योग में सहायता पहुँचाकर उसे अच्छी हालत में पहुँचाने वाले हों, किसी प्रकार भी किसी सहायक उद्योग का नाश करने वाले न हों। उदाहरणार्थ अधिक काम देने वाला चरखा, रस्सी बनाने का चक्र।

(घ) पहले प्रकार के यन्त्र बनाने वाले यन्त्र, और औजार वगैरा बनाने या खासकर जहाँ एक ही प्रकार या नाम के यन्त्र या उनके हिस्से बनाने का काम हो।

(छ) जिस उद्योग में जनता का बहुत बड़ा भाग नहीं लग सकता हो पर जिनकी जरूरत सबको हो, ऐसे पदार्थों की बनावट में। उदाहरणार्थ पानी के नल, पहिए, काँच के घरेलू बर्तन वगैरह।

(च) जहाँ अत्यन्त सूक्ष्म काम करने के लिए नाजुक साधनों की जरूरत हो जैसे घड़ी, टाइपराइटर, प्रयोगशाला के साधन वगैरह की बनावट में।

(ज) खानगी साहस से नहीं, परन्तु राज्य की तरफ अथवा उसके नियन्त्रण में चलने वाले उद्योगों में—जैसे रेलगाड़ी, जहाज, महत्व की खानें, मिट्टी के तेल के कुएँ वगैरह।

५—जिस हद तक दूसरे प्रकार के यान्त्रिक साधनों वाले उद्योग आवश्यक माने गए हों उसी परिणाम में उनके कारखाने भी आवश्यक होंगे। जैसे लोहा, औजार, काँच, बिजली वगैरा के तथा इनके लिए जरूरी साधन बनाने वाले कारखानें।—महात्मा गांधी

(यन्त्रों की मर्यादा, पृ० ३०–३२)

९

मशीन और जनसंख्या-वृद्धि

जनसंख्या नियमन करने के यदि उपाय न किए जायेंगे तो किसी समय मनुष्य जाति को बहुत बड़ी आपदाओं का सामना करना पड़ेगा। हमें ईश्वर के भरोसे बैठा रहना अच्छा नहीं। उद्योग भी हमें करना चाहिए। (सम्पत्ति शास्त्र, ले० महावीर प्रसाद द्विवेदी, पृ० ३६२)

मानव के हृदय में जब भीषण असंतोष, व्यथा व द्वेष की ज्वाला धधकती रहती है, तब जनसंख्या वृद्धि होती है। मानव को जब अत्यधिक मानसिक चिन्ता, ग्लानि व क्षुब्धता का का अनुभव होता है, तब भी जनसंख्या-वृद्धि होती है। मानव जब गुलाम होता है, शारीरिक अथवा मानसिक परवशता का अनुभव करता है और उसकी आवश्यकताएँ पूरी नहीं होती— उस समय भी अस्वाभाविक गति से जनसंख्या-वृद्धि होती है। मनुष्य के निरुद्यम, बेकार, व महत्वपूर्ण कार्य के सर्वथा अभाव की अवस्था में स्वभावत वह विषय भोगों से अपने मन को बहलाना व समय को काटना चाहता है। विषमता की अत्यधिक वृद्धि होने पर स्वर्थी युग में दीन-हीन व असहाय व्यक्ति अपने चारो ओर के वैज्ञानिक प्रसाधनों से युक्त चकाचौंध से मोहित हो कामनावश पतन के अंधकार

पूर्ण गर्त में आसानी से गिर जाते हैं। वर्ग, समाज, अथवा देश में जब अधिकांश जनसंख्या दिखाऊ भोगों को पाने के लिए तरसती हो उस समय ऐसी अधिकांश दरिद्र जनसंख्या अपनी भुखमरी के बावजूद भी निरंतर दुगुनी चौगुनी होती जाती है। विश्व की कृतिम अवस्था में मशीनों के उच्छृंखल प्रयोग से मानव का आर्थिक सन्तुलन नष्ट हो जाता है, जिससे सर्वत्र अराजकता, उछृंखलता, तथा असंयम व भ्रष्टाचारिता का भीषण प्रकोप होता है; और साधारणतः कृषिप्रधान, अविकसित अथवा अर्धविकसित उद्योग धन्धों की अवस्था वाले, व शोषित होते रहने के कारण दरिद्र देशों में अस्वाभाविक गति से जनसंख्या वृद्धि होती दीख पड़ती है। उद्योग धन्धों की विकसित अवस्था में भी जब मशीनों द्वारा किया हुआ अत्यधिक उपयोगी उत्पादन किसी अन्य देश व बाहर के बाजारों में नहीं बेचा जाता अथवा नहीं बिक पाता और अपने ही देश में उसकी खपत की जाती है, तब आर्थिक विषमता की स्थिति उत्पन्न होकर अधिकांश व्यक्ति बेकार हो जाते हैं और कृषि पर अत्यधिक दबाव पड़ने के कारण कृषक भी भुखमरी का शिकार होता है—ऐसी अवस्था में भी जनसंख्या में वृद्धि होना अनिवार्य समझना चाहिए। साम्यवादी अथवा पूंजीवादी अर्थव्यवस्था, दोनों में ही मशीनों के अत्यधिक प्रयोग करने से अधिकांश अथवा सामुहिक रूप से किसी भी कार्य विशेष के अभाव व बेकारी की अवस्था में जनसंख्या निरंतर बढ़ती ही रहती है; वह घटती कभी नहीं—जब तक इसे रोकने के लिए कृतिम युग में कृतिम साधनों का भी उपयोग न किया जाय।

बिना विचारे सन्तान बढ़ाते रहना या उसकी इच्छा करते रहना, जड़ता का चिन्ह है।

आज सन्तति का बिना बिचारे होने वाली वृद्धि को रोकने की बहुत आवश्यकता है। परन्तु उसका धर्मयुक्त मार्ग एक ही है – ब्रह्मचर्य।

सन्तति नियमन के कृतिम उपाय धर्म, तथा नीति के विरुद्ध और परिणाम में विनाश की ओर ले जाने वाले हैं। इनमे समाज का हर तरह अधःपतन होता है।—महात्मा गांधी (गांधी विचार दोहन, ले० किशोर लाल घ० मशरू वाला, पृ० ४२)

ब्रह्मचर्य का दूसरा नाम हम 'संयम' दे सकते हैं। ब्रह्मचर्य उसी समय सध सकता है जब व्यक्ति संयमित हो, संयमित होने के लिए आंतरिक व बाह्य दोनों ही वातावरणों का अनुकूल होना अनिवार्य है। भीषण आंधी की लपेट में, गगन चुँबी तरंगों की घनी मार को सहते हुए किसी भी जहाज के लिए अगाध समुद्र में स्थिर रह सकना मुश्किल ही नहीं असंभव भी है। मानव के लिए वर्तमान कृतिम युग में ऐसी ही भीषण झांझा-वात की अवस्था में, आर्थिक समस्याओं की घनी मार के बीच अगाध प्रलोभित सामग्रियों की अतृप्त अवस्था में तथा निरुद्यमी होने के कारण भी संयम अथवा स्थिरता को प्राप्त हो सकना नितांत उपहास्य ही समझना चाहिए। लेकिन यदि हम संयम की ओर से निराश होकर कृतिम संतति-निरोध के उपायों का अवलंबन करें तो भी हमारी गनीमत नहीं। मानव की समस्याओं के घटने के बजाय, उसकी समस्याएँ और भी बढ़ जायेंगी। घोर उच्छृंखलता को प्राप्त होकर, बिना किसी संयम अथवा नियम के, भ्रष्टाचार पूर्ण व अनैतिक सामाजिक दुरावस्था के साथ समस्त मानव जाति एक ऐसी मानसिक व आन्तरिक उत्तेजना व लोलुपता की अवस्था को प्राप्त होगी, जिसकी कल्पना मात्र से रोमांच व प्रलयकालीन दृश्य उपस्थित हो जाता है। मनुष्य जो कुछ भी अपने जीवन में

संयम कर पाता है, वह उचित सामाजिक, आर्थिक, अथवा नैतिक बन्धनों में बंधा रहकर ही कर पाता है। लेकिन जब कृतिम संतति निरोध की व्यवस्था रोजमर्रा व व्यवहारिक वस्तु हो जायगी तो बहुत स्वाभाविक है कि, यह सभी बन्धन ढीले अथवा बिल्कुल ही समाप्त हो जायें और तब संयम नाम की किसी वस्तु की साधना करना किसी के लिए भी असंभव हो जाय। वास्तव में यह एक गंभीर व विचारणीय बात है कि, मनुष्य जब घोर हृदय की ज्वाला, मानसिक चिन्ता, आर्थिक दुरावस्था व परवशता को प्राप्त होने पर भी आत्मसंयम नहीं कर पाता—जिसके फलस्वरुप उसका परिवार दिन दिन बढ़ता जाता है—तो फिर संतति निरोध की अवस्था में वह संयम के बारे में सोच भी सकेगा, यह कहना भी हमारे लिए युक्ति संगत न होगा।

सच पूछिए तो जीवन के सुखपूर्वक निर्वाह के लिए दूसरी इन्द्रियों का कुछ न कुछ भाग आवश्यक होता है, परन्तु ब्रह्मचर्य से जीवन निर्वाह असम्भव नहीं होता उल्टा अधिक अच्छा और तेजस्वी होता है। किन्तु दूसरे प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य को आहार-विहार में अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त है इसलिए वह समस्त इन्द्रियों की अपेक्षाकृत अधिक भोग करता है। इस कारण उसमें काम वेग वर्ष में केवल कुछ दिनों के लिए ही नहीं उत्पन्न होता बल्कि निरन्तर पोषित करता रहता है। इस प्रकार काम विकार उसके लिए एक निरन्तर का रोग हो जाता है और उसे जीतना उसके लिए बहुत कठिन हो गया है।—महात्मा गांधी (गांधी विचार दोहन, ले० किशोर लाल घ० मशरुवाला, पृ० ६)

सांसारिक मानव आज एक अजीब द्विविधा व परवशता में पड़ा हुआ है। उसके कुछ समझ में नहीं आता वह क्या करे ? उसकी समस्याएँ व उसका समाजिक जीवन कुछ अजीब

सा हो गया है। एक ओर कुआँ व दूसरी ओर खाई वाली कहावत उसके लिए चरितार्थ हो रही है। समाज की अनेकों कृतिम अवस्थाओं व विपमता के कारण वह जहाँ एक ओर संयम का साधन करना असम्भव मानता है, वहीं दूसरी ओर सन्तति निरोध के कृतिम उपायों का अवलम्बन करने में भी अपना भला नहीं देखता। इसमें शक नहीं सयम — सन्तित निरोध का सर्वोत्तम व सर्वोत्कृष्ट उपाय अथवा साधन है, जब कि कृतिम उपायों का अवलम्बन सबसे निकृष्ट व पतन का द्योतक है। लेकिन संयम आखिर वह करे तो कैसे करे? मानव संयम के लिए तड़पता है फिर भी वह नहीं कर पाता। यही उसकी घोर परवशता का द्योतक हो जाता है। ब्रह्मचर्य के गुणों को वह जानता है, लेकिन उसे जान कर भी उसे ग्रहण नहीं कर पाता। यही तो उसकी झुँझलाहट है।

हमारा सुख, आरोग्य, तेज, विद्या, बल, सामर्थ्य, स्वतन्त्रता और धर्म सम्पूर्ण हमारे ब्रह्मचर्य के ऊपर ही सर्वथा निर्भर है। ब्रह्मचर्य ही हमारे अरोग्य मन्दिर का एकमात्र आधार स्तम्भ है। ...तत्वत: व वस्तुतः ब्रह्मचर्य ही जीवन है.. ब्रह्मचर्य ही के अभाव से हम किसी अवस्था में सुखी और उन्नत नहीं हो सकते। ब्रह्मचर्य ही हमारे इस लोक व परलोक के सुख का एकमात्र आधार है। यही नहीं किन्तु ब्रह्मचर्य ही हमारे चारो पुरुषार्थों का मूल है। मुक्ति का प्रदाता है।... बिना ब्रह्मचर्य धारण किए कोई भी पुरुष कदापि श्रेष्ठ पद को नहीं प्राप्त कर सकता।...बिना ब्रह्मचर्य के प्रत्यक्ष इन्द्र भी तुच्छ और पददलित हो सकता है। तब फिर सामान्य मनुष्यों की बात ही क्या है? अतः ब्रह्मचर्य ही हमारी सम्पूर्ण विद्या, वैभव और सौभाग्य का आदि कारण है। ब्रह्मचर्य ही हमारी श्रेष्ठता, स्वतन्त्रता और सम्पूर्ण उन्नति का बीज मन्त्र है! ब्रह्मचर्य ही हमारी सम्पूर्ण सिद्धियों का एकमात्र रहस्य है।

(ब्रह्मचर्य ही जीवन है, ले० स्वामी शिवानन्द, पृ० १४)

न तपस्तप इत्याहुर्ब्रह्मचर्यं तपोत्तम् ।
ऊर्ध्वरेता भवेद्यस्तु स देवोन तुमानुष ॥१॥

भगवान कैलाशपति शंकर कहते हैं—'ब्रह्मचर्य...धारण' यही उत्कृष्ट तप है। इससे बढ़कर तपश्चर्या तीनों लोकों में दूसरी कोई भी नहीं हो सकती। ऊर्ध्वरेता पुरुष...इस लोक में मनुष्य रूप में प्रत्यक्ष देवता ही है—(ब्रह्मचर्य ही जीवन है, ले० स्वामी शिवानन्द, पृ० १३)

परन्तु विचारशील मनुष्य देख सकता है कि, दूसरी इन्द्रियों का पोषण किए बिना काम को बहुत पोषण नहीं मिल सकता और दूसरी इन्द्रियों को जीते बिना काम जय की आशा रखना फजूल है।—महात्मा गांधी (गांधी विचार दोहन, ले० किशोर लाल घ० मशरूवाला, पृ० ६, १०)

बढ़ती हुई जनसंख्या की वृद्धि रोकना प्रत्येक विचार शील व्यक्ति के लिए कर्तव्य होना चाहिए। व्यक्तिगत रूप से साधारण मनुष्यों के लिए भी, अपनी आर्थिक अवस्था अधिक न बिगाड़ने के लिए, संतति निग्रह या उसकी उत्पति बन्द करनी ही पड़ेगी। लेकिन हमें इसको सफलता पूर्वक कार्य रुप में परिणित करने के लिए अपने आर्थिक व्यवस्था के ढ़ाचे में परिवर्तन करना होगा। यदि हम वर्तमान कृतिम युग में ही घुल-घुल कर रहना पसन्द करते हैं और इसे किसी भी प्रकार छोड़ना नहीं चाहते, तो फिर वर्तमान दुरावस्था को दूर करने के लिए हमें कृतिम साधनों का ही उपयोग करना पड़ेगा। लेकिन यह स्थाई हल नहीं होगा। कृतिम उपायों के अवलंबन का विरोध अन्त समय तक विचारशील जन करते रहेंगे। संयम की दृष्टि से सन्तति निरोध करने का उपाय तभी सम्भव है जब हम वर्तमान मशीन व्यवस्था का अन्त कर कुटीर उद्योग की स्थापना करें, और तभी हम स्वाभाविक अवस्था व मानसिक शान्ति तथा उचित वातावरण का

सहयोग पाकर अपने संयम को आसानी से पालन कर सकेंगे। सच पूछा जाय तो मशीनों के प्रयोग के कारण ही मानव आज इस भीषण द्विविधा, परवशता तथा झुँझलाहट का अनुभव करता है। हम यह शीघ्र ही देख सकते हैं कि, हमारी सारी समस्याओं का हल एक मात्र इस यांत्रिक मर्यादा के अन्तर्गत ही आ जाता है।

जनसंख्या वृद्धि को रोकना आज मनुष्य के आर्थिक दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्व का हो गया है। संसार में उतने ही व्यक्ति जीवित रह सकते हैं जितनी संसार में उसके भरण-पोषण के लिए व व्यवहारिक उपयोगी सामग्रियाँ मिल सकती हैं। संसार में यदि खाद्य सामग्रियों की कमी पड़ जाय अथवा पहनने के कपड़ों के प्रसाधन कपास या ऊन वगैरह की कमी पड़ जाय, अथवा रहने योग्य मकानों की ही कमी हो जाय तो, इसका असर सभी सांसारिक प्राणियों को भुगतना पड़ेगा, चाहे वह प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष। ऐसी अवस्था में हो सकता है कितने ही व्यक्तियों को भूखा मर जाना पड़े अथवा सभी को आधा पेट भोजन कर शरीर को रोग-ग्रस्त व कमजोर बनाना पड़े। कपड़े की कमी से या तो कितने ही व्यक्तियों को नंगा रहना पड़ेगा अथवा सभी व्यक्तियों को आधा तन ही ढाक कर सन्तोष करना पड़ेगा। मकानों की कमी के कारण, सर्वसाधारण के कष्टों व असुविधा के साथ साथ, एक ही मकान में घने रुप से बसे होने के कारण, मनुष्यों के घर कबूतर-खानों से तुलना करने योग्य हो जायें तो कोई आश्चर्य नहीं होगा। इसके अतिरिक्त आज की यन्त्रौद्योग प्रथा के अन्तर्गत मनुष्य तो अभी भी आमतौर से रोजगार-हीन व बेकार होता जा रहा है, तो फिर किसी भी नए प्राणी की जनसंख्या में वृद्धि

करना—उसको भी बेकारों की श्रेणी में ही बढ़ाकर गिनती करने के समान होगा। पूँजीदारी प्रथा की तो बात ही करना व्यर्थ है, क्योंकि यहाँ कोई भी एक अतिरिक्त बढ़ा हुआ बेकार व्यक्ति पूँजीदारों व उनकी पोषक सरकार के लिए एक सरदर्द व खतरे का पैगाम लेकर ही आता है। साम्यवाद की अवस्था में भी यह अतिरिक्त बढ़ा हुआ व्यक्ति स्वागत के योग्य नहीं होता। यह तो मानो किसी बाप की सम्पत्ति में से हिस्सा बटाने वाला एक और भी अधिक दावेदार उत्पन्न होता है। सच पूछा जाय तो यान्त्रिक पूर्णावस्था के साम्य-वादी व्यवस्था के अन्तर्गत यह अतिरिक्त व्यक्ति तो एक नए निठल्ले, गुलाम व केवल मूक जानवरों के चिड़िया खाने में रहने की भाँति ही जीवन यापन करने के लिए आता है। हमारी वर्तमान जनसंख्या ही हमारे लिए भार व चिन्ता का विषय बनी हुई है, फिर हम इसकी वृद्धि कैसे बर्दाश्त कर सकते हैं ?

संसार की कम से कम दो तिहाई आबादी को आज किसी न किसी रुप में खाद्य संकट का सामना करना पड़ रहा है। करोड़ों बल्कि अरबों की संख्या में आज लोगों को ठीक तरह से खाने को भी नहीं मिल रहा है। और इधर कुछ वर्षों में संसार की आबादी जिस तेजी के साथ बढ़ती चली गई है, उसे देखकर सम्भावित खतरे की गम्भीरता आज भी भली भाँति महसूस की जा सकती है—यदि यह सिलसिला इसी तरह चलता रहा तो फिर आज से कुछ ही वर्षों बाद धरती के विभिन्न देशों में अन्न संकट असाधारण सीमाओं को भी पार कर जायगा। विशेष तौर पर ध्यान देने की बात यह भी है कि, जो देश जितने ही अधिक पिछड़े हुए हैं उतनी ही अधिक उनकी जनसंख्या में वृद्धि होती जा रही है। कुछ विद्वानों का मत है कि, यदि ऐसी स्थिति

में संतति निग्रह के उपायों को काम में नहीं लाया गया तो आगामी ७० साल में संसार की आबादी आज की अपेक्षा एक दम दुगुनी हो जायगी और उससे पहले ही, यदि अन्न संकट की समस्या के हल के लिए कोई नया और कारगर कदम नहीं उठाया गया तो फिर कालांतर में उक्त भयानक संकट से छुटकारा पाने की कोई संभावना नहीं रह जायगी !

समस्या हल करने के सिर्फ दो ही रास्ते हमारे सामने हैं। या तो ससार के सभी देशों में, विशेष तौर पर पिछड़े हुए देशों में, सन्तति निग्रह की किसी पुख्त योजना को कार्यान्वित किया जाय और कानूनन उसे सभी लोगों के लिए किसी एक सीमा तक अनिवार्य कर दिया जाय, या फिर संसार के खाद्य उत्पादन को बढ़ाने का प्रयत्न किया जाय —उसके लिए सम्मिलित रूप से एक नया मोर्चा कायम किया जाय।

(नवनीत, हिन्दी डाइजेस्ट, अक्तूबर १६५३ पृ० ७२)

सन्तति निग्रह की अप्राकृतिक प्रणाली...आज...धीरे-धीरे लुप्त होती...जा रही है। नोबेल पुरस्कार विजेता प्रोफेसर विरटानेम ने भी अपनी एक नवीनतम पुस्तक में इस ओर संकेत करते हुए लिखा है— "आज के संसार के लिए सन्तति-नियमन के अस्वाभाविक और अप्राकृतिक प्रयोगों पर बल देना आवश्यक नहीं है, बल्कि आवश्यकता तो सीधे शब्दों में इस बात की है कि वह अपने यहाँ के खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि करे।" उनका तो यह यहाँ तक निश्चित मत है कि, फिलहाल अधिक खाद्योत्पादन में सहायक यदि किसी नए आविष्कार के बिना भी प्रस्तुत खादों के उचित उपयोग से हम अपने आपको विश्व-खाद्य-सङ्कट को चुनौती देने की स्थिति में पा सकते हैं।

यदि यांत्रिक ढंग से, बहुत बड़े पैमाने पर खेतों में काम न किया जाय तब भी केवल कृमि-नाशक पदार्थों तथा उत्कृष्ट-खादों के उपयोग

"हाइड्रोजन तथा कार्बन के सम्मिश्रण से निर्मित एक नवीनतम खाद के उपभोग से अन्नोत्पादन में शीघ्र ही कई गुनी वृद्धि की जा सकती है।" (नवनीत, हिन्दी डाइजेस्ट, अक्टूबर १६५३ पृ० ७३)

गैस, तेल तथा कार्बन के सम्मिश्रण को तरल रूप में लाकर वे उससे खाद्यान्न-उत्पादन के मोर्चे पर भी सफलता प्राप्त करने का स्वप्न देख रहे हैं और यह कोई कोरी कल्पना ही नहीं ! (नवनीत, हिन्दी डाइजेस्ट, अक्टूबर १६५३ पृ० ७४)

आज विज्ञान जिस प्रकार मनुष्य की जीवनी शक्ति से खेलवाड़ कर रहा है, अब वह उसी प्रकार पृथ्वी की उर्वरा शक्ति से भी करने लग गया है। जिस प्रकार जहरीली दवाओं व सूइयों से वह मनुष्य की जीवनी शक्ति को नष्ट करता है, उसी प्रकार जहरीले व कृत्रिम यौगिकों अथवा मिश्रणों से वह पृथ्वी की उर्वरा शक्ति को भी नष्ट कर रहा है। मनुष्य को दिए गए कब्जनाशक उत्तेजक, जहरीले व कृत्रिम जुलाबों की तरह आन्तरिक कार्य-प्रणाली को उत्तेजना व जीवनी शक्ति का ह्रास तथा अतिरिक्त थकान को प्रदान करने वाली, और प्रकृति की इस अत्यन्त ही हानिकर पदार्थों को बाहर निकालने की असाधारण चेष्टा—इन सभी की भाँति कृत्रिम व नवीनतम तथा चमत्कारिक पदार्थों का प्रयोग पृथ्वी पर भी जुलाब व उत्तेजक पदार्थों की भाँति ही किया जा रहा है और भविष्य में अत्यधिक विस्तृत रूप से भी होने वाला है। हम आज प्रकृति से दूर और बहुत दूर जाते रहने में ही अपना कल्याण देखने लगे हैं। वास्तव में किसी के लिए भी प्रकृति के प्रकाशमय आश्रय से दूर अंधकार में टटोलते हुए अनिश्चित राह पर समस्त मानव जाति का भाग्य साथ में लिए हुए, चलते चले जाना एक घोर मूर्खता पूर्ण व भयंकर कर्म है।

यदि कोई बीमार पड़ता है तब स्वभावत: वह जल्द से जल्द अच्छा हो जाना चाहता है। मनुष्य की इस इच्छा के कारण ही ऐसी चिकित्सा पद्धतियों एवं औषधियों का व्यवहार बिना समझे बूझे करते हैं, वे कभी यह शंका नहीं करते कि ये औषधियाँ सदा के लिए कोई नुकसान पहुँचा सकती हैं। उन्हें इसका ख्याल नहीं होता कि ये "शीघ्र फलदायी" औषधियाँ कुछ लक्षणों को जो तुरंत दबा पाती हैं, वह किसी न किसी प्रकार से शरीर को क्षति पहुँचा कर ही।

(रोगों की सरल चिकित्सा, ले० विट्ठलदास मोदी, पृ० ६०)

जब अनुचित दवा और अनावश्क पथ्य के कारण तीव्र रोग अपना काम अच्छी तरह नहीं कर पाता और शरीर की कोशिश विफल हो जाती है तो विकार अन्दर ही बना रहता है। इससे शरीर की जीवन शक्ति भी क्षीण पड़ती जाती है। फिर भी उस विकार को निकालने की कोशिश शरीर करता है, पर क्षीण शक्ति के कारण वह सफल नहीं हो पाता। नतीजा यह होता है कि, किसी न किसी अंग से संबन्ध रखनेवाला कोई जीर्ण रोग खड़ा हो जाता है।

(रोगों की अचूक चिकित्सा, ले० जानकी शरण वर्मा, पृ० २६)

दवाओं का इस्तमाल यानी कड़ा जुलाब का प्रयोग ठीक नहीं है। ... वह तो विजातीय पदार्थ (बेकार चीज) हो जाता है। शरीर इस विजातीय पदार्थ को अपनी सारी ताकत से बाहर निकालने का यत्न करता है। इसी कोशिश में आँत से मल भी बाहर हो जाता है। यह दवाइयाँ अक्सर आँत में उत्तेजना और जलन भी पैदा करती हैं; जिनसे इनका असर होता है। पर बार-बार जलन और उत्तेजना से आँते कमजोर पड़ जाती हैं और अपना मामूलो काम नहीं कर सकतीं।

(रोगों की अचूक चिकित्सा, ले० जानकी शरण वर्मा, पृ० १४०)

जब ये दवाएँ अमाशय, छोटी आतों, बड़ी आतों और मलधारक भागों से गुजरती हैं तो वे इनसे पैदा हुई जलन के कारण पानी और

लुबाब निकालने लगते हैं। और इन दवाओं के कारण नहीं, इन निकले हुए पानी और लुबाब के कारण मल आँतो से निकल जाता है। जिसे लोग कब्ज दूर होना कहते हैं। रोज-रोज दवा लेते रहने पर दवाओं का असर आतों पर कम हो जाता है, उनसे पानी और लुबाब निकलना रुक जाता है। इस तरह दवा का असर धीरे-धीरे जाता रहता है। फिर और तेज दवा ली जाती है और वह भी कुछ दिन बाद निकम्मी हो जाती है। पर तो भी लोग दवा लेते ही रहते हैं। उनकी सुन्दर पैकिंग, लुभावनी शीशी उनका पीछा नहीं छोड़ती।

(रोगों की सरल चिकित्सा, ले० विट्ठलदास मोदी, पृ० ६७)

Organic manures not only provide plant food but they also mechanically improve the condition of the soil. They tend to make a heavy soil lighter and cement a light soil into a cohesive mass. They continue to decompose still further and become black humus. Humus is the essence of soil fertility. Chemical fertilizers are stimulants which nourish the plants only. With the exception of one or two, they do not improve the texture of the soil. If chemical fertilizers were to be used as a substitute for farm-yard manure, insted of as a supplement, over a period of a number of years, the soil would soon be rendered unfit for further cultivation.

An organic manure is essential. A chemical fertilizer is a necessary evil, to be applied only when organic manure Is not procurable in sufficient quantity or is lacking in some specific element.

(Pocha's garden guide, P. 22)

(भावार्थ—प्राकृतिक (आरगैनिक) खाद केवल पौधों को भोजन ही प्रदान नहीं करते बल्कि मिट्टी की हालत भी क्रमिक रूप से अच्छी

बनाते हैं। वे भारी भूमि को हल्की बनाते हैं और हल्की भूमि को एकाकार भूमि से जोड़ देते हैं। ये आगे भी बराबर विभाजित होते रहते हैं जो कि काली अत्यन्त ही उपयोगी खाद के रूप में बदल जाते हैं। यह उपयोगी खाद किसी भूमि की उपजशक्ति का मुख्य स्त्रोत होती है। रासायनिक (कृतिम) खादें केवल जुलाबी काम करती हैं, जो अपनी तीव्रता के कारण पौधों की ही केवल परवरिश कर पाती हैं। एक या दो अपवाद को छोड़ कर वे मिट्टी की बनावट में उन्नति प्रदान नहीं करतीं। यदि रासायनिक खादों का ही उपयोग कई वर्षों तक खेतों में केवल किया जाय, बनिस्बत कि पूरक के ही रूप में उनका प्रयोग हो, तो फिर उस खेत की मिट्टी भविष्य में खेती करने के सर्वथा अयोग्य हो जायगी।

एक प्राकृतिक (आरगैनिक) खाद अनिवार्य है। एक रासायनिक खाद आवश्यक बुराई है, और इसका प्रयोग उसी वक्त करना चाहिए, जब प्राकृतिक खाद उचित मात्रा में प्राप्त न हो अथवा उसमें किसी तत्व विशेष की कमी हो —(पोचास् गोर्डन गाइड, पृ० २२)

केवल पृथ्वी की एकाएक उपज बढ़ा लेने से ही हमारी समस्या हल नही हो जायगी। हमें इस पृथ्वी की चमत्कारिक उपज से भय होने लगता है। मालूम ऐसा ही होता है कि, जिस प्रकार उत्तेजक जुलाब शरीर के अंदर जाकर क्रिया करता है, उसी प्रकार यह जहरीली खादें भी पृथ्वी में मिलकर उसके अंदर इतनी उत्तेजना पैदा कर देती हैं कि, जहरील पदार्थों को बाहर निकाल फेकनें में उसे अपनी तमाम या अधिकांश जीवन-शक्ति को अन्दर से खींच कर लगा देनी पड़ती है। इस प्रकार पृथ्वी की उपज शक्ति के भण्डार में भीषण क्षति होती है और जमीन ऊसर हो जाती है। निश्चय ही यहाँ यह महान् भय व शंका होती है कि, कहीं इस प्रकार कृतिम व जहरीले पदार्थों का निरंतर खेतों में प्रयोग करते रहने से अन्त में

हमारी सारी उपजाऊ जमीन ही न ऊसर हो जाय और समस्त मानव जाति को भूखा मरना पड़े। इसीलिए यह एक बुद्धिमानी का कार्य होगा कि, हम प्राकृतिक ठीक ढंग से निर्मित खादों का ही उपयोग खेतों में करें और पृथ्वी उसके बदले में जितनी उपज प्रदान करे उसी में हम सन्तोष करें।

जनसंख्या की वर्तमान अस्वाभाविक वृद्धि, यह कोई अच्छा गुण नहीं है। यह तो किसी छुतही बिमारी की भाँति ही भयंकर है, जो निरंतर वृद्धि करती जाती है। कृतिम युग में इस प्रकार की बिमारियों का पैदा हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं। उपज के पीछे पागलों की तरह दौड़ने से, जो खतरे से खाली नहीं है, हमारी समस्त समस्याओं का हल नहीं हो जाता। आवश्यकता इस बात की है कि, हम अपनी कृतिमता को सर्वप्रथम त्याग दें और मशीनों को मर्यादित रखने की कोशिश करें। तब हमें यह जानकर आश्चर्य होगा कि, स्वाभाविक रूप से हमारी सारी समस्याओं का अन्त हो गया और हम पहले से अधिक आत्मिक शांति का अनुभव कर पाते हैं।

आज के मशीन युग ने मनुष्य पर अपना भरपूर असर डाला है। उसका असर प्रत्यक्ष व सर्वत्र व्याप्त है। मशीनों की मदद से ज्यादा भोग सामग्रियाँ उत्पन्न की जा चुकी हैं, और की जा रही हैं। मशीन की शक्ल ही ऐसी मनहूस है जो मनुष्य को प्राकृतिकता से हटा कर कृतिमता की ओर ले चलती है। प्रातः काल का ऊषा, समुद्र में डूबता सूर्य, मन्द-मन्द प्रकृति की गोद में खेलती समीर—यह सभी मन व आत्मा को प्रफुल्लित कर देते हैं। परन्तु मनुष्य की कृति यह मशीन अपनी घड़-घड़ाहट से कानों को बहरा और बुद्धि को कुँठित कर देती है। आज हवाई जहाज, मोटर, रेल, सिनेमा, रेडियो, स्नो, पाउडर,

लिपिस्टिक, चमकते कपड़े, तथा साबुन यह सभी मनुष्य को भोग की ओर ही खीचते हैं।

मनुष्य इन सभी वस्तुओं तथा अनेको अन्य भोग-प्रधान सामग्रियों को देख कर ललचता है। अप्राप्त वस्तु की चाहना होना स्वाभाविक ही है। "हमारे मित्र के पास इतनी सारी वस्तुएँ हैं। उसने इतना ज्यादा भोग किया। उसके उपभोग करने के साधन भी कितने अधिक हैं। मैं भी उन सभी की चाहना करता हूँ। क्या ही अच्छा होता मेरे पास भी वह सभी वस्तुएँ होतीं, जो मेरे मित्र के पास हैं! फलाँ-फलाँ व्यक्ति मोटर से जा रहे थे। कितनी आनन्ददायक है मोटर की भी सवारी! गर्मी में रेफ्रिजेटर होता तो काम चलता। क्या ही अच्छी बात होती कि, मैं रोज ही सिनेमा देखा करता। हवाई जहाज पर सैर करना कितना अलौकिक है, लेकिन यह मेरे भाग्य में कहाँ। दूसरे मजा लें और मैं केवल ख्वाब ही देखा करूँ! ख्वाब में भी कितना ज्यादा आनन्द है! इसमें मनुष्य अपनी सुध बुध भूल जाता है, मानों वह प्रत्यक्ष स्वर्ग में ही विचरण कर रहा हो।

"अभी अभी मैं बाजार गया था। ओह! कितनी तड़क-भड़क है वहाँ। चारो ओर नजारे ही नजारे होते हैं। अमीरी ठाट खुलकर वहाँ की जमीन पर उतरा दिखाई देता है। लाल-पीली-नीली साड़ियों आदि पोशाकों की बहार, किसी बगीचे में खिले रंग बिरंगे फूलों की झूमाहट से कम नहीं होती। बाजार में कितने ही स्त्री-पुरुषों की जोड़ियाँ दिखाई पड़ी थीं। बहुत सारी जोड़ियाँ तो गजब की ही थीं। मानों भगवान ने उन्हें अपने हाथों से गढ़ा और चुना था। उन सभी को समस्त भोग प्रसाधन सुलभता से प्राप्त थे। उनके पूर्व जन्म के कर्म

निस्सन्देह अच्छे रहे होंगे। मेरे सामने ही कितनी सारी मूल्य-वान् वस्तुओं को खरीद कर वे लोग ले गए थे। कितने ही पैकेट उनके हाँथों की शोभा बढ़ा रहे थे।

"शहर की बात तो जाने दो। उन पहाड़ों की रानियों की मुझे बरबस ही याद हा आती है, जिनकी गोद में स्वर्ग निवास करता है। जहाँ कितने ही कुबेर जाकर भ्रमण करते हैं। यहा की हवा अपनी शीतलता से मन को मोहित कर देती है। यहाँ पर विहार करने वाले नर-नारी अपना अपनत्व भूल जाते हैं। ईश्वर ने जहाँ एक ओर ऐसे न मालूम कितने ही प्रसाधनों से पृथ्वी को भरपूर रक्खा है, वहीं मेरे जैसे अभागों को भी जन्म दिया है। आखिर मेरी इस संसार को क्या आवश्यकता थी ? मैं तो किसी भी लायक का नहीं हूँ ! मेरे पास न तो काम ही है और न आराम ही ! केवल ख्वाब ही बस देखा करता हूँ। काश ! मैं भी ...।

"हे ईश्वर मुझे खाने को दो। मुझे केवल दो पैसे ही चाहिए जिससे मैं कम से कम अपनी पेट की ज्वाला को तो कुछ कम कर सकूँ। काम न रहते हुए भी यह कैसी परेशानी ! मुझे तो आराम करना चाहिए। मुझसे ज्यादा किसको आराम प्राप्त हो सकता है। मैं तो चिर शान्ति को भी पाने का अधिकारी हूँ। मुझसे बढ़कर आज इस संसार में कोई भी सौभाग्यशाली नहीं हो सकता। मै ही सबसे ज्यादा सुखी हूँ। ऐ संसार तू देख ! और आँखें फाड़ कर देख कि क्या तू मुझसे ज्यादा सुखी व आराम में है ? मुझे चिर शान्ति है, अखंड विश्राम ! मुझे दुःख है तो केवल इसी बात का कि, तुझे भी एक रोज ऐसी ही चिरशान्ति व विश्राम मिलेगा। पर मैं तुझसे अधिक सौभाग्यशाली हूं, क्योंकि मैं तुझसे पहले ही

अपनी मंजिल पर पहुँच रहा हूँ। तुम पिछड़े गए। मैं बाजी मार ले गया। हा ! हा !! हा !!"

मशीन के युग में, उसकी तेज रोशनी में समस्त मानव जाति चकाचौंध का अनुभव कर रही थी। उसे सही रास्ता भी नहीं दिखाई देता था। लेकिन मनुष्य की क्षमता अभी समाप्त नहीं हुई थी। विवेक ने उसका साथ नहीं छोड़ा था। उसने इस चकाचौंध को चाँदनी में बदल दिया। चाँद के न रहते हुए भी चाँदनी का सर्वत्र नजारा था। लेकिन चकाचौंध से ज्यादा मानव इस चाँदनी के कारण भुलावे में आ गया। चाँदनी में पहुंच कर उसने अपना विवेक भी खो दिया, क्योंकि वह मोहित जो हो गया था ! प्राचीनकाल का मानव कहता था—सब दिन एक समान नहीं होते। मशीनों की मदद से उसने ऐसा भी कर दिखाया। देखो न ! यहाँ सब दिन की चाँदनी है; अँधियारी रात का तो नाम ही नहीं है !

लेकिन इससे क्या ? चाँदनी का लाभ उठाने वाले तो केवल वे ही हैं, जिनके पास मशीनों का सहारा है। होना तो ऐसा चाहिए था कि, केवल इस संसार में इन सौभाग्यशालियों को ही रहने का अधिकार होता। संसार में केवल सुनाने वाले ही होते, सुनने वाला कोई न होता। संसार में चाहे दो ही चार व्यक्ति हों पर वे सुखी हों, दुःखी कोई भी न हो। ऐसी भी कौन सी जरूरत थी जो कि, एक ओर तो चाँदनी की सम्मोहन क्रिया हो और दूसरी ओर घोर अन्धकारमय आभागों की कुटियों की भयानक नीरवता ! ईश्वर कम से कम तू तो इन अभागों, दुःखियों, व अन्धकारमय व रहस्यपूर्ण नीरवता के निवासियों पर रहम कर ! इस तड़पन से तो उनका संसार में न रहना ही अच्छा है। मालूम होता है तू दुनिया को बनाने में कोई

भारी गल्ती कर बैठा है। लेकिन अभी भी समय है। तू उस अपनी गल्ती को सुधार ले। इन नसीब के मारों को तू वापस बुला ले।

मशीनों के कारण समाज में घोर आर्थिक विषमता व्याप्त हो जाती है। यह एक निर्विवाद सत्य है कि, सभी प्राणी स्वभावत: भोग प्रधान होते हैं। लेकिन यह ईश्वर की कृपा ही कहना चाहिए जो उसने मनुष्य को पेट और दो-दो हाथ पैर भी प्रदान किए। पेट भरने पर ही मनुष्य भोगों को उचित रीति से, यहाँ तक कि संयमित रूप से भी, भोग सकता है। पेट भरने के लिए उसे अपने तन, मन, धन सभी से पूर्ण परिश्रम का काम लेना पड़ता है। इस परिश्रम से उसे सन्तोष व विश्राम की इच्छा होती है। जीविका उपार्जन हेतु महत्वपूर्ण अनिवार्य श्रम करने के कारण, वह अपना काफी समय अच्छी प्रकार बिना भोगों की ओर मन दौड़ाए ही बिता लेता है। बाकी समय वह सन्तोष व गुरुता-पूर्ण हृदय के साथ विश्राम में बिता देता है। बीच-बीच में वह अपने को अतिरिक्त भोग व सुख प्रदान करने की भी क्षमता रखता है। इस प्रकार उसे भोगों के बारे में इधर-उधर मन दौड़ाने का मौका ही नहीं मिलता।

मशीनों के कारण ऐसी स्थिति दुष्प्राप्य हो जाती है। विषमता के कारण एक ओर तो बिना श्रम के ही पेट भर जाता है और दूसरी ओर न श्रम ही मिलता है और न पेट ही भरता है। सर्वत्र बेकारी का नग्न दृश्य नजर आता है। निर्लज्ज व क्रूर मानव को इस दृश्य से कोई भी लज्जा नहीं होती। धनिक वर्ग तो निठल्ला होकर भोगों के प्रसाधनों से अपनी भोग-प्रधान व अतृप्त आत्मा को तृप्त करने

की कोशिश में कुछ हद तक सफल भी हो जाता है, लेकिन दरिद्र वर्ग के पास न तो भोग प्रसाधन ही रहते हैं और न पेट भरने वाला कोई महत्वपूर्ण श्रम ही। उस मानव की आत्मा इस निठल्लेपन, चित्त की क्षुब्धता, मानसिक पीड़ा व मन न लगने के कारण समय काटने के हेतु, क्षणिक ही सही, भोगों को पाने के लिए तड़प उठती है। स्वाभाविक ही है कि, ऐसी अर्धबेकार व अर्धभुखमरी की शिकार, शोषित तथा पिछड़ी हुई जातियों तथा देशों में, वर्तमान मशीन युग में, जनसंख्या की कृतिम व भयानक बाढ़ आवे। हम बता चुके हैं, जनसंख्या वृद्धि को रोकने का एक मात्र व सर्वोत्तम तरीका-- संयम ही है। फिर ऐसी कामनामय, अतृप्त, बेकार तथा पीड़ित सर्व-साधारण जनता में यदि संयम का सर्वथा अभाव हो, तो हमें इसके लिए पश्चाताप नहीं करना चाहिए। जनसंख्या को वृद्धि को रोकने का तब एक ही उपाय रह जाता है और वह है कृतिम संतति निरोध।

मध्यम श्रेणी का मानव वर्ग भी इस संसार में पाया जाता है। इस मध्यम श्रेणी के वर्ग में ही ज्यादा मशीनों का दुष्प्रभाव पड़ता है। वह निचली वर्ग श्रेणी की बनिस्बत मशीनों के भोग प्रसाधनों के बारे में ज्यादा जानता है। फलतः इसमें भोगों की प्राप्ति के हेतु कामना व अतृप्ति अत्यधिक होती है। मशीन की व्यवस्था के कारण इनमें भी बेकारी व सामर्थ्य-हीनता पाई जाती है। मनोवांछित वस्तुओं की प्राप्ति का कोई साधन व सुविधा भी इनके पास नहीं होती। यदि मशीनें न होतीं तो यही मध्यम श्रेणी वर्ग अपनी आकांक्षा की पूर्ति के हेतु कठोर से कठोर परिश्रम कर सकता था और फलतः वह अपनी कार्य सिद्धि भी कर सकता था। लेकिन मशीन युग में परवश होकर

वह अपनी तमाम कोशिश को जड़ मशीन पर ही जड़ता में विलीन हो जाने के लिए निछावर कर देता है।

भोगों की प्राप्ति के लिए आत्मा का तड़पते रहना कोई अच्छी बात नहीं है। ऐसे व्यक्ति में चिड़चिड़ापन, रूक्षता व असंयम का प्रादुर्भाव हो जाता है। मनुष्य सुख मार्ग के लिए लालायित रहता है, लेकिन उसके कार्य सिद्धि में अनेकों विघ्न आ जाते हैं। स्वभावत: वह क्रोधी व असहिष्णु भी हो जाता है। मनुष्य के लिए आशा बहुत बड़ी वस्तु होती है। लेकिन जड़ता के वातावरण में 'आशा' नाम की किसी वस्तु का सर्वथा लोप होता है। आशा के रहने पर मानव अपनी सहनशीलता, संयम व पुरुषार्थ का निरंतर विकास करता रहता है। लेकिन घोर परवशता के अंधकारमय वातावरण में उसे इधर-उधर टक्कर खाने व झल्ला उठने तथा निराशा के गर्त में गिर जाने की ही, आशा मात्र रह जाती है। मशीनों की व्यवस्था में समस्त आर्थिक शक्ति व सुविधा केवल थोड़े से व्यक्तियों को ही प्राप्त होती है। अधिकांश जन समुदाय इस मामले में पर-वश ही होता है।

अपने भोगों को जुटाने में मानव को बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। रास्ते में जाते समय मानो उसे ठोकर लगा करती है। वह झल्ला उठता है। क्रोध से काँपने लगता है। किसको पाए और पकड़ कर खा जाए? कैसे वह अपने रास्ते के काँटों को साफ कर दे? वह ठोकर मारकर, उस ठोकर के पत्थर को उखाड़ना चाहता है। काँटों को उखाड़ने के लिए वह खुद काँटों पर कूद पड़ता है। क्रोध के वशीभूत होकर वह अपना विवेक खो बैठता है। भोगों की सामग्री की दिन-दिन बढ़ती आवश्यकता की पूर्त्ति के लिए उसको अर्थ की

आवश्यकता पड़ती है। वह चोरी, जालसाजी तथा अनैतिक रूप से भी धन कमाने की कोशिश करने लग जाता है। इस प्रकार वह अपना चरित्र भी खो बैठता है।

अपनी बहुल आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, मशीनों की चाल का साथ देने के लिए, वह मानव लोभी हो जाता है। लोभ से वह अपनी सारी शक्तियों का हनन करता है। उसका अन्दरुनी आवेश, गम्भीरता, तथा वाष्पता नष्ट हो जाने के साथ ही वह अपनी स्थिति से गिर जाता है। सर्वत्र चोरी और भ्रष्टाचार ही व्याप्त हो जाता है। समाज में घोर असन्तोष का तब प्रादुर्भाव होता है। कोई व्यक्ति किसी भी अन्य व्यक्ति का विश्वास नहीं कर पाता। सच्ची, यानी शुद्ध वस्तुओं का तो सर्वथा लोप हो जाता है। मनुष्य का सामाजिक जीवन यातनामय और अस्त-व्यस्त हो जाता है।

दिन दिन मनुष्य भोगी और अधिकाधिक भोगी होता जायगा। दिन-दिन उसकी आवश्यकताएँ बढ़ती ही जायेंगी। साथ ही साथ वह अपनी स्थिति से भी गिरता जायगा। असंयमी स्त्री पुरुष दोनों ही संसार के भार को शीघ्रता से बढ़ाते जायेंगे। इतना बढ़ा देंगे कि, एक रोज खुद ही वे उस प्रवाह में बह जायेंगे। यदि इस प्रवाह को रोकने के लिए सन्तति निरोध रूपी कृतिम बाँध को बनाया जायगा, तो फिर स्त्री पुरुष पहले से भी अधिक उच्छृंखल होकर अपने को बर्बाद कर देंगे। ऐसी अवस्था में मनुष्य की अवरोधक शक्ति प्रायः समाप्त हो जायगी। केवल कुछ इने गिने आत्म-संयमी व्यक्ति ही उन्नति कर सकेंगे और समाज में प्रशंसा के पात्र होंगे। लेकिन इस घोर उच्छृंखलता, नष्ट हुए रीति रिवाजों तथा नैतिक पतन के कारण अधिकांश जन समुदाय ऐसा

नारकीय व घृणित तथा चरित्र-हीन जीवन व्यतीत करेगा, जिसमें उसके समस्त गुणों का हमेशा के लिए लोप हो जायगा !

१०

भारत का महत्व विशेष

पीटर महान् ने रूस में बहुत सी तबदीलियाँ की ।...पीटर का ध्यान हिन्दुस्तान की तरफ भी था और वह अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में हिन्दुस्तान के महत्व को समझता था। उसने अपने वसीयतनामें में लिखा है—"याद रखो कि हिन्दुस्तान का व्यापार सारी दुनिया का व्यापार है, और उसे मुट्ठी में जो रख सकता है, वही योरप का डिक्टेटर होगा।" (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ४८२ प्रथम खण्ड)

हिन्दुस्तान में एक दूसरी प्रवृत्ति यह देखी जाती है कि लोग पीछे देखना चाहते हैं, आगे नहीं। वे उस ऊँचाई की तरफ देखते हैं जिस पर कभी वे थे, उस ऊँचाई की तरफ नहीं जिस पर उनको आगे पहुँचना है। हमारे देश वासी गुजरे जमाने के लिए लम्बी-लम्बी साँसें लेत रहे और आगे बढ़ने की बजाय जो कोई भी आया उसका हुक्म मानते रहे। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ३९५ प्रथम खण्ड)

भारत का महत्व-विशेष इस माने में है कि, वर्तमान नवीन युग में मानवता का एक बड़ा हिस्सा खतरे में पड़ गया है। वर्तमान युग में सर्व प्रथम और सबसे ज्यादा मशीनों का वज्र-पात व गुलामी का सेहरा भारत के ३५ करोड़ नर-नारी ही पहनने वाले हैं। नवीन स्वतन्त्रता को प्राप्त कर वह अपनी तमाम शक्ति से, यहाँ तक कि शक्ति के बाहर भी, एक नए औद्योगिक विकास की ओर—नए सिद्धान्त व नई कार्य प्रणाली के साथ—अग्रसर हो रहा है। संसार में अपने इस नए प्रयोग से वह सभी अन्य देशों को एक सफलता या अस-फलता का नमूना पेश करना चाहता है। हम जानते हैं, मशीनों के उच्छृंखल प्रयोग का नमूना क्या होता है। हमें इस नमूने की कल्पना कर भीषण व्यग्रता व भय का अनुभव होता है। भारत का महत्व विशेष इसलिए भी है, क्योंकि वर्तमान अन्त-र्राष्ट्रीय राजनीति में भारत की आर्थिक सफलता या असफलता का समस्त विश्व पर गहरा प्रभाव पड़ने वाला है और संभव है केवल भारतवासियों के ही भाग्य निर्णय से समस्त संसार के मानव का भाग्य निर्णय हो जाय। भारत का महत्व विशेष इसलिए भी है, क्योंकि उसने इसी वर्तमान काल में ही एक ऐसा मानव उत्पन्न किया जिसने एक अलौकिक प्रकाश का दीपक संसार के घने अन्धकार में जला दिया। भारत की क्षमता पर ही यह निर्भर करता है कि, वह उस अद्वितीय आत्मा की आवाज को पहचान कर उसके प्रकाश से अपने घर में उजाला करने के साथ-साथ समस्त विश्व को भी प्रकाशित कर दे। आपको बतलाने की आवश्यकता नहीं, वह अद्वितीय आत्मा-महान् पुरुष 'महात्मा गाँधी' ही हैं।

भारत को हम भारतीय लघु-महाद्वीप (Indian sub-

Continent) के नाम से भी सम्बोधित कर सकते हैं। इस भारतीय लघु-महाद्वीप में भारत, पाकिस्तान, बर्मा, लंका व मलाया—इन सभी स्वतन्त्र राष्ट्रों के भूखण्डों का समावेश होता है। इन सभी देशों की अपनी आर्थिक समस्याएँ एक जैसी ही हैं और सभी देश औद्योगिक विकास यानी मशीनों के प्रयोग को ही प्रमुखता दे रहे हैं। इसलिए इन सभी देशों को एक ही नतीजा भी मिलने वाला है।

संसार की कुल जनसंख्या का १/५ हिस्सा भारतीय लघु-महाद्वीप में रहता है। यह जनता की बड़ी संख्या, विश्व की शक्ति व उसके गुटों के बलाबल में अपना विशेष स्थान व महत्व रखती है। हम नीचे दी हुई तालिका से यह स्पष्ट देख सकते हैं।

	देश	जनसंख्या
(१)	भारत	३५६,८९२,०००
	पाकिस्तान	७५,८४२,०००
	बर्मा	१८,६७४,०००
	लंका	७,७८९,०००
	मलाया फेडरेशन	४,८६७,४९१
		४६४,०६४,४९१
(२)	कनाडा	१४,००९,०००
	संयुक्त राज्य अमेरिका	१५६,६०२,०००
	पश्चिमी जर्मनी	४४,५००,०००
	इटली	४६,८०७,०००
	टर्की	२०,९३५,०००
	ब्रिटेन	५०,५४५,०००
	आस्ट्रेलिया	८,५३८,०००

	देश	जनसंख्या
	दक्षिणी कोरिया	२०,३००,०००
	जापान	८५,१००,०००
		४४७,३३६,०००
(३)	सोवियट रूस	१६३,०००,०००
	चीन	४६३,४६३,०००
	पोलैंड	२४,६७७,०००
	चेकोस्लाविया	१२,३४०,०००
	हंगरी	६,३६०,०००
	रूमानिया	१६,२००,०००
	बल्गेरिया	७,१६०,०००
	अल्बानिया	१,१७५,०००
	उत्तरी कोरिया	८,२२१,०००
	पूर्वी जर्मनी	१७,३००,०००
		७५३ २६४,०००
(४)	अन्य देशों	५०६,३३५,५०६
(५)	कुल संसार	२,१७४,०००,०००

'अन्य देशों' की करीब ५१ करोड़ जनसंख्या अपना विशेष महत्व रखती है। इसमें कई बड़े-बड़े भूखण्डों का भी समावेश है, जैसे सम्पूर्ण दक्षिणी अमेरिका महाद्वीप, अफ्रीका महाद्वीप, ईरान, अफगानिस्तान, मिश्र, जावा, सुमात्रा, स्याम, हिन्द-चीन तथा नारवे, स्वीडेन, स्पेन आदि। यह अन्य देश चाहे जिस गुट में शामिल हों अथवा चाहे उसमें से कुछ देश एक गुट का साथ दें और अन्य देश दूसरे गुट का; फिर भी सबसे

अन्त में भारतीय लघु-महाद्वीप की अपनी विशेष महत्ता रहेगी। यदि किसी कारणवश, जैसा कि असम्भव नहीं है, भारतीय लघु-महाद्वीप साम्यवादी गुट में शामिल हो गया तो, उसकी शक्ति एकदम से १२२ करोड़ के लगभग पहुँच जायगी। फिर ऐसी अवस्था में स्वतन्त्र प्रजातन्त्र के गुट के देशों की ४५ करोड़ जनसंख्या, छोटे छोटे अन्य देशों की ५१ करोड़ की जनसंख्या की मुखापेक्षी मात्र रह जायगी और साम्यवादी गुट से किसी भी प्रकार मुकाबला न कर सकेगी।

भारतीय लघु-महाद्वीप में भारत का, अपनी प्रमुख जन-संख्या के साथ, विशेष स्थान है। यदि भारतीय समस्या समुचित रूप से हल हो गई तो हम यह निःसन्देह आशा कर सकते हैं कि, भारतीय लघु-महाद्वीप की भी—हिमालय की छाया व उसके दोनों बाहुओं के अन्तर्गत—समस्त समस्याओं का हल हो जायगा। फिर समस्त भारतीय लघु-महाद्वीप एक क्रम से विकास की ओर अग्रसर होगा। समस्त संसार को तब यह नयी रोशनी, नया जीवन प्रवाह व अपना नवीन आर्थिक दृष्टि-कोण समझा सकेगा तथा उसमें आदर्श समाज व्यवस्था की बुनियाद भी कायम करने में समर्थ होगा।

भारत अपनी इस महत्व-विशेषता के साथ कदम बढ़ाता चला जा रहा है। वह कहाँ जा रहा है? समस्त विश्व उसकी ओर आँख उठा कर यही देख रहा है। संसार का सुख-दुःख, भय-अभय, तथा प्राणी मात्र का बन्धन व मोक्ष सभी कुछ भारत के भविष्य पर ही निर्भर करता है। हमें भारत की वर्त-मान अवस्था, थोड़ा उसके भूत, और उसकी वर्तमान नीति का भविष्य के ऊपर पड़ने वाले प्रभाव—इन सभी के बारे में सूक्ष्म अध्ययन कर लेना चाहिए। हमें यह भी सुझाव रखने

की आवश्यकता है कि, भारत किस प्रकार अपने जाज्वल्य-मान नक्षत्र महात्मा गांधी के प्रकाशमय उपदेशों का अनुसरण कर अपने को आदर्श व संसार की उद्धारक मंजिल पर पहुँचा सकता है।

'भारत का प्राचीन गौरव मय था'—यह हमें भारतीयों को इस समय याद दिलाने की आवश्यकता नहीं है। मोहन-जोदड़ों के काल की पृथ्वी के गर्भ में छिपी हुई मिश्र से भी ज्यादा महान् सभ्यता तथा उसके पीछे का महान् क्रम व लम्बा समय, भारत की प्राचीन महत्ता को अच्छी तरह प्रमाणित करते हैं। भारतीय गणतन्त्र की महत्ता (१५००–७०० ई० पू०), बुद्ध का प्रादुर्भाव (५६३–४८३ ई० पू०), चन्द्रगुप्त मौर्य (३२१ ई० पू०), अशोक महान् का काल (२७३ इ० पू०), गुप्त साम्राज्य (३२० ई०), अकबर कालीन मुगल-भारतीय महान् शक्ति, संगठन, व कला का विकास (१५५६–१६०५ ई०), तथा अभी निकट भूत की ही महान् ज्योति महात्मा गांधी यह सभी भारतीय महत्ता को चार-चाँद लगा देते हैं।

भारत शायद अपनी इस महान् परम्परा, अपने उत्थान व पतन का क्रम, तथा संगठन शक्ति अथवा आपसी फूट की दुर्बलता—इन सभी को अपनी अबाध गति से चलाता हुआ चलता जाता यदि उसे रास्ते में ही एक ऐसी विशेष घटना का सामना न करना पड़ता, जिसने उसकी समस्त क्रम-बद्धता तथा उसकी जीवनी शक्ति को बहुत बड़ा धक्का पहुँचाया। यह धक्का अन्य कुछ नहीं केवल भारतीय अर्थ-व्यवस्था में व्यापक हस्तक्षेप ही था, जिसने भारत की नौका को जर्जर कर डाला। भारत की आजीविका का साधन ही छिन जाना—यही सबसे बड़ा भारत का दुर्भाग्य था। भारत से नादिरशाह या मुहम्मद

गोरी की भाँति दौलत छीन ले जाना कुछ भी बुरा न था, भारत में मुगलों का आकर बस जाना और शासन सत्ता हस्तगत कर लेना भी बुरा न था, भारत में ब्रिटिश व्यापार भी बुरा न था। लेकिन यदि कुछ बुरा था, और वास्तव में बहुत बुरा था तो, वह भारत के गृह-उद्योग का नाश व भारत में उद्योगीकरण यानी मशीनों का प्रयोग ही था। भारत इसी बुराई की आज पुनरावृत्ति व उसमें विस्तार कर रहा है। उसे इस बुराई का भीषण प्रतिफल भी भोगना ही पड़ेगा। बहुत सम्भव है उसकी जर्जरित नौका ही, अपनी समस्त अद्वितीय सभ्यता व संस्कृति के साथ, संसार के विशाल घटना चक्र के सागर में सर्वदा के लिए विलीन हो जाय, और भारत में सर्वथा नवीन सभ्यता, संस्कृति व सामाजिक संगठन का प्रादुर्भाव हो—जो वर्तमान अथवा प्राचीन भारतीय गौरव की कभी भी उत्तराधिकारिणी होने की क्षमता न रख सके।

भारत की अर्थ-व्यवस्था में हस्तक्षेप सर्व-प्रथम ब्रिटिश शासन काल से ही प्रारम्भ हुआ। भारत में उस समय कल-कारखानें अथवा मशीनें न थीं। गृह उद्योग ही भारत की समृद्धि व सुदृढ़ता का प्रतीक था। गृह उद्योगों के मौजूद होने से ही भारत ऐसे समय में अपनी खाद्यान्न अवस्था में भी सुदृढ़ व स्वयं-पर्याप्त (Self-sufficient) था। सर्व प्रथम भारत की लूट अंग्रेजों ने मुगल कालीन लुटेरों की भाँति ही प्रारम्भ की। भारत ने इस लूट को भी बर्दाश्त किया, और भारतीय अपनी-अपनी कुटियों में लुक-छिपकर कुटीर उद्योग द्वारा फिर से अपने देश में व्यापक रूप से सम्पत्ति का निर्माण करने लगे। कितने ही करोड़ नर-नारियों के हाथ व पाँव निरन्तर अबाध गति से अपना महत्वपूर्ण कार्य करते हुए, वह

सभी लोग सु-दिन का इन्तजार कर रहे थे। भारत की अटूट जीवनी-शक्ति अभी शुद्धतम रूप में ही भारत के करोड़ों नर-नारियों में सम-विभाजित रूप से छिपी हुई अपना कार्य कर रही थी। भारत को अभी विशेष चिन्तित होने की कोई आवश्यकता न थी।

नेपोलियन ने कहा था...''बड़े बड़े साम्राज्य और जबर्दस्त परिवर्तन पूरब में ही हुए हैं, उस पूरब में जहाँ साठ करोड़ इन्सान रहते हैं। योरप तो एक छोटी सी टेकरी है। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ५४२ प्रथम खण्ड)

रमेश चन्द्र दत्त के शब्दों में—"(भारत में उन दिनों) बुनाई लोगों का राष्ट्रीय उद्योग या धन्धा था, और कताई लाखों स्त्रियों का शगल या पेशा था।'' (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ५६४ प्रथम खण्ड)

हिन्दुस्तान का कपड़े का उधोग इतना बढ़ा-चढ़ा था कि, इंगलैंड का तरक्की पर पहुँचा हुआ मशीन का कारबार भी उसका मुकाबला न कर सका और उसकी रक्षा करने के लिए हिन्दुस्तानी माल पर अस्सी फी सदी के करीब चुङ्गी लगानी पड़ी। शुरू उन्नीसवीं सदी में हिन्दुस्तान का कुछ रेशमी और सूती माल विलायत के बाजारों में, वहाँ के बने माल से बहुत सस्ते दामों में बिका करता था। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ५६५ प्रथम खण्ड)

रानी एलिजाबेथ के शासन काल में अर्थात् अपने निर्माण के समय यह ईस्ट इण्डिया कम्पनी सामुद्रिक व्यवसाइयों की एक संस्था मात्र थी। क्रमशः इन व्यापारियों को विवश होकर सेना रखनी पड़ी और जहाजों को शस्त्रास्त्र से सुसज्जित करना पड़ा। अन्त में वह समय भी आ गया जब धन का लोभी यह वणिक संघ परम्परागत् मसाले, रंग, चाय और जवाहरात ही नहीं वरन् राजकुमारों के राजस्व व रियासतों के

सौदे कर भारत का भाग्य-विधाता बन बैठा। ये लोग आए तो थे यहां क्रय विक्रय करने परंतु करने लगे लूट। और उनके कृत्यों को पूछने या टोकने वाला वहाँ कोई न था। ऐसी दशा में यदि उसके कप्तान, सेनाध्यक्ष और उच्च-कर्मचारी ही नहीं, वरन् क्षुद्र क्लर्क और साधारण सैनिक तक लूट के धन से मालामाल हो इंगलैंड को लौटें तो आश्चर्य क्या है? (संसार का संक्षिप्त इतिहास, ले० एच० जी० वैल्स, अनु० श्री मदन गोपाल, पृ० १२७ द्वितीय खण्ड)

पूर्व देशीय सूर्य-प्रकाश में रहने वाले गेहुँए रंग के असंख्य मनुष्यों की जीवन-समस्या को समझना अंग्रेजों के लिए अजीब कठिन कार्य था। अंत में लाचार होकर उनका मास्तिष्क ही उस कार्य योग्य न रहा। भारत उनके लिए एक आश्चर्य-कारी माया-जाल था। (संसार का संक्षिप्त इतिहास, ले० एच० जी० वैल्स, अनु० श्री मदन गोपाल, पृ० १२८ द्वितीय खण्ड)

खेती भारतवर्ष के लिए प्राणदायी धन्धा है। इतनी भयंकर लूट के जारी रहते हुए भी भारतवर्ष जो अभी तक जीवित रहा है, उसका कारण यही है कि, भोजन के मामले में अभी तक परावलम्बी नहीं बना है। परन्तु यह नहीं कह सकते कि, यह स्वावलबन भी अब खतरे में नही है। —महात्मा गांधी (गांधी विचार दोहन, ले० किशोर लाल घ० मशरुवाला, पृष्ट ११०)

भारत की वर्तमान आर्थिक और राजकीय नीति खेती के उद्योग को नष्ट कर रही है। उसके फल-स्वरुप खेती आज मुनाफे का धन्धा नहीं रह गई है।—महात्मा गांधी (गांधी विचार दोहन, ले० किशोर लाल घ० मशरुवाला, पृ० ११०)

अंग्रेज ठेकेदारों को इस हिन्दुस्तानी गृह उद्योग की मनहूसियत पसन्द न आई और न यह उनके हक में अच्छी ही थी। भारत का तैयारी माल, ढाँका की मलमल आदि अभी

भी इन ठेकेदारों को नुकसान पहुँचा रहे थे। अस्तु लगाम की रस्सी को कड़ा किया गया। भारतीय करघे बन्द कर दिए गए। राष्ट्रीय धन्धा तथा लाखों का पेशा व उनकी जीविका समाप्त हो गई। इङ्गलैंड से मशीनों द्वारा बनाए हुए सामान व कपड़े यहाँ आकर बिकने लगे। भारतवर्ष के अबतक के इतिहास में भारतीयों के ऊपर ऐसी विपत्ति आई, जैसी उन्होंने न कभी सुना था और न कभी अनुभव किया था। सोने की चिड़िया भारत एकदम दरिद्र हो गया। अन्नपूर्णा का भण्डार भारत बहुत शीघ्रता से अकाल का शिकार हो गया। लोगों ने कहा भारत लूटा जा रहा है और यही कारण है भारतीयों की दुरावस्था का। भारतीयों ने इस आवाज को सुना, उन्होंने अपनी दासता को उखाड़ फेकने का कृतसंकल्प किया। उन्हें सफलता भी अपने इस प्रयत्न में मिली। लेकिन वे अपनी दुरावस्था को दूर न कर सके। देश का पैसा यद्यपि अब देश में ही रहने लगा, लेकिन अब यहाँ पूँजीवादी व कारखानेदारी की प्रथा व्याप्त हुई। सम्पत्ति के अत्यधिक उत्पादन के प्रयत्न में भारत अपने यहाँ औद्योगिक क्रान्ति का प्रादुर्भाव कर अपनी ३५ करोड़ जनशक्ति का उपहास करने लगा।

ईस्ट इंडिया कंपनी ने ब्रिटिश उद्योगों के रास्ते में आने वाले हरेक हिन्दुस्तानी उद्योग को कस कर ठोकर लगाई। हिन्दुस्तान में जहाज बनाने का काम चौपट हो गया। धातु के कारीगर लुहार, आदि अपना कारोबार न चला सके। और काँच और कागज बनाने का धंधा भी धीरे धीरे चल बसा। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ५९६ प्रथम खण्ड)

ब्रिटिश माल खासकर कपड़े की इस फैलती और पसरती प्रगति ने हिंदुस्तान के हाथ के धन्धों का खून कर दिया। लेकिन इससे

भी ज्यादा खतरनाक एक और बात थी। उन लाखों कारीगरों का क्या हुआ जो बेकार बनाकर बाहर किए गए ? उन बहुसंख्यक जुलाहों और दूसरे कारीगरों का क्या हाल हुआ जो बेरोजगार हो गए थे ? इंगलैंड में भी जब बड़ी-बड़ी फैक्टरियाँ खुलीं तो दस्तकार बेकार हो गए थे। उनको सख्त मुसीबतों का सामना करना पड़ा। लेकिन उनको नई फैक्टरियों में काम मिल गया, और इस तरह उन्होंने अपने को नई परिस्थितियों के अनुकूल बना लिया। हिन्दुस्तान में उस तरह का कोई उपाय नहीं था। यहाँ काम करने के लिए कोई फैक्टरियाँ न थीं। अंग्रेज नहीं चाहते थे कि,हिन्दुस्तान एक आधुनिक औद्योगिक मुल्क बन जाए। इसलिए फैक्टरियों या कारखानों को प्रोत्साहन नहीं देते थे। इसलिए बेचारे गरीब, बेघर-बार, बे-रोजगार और भूखों मरते कारीगर को जमीन या खेती की शरण लेना पड़ी, किन्तु जमीन ने भी उनका स्वागत नहीं किया। पहले से ही काफी आदमी उस पर खेती का काम कर रहे थे, और इसलिए अब जमीन मिलना मुमकिन नहीं था। कुछ तबाह कारीगरों ने तो किसी तरह जमीन का काम प्राप्त कर लिया, लेकिन ज्यादातर को तो रोजगार की तलाश में बिना जमीन के मजदूर बन जाना पड़ा, और बहुत अधिक तादाद में तो लोग भूख से तड़प-तड़प कर मर ही गए होंगे। १८३४ में हिन्दुस्तान के अंग्रेज गवर्नर जेनरल ने यह रिपोर्ट की बतलाते हैं कि —"व्यापार के इतिहास में ऐसी तबाही का शायद ही कोई दूसरा उदाहरण मिले। सूती कपड़ा बुनने वाले जुलाहों की हड्डियों से हिन्दुस्तान के मैदानी पर सफेदी छा रही है, वे हड्डियों से भरे पड़े हैं।" (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरु, पृ० ५६७ प्रथम खण्ड)

खास उद्योगों के साथ साथ उनके बहुत से मददगार धन्धे भी गायब होने लगे। धुनाई, रंगाई, और छपाई कम-कम होती गई, हाथ की कताई बन्द हो गई और लाखों घरों से चरखा उठ गया। इस

तरह किसानों के घर वाले सूत कातकर जमीन से होने वाली आमदनी को बढ़ाने में जो मदद करते थे, वह सिलसिला मारा गया। जिसका अर्थ यह हुआ कि. किसान ऊपरी आमदनी से हाथ धो बैठे। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ५६८ प्रथम खण्ड)

इस तरह बे-रोजगार कारीगरों और दूसरे पेशेवरों की इतनी बड़ी संख्या को सहारा देने का भार बेचारी अकेली काश्तकारी के सिर पर आ पड़ा। जमीन पर भयानक बोझ पड़ गया और यह बराबर बढ़ता ही गया। हिन्दुस्तान की गरीबी की समस्या की यही बुनियाद और यही आधार है। हमारी बहुत सी मुसीबतें इसी नीति का नतीजा हैं। और जब तक यह बुनियादी सवाल हल नहीं हो जाता, हिन्दुस्तानी किसानों और गावों के रहने वालों की गरीबी और मुसीबतों का अन्त नहीं हो सकता। (विश्व इतिहास की झलक. ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ५६८ प्रथम खण्ड)

बहुत ज्यादा लोगों के पास खेतों के सिवा और कोई दूसरा पेशा न होने और जमीन के सहारे ही लटके होने के कारण उन्होंने अपने खेतों और अपने कब्जे की जमीनों को छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँट डाला। उसके सिवा गुजारे के लिए और जमीन थी ही नहीं। इस तरह जमीन का छोटा सा टुकड़ा, जो हर किसान के पल्ले पड़ा, इस कदर छोटा था कि, उससे उसका अच्छी तरह गुजर हो सकना भी मुश्किल था।
(विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहरलाल नेहरू, पृ० संख्या ५६८ प्रथम खण्ड)

परन्तु भू-माता के भण्डार से प्रतिवर्ष जो अन्न मिलता है, उसका परिणाम बराबर घट रहा है। बढ़ना तो दूर रहे, वह ज्यों का त्यों भी नहीं रह सकता। हर साल ही वह कुछ न कुछ ह्रास की ओर बढ़ता है। ह्रास क्यों न हो ? उसके कारण भी तो ऐसे वैसे नहीं हैं। जिस समय भारतवर्ष के ग्रामों में बसने वाली सारी जनता

की जीविका का आधार एकमात्र हल, बैल और खेत ही न थे, कम से कम एक तृतीयांश मनुष्यों की जीविका उद्योग-धन्धों तथा अन्य व्यवसायों से चलती थी। साथ ही आबादी और आवश्यकताएँ भी आज से कम थीं। उस समय बारी-बारी से गाँव के एक या दो ओर की भूमि जोती और परती छोड़ी जाती थी। इस प्रकार भूमि की उर्वरा शक्ति घटने नहीं पाती थी। एक दो साल के लिए परती छोड़ी हुई भूमि के अतिरिक्त हर एक गाँव में कुछ ऐसी भूमि भी रहती थी जो कभी न जोती जाती थी। जिसके कारण हर एक किसान को खूब गाय बैल रखने का सुभीता था और फलतः जिससे खाद की कमी नहीं होने पाती थी। परन्तु अब जब कि गावों में खेती और महाजनी ये दो ही रोजगार रह गए हैं, गाँव में रहने वाले प्रत्येक मनुष्य के लिए खेती करना अनिवार्य सा हो गया है। जिसका फल यह हुआ है कि, वहाँ परती भूमि का पता पाना तक कठिन हो गया है। पशुओं के चरने को कौन कहे, चलने तक की जगह नहीं रह गई है। किसान को अपनी अधिक खेत पाने की लालसा मेड़ों को छीलकर तृप्त करनी पड़ती है। (साम्यवाद, ले० बाबू रामचन्द्र वर्मा, पृ० ४५६, ४५७)।

जो खेत तीन साल में एक बार बोया जाता था वह अब एक साल में तीन बार बोया जाता है, और खाद तीन साल में एक बार नहीं पाता। भला ऐसे खेतों की उर्वरा शक्ति का दिवाला न निकले तो और क्या हो ?

(साम्यवाद, ले० बाबू रामचन्द्र वर्मा, पृ० ४५७)

उपर्युक्त कारणों से भारत के किसानों की कमाई घटते घटते उस सीमा तक पहुँच गई कि, यदि निश्चित अङ्कों में बताई जाय तो एकाएक किसी को उनकी सत्यता पर विश्वास न होगा। परन्तु जिन्हें मालूम है कि, भारत के १२ करोड़ मनुष्य सदा सर्वदा चौबीस घण्टे केवल एक बार भोजन पाते हैं और वह भी भरपेट नहीं, आधा पेट, वे कदाचित भारतीय कृषक की औसत सालाना आमदनी १०) रु० या ११) रु०

सुनकर चौकेंगे। ये १२ करोड़ अभागे कौन हैं? कृषक और अर्ध-कृषक जो खेती के अतिरिक्त समय समय पर मजदूरी भी किया करते हैं। मि० विलियम डिगवी अपनी पुस्तक में संयुक्त-प्रान्त के एक कृषक कुटुम्ब की साल भर की अमदनी ५½ एकड़ भूमि की खेती से खर्च बाद करके ४५=) बताते हैं। इटावे के भूतपूर्व कलक्टर मि० कुक एक दूसरे परिवार की ७ एकड़ की खेती से ४०) रु० की आमदनी बताते थे, जब कि केवल अन्न के लिए उसे ५०) की आवश्यकता होती थी। यह आय सुकाल की है। अकाल की कथा वर्णनातीत है।

(सम्यवाद ले० बाबू रामचन्द्र वर्मा, पृ० ४५७, ४५८)

यद्यपि आज से चार पाँच सौ या हजार बरस पहले के भारतीय कृषक के अस्तबल में वर्तमान काल के अमेरिकन कृषकों के अस्तबलों की तरह सवारी और शिकार के लिए अलग-अलग घोड़े और गाड़ी-खाने में दो-दो चार-चार मोटरें नहीं खड़ी रहती थीं, पर फिर भी सुख और सन्तोष उसके घर में सदा रहते थे। अन्न की वह दीवारें उठाता था। दूध घी का बेचना पाप समझता था, बिना ब्राह्मण को खिलाए भोजन नहीं करता था, अतिथियों से चार-चार महीनें तक न पूछता था कि, आपको कहाँ और कब जाना है। उसकी घर वालियां भिक्षुकों और भिक्षार्थी विद्यार्थियों की प्रतिक्षा में दरवाजे पर खड़ी रहा करती थीं। वह संसार में अपने आपको सबसे अधिक सुखी समझता था और बड़े गर्व से कहता था "उत्तम खेती मध्यम बान्, निकृष्ट सेवा भीख निदान"। उस सुख और सन्तोष की मूर्ति कृषक की किस बात से आजकल के कृषकों से तुलना की जाय, जो अतिथि को देखकर घर में चला जाता है, भिक्षुक को आते देख दरवाजा बन्द कर देता है। जिसके यहाँ एक समय भी किसी मेहमान् को पड़ोसी से कुछ उधार माँगे बिना भोजन नहीं कराया जा सकता जिसकी स्त्रियाँ अपनी सत्यनारायण व्रत को मन्नत अगले जन्म में पूरी करने के लिए साथ ले जाती हैं।

(साम्यवाद, ले० बाबू रामचन्द्र वर्मा, पृ० ४६३,४६४)

कृषि की उन्नति में भारतीय कृषकों की निरक्षरता उतनी बाधक नहीं है जितनी कि दरिद्रता। किसी कृषि कालेज का विशारद न होने पर भी भारतीय कृषक वंश परम्परा से कृषि कर्म करते आने के कारण यथेष्ट ज्ञान रखता है। पर वह उस निर्धनता को क्या करे जो कभी कभी उसे पुराने अत्यन्त घिसे हुए फाल तक को नहीं बदलने देती ? वह जानता बहुत कुछ है पर कर कुछ नहीं सकता। वह न अच्छे बैल रख सकता है, न हल, न मजदूर। (साम्यवाद, ले० बाबू रामचन्द्र वर्मा, पृ० ४६७)

मजदूरों को वह इतनी कम मजदूरी दे सकता है कि, केवल वही मजदूर उसको सहायता देना स्वीकार करता है, जिसको दूसरा काम नहीं मिल सकता। जो मजदूर ऋण या पारिवारादि के बन्धन के कारण अपना गाँव तक छोड़ने से लाचार हैं, केवल वही कृषि और कृषक का पल्ला पकड़े हुए हैं, शेष सब बड़े-बड़े, नगरों अथवा विदेशों को भाग गए हैं। (साम्यवाद, ले० बाबू रामचन्द्र वर्मा, पृ० ४६७)

नहरों से भी भारत के कृषकों का कोई उपकार नहीं हो रहा है। जिन-जिन जिलों में नहरें जारी हैं वहाँ हर तीसरे साल अकाल देव का दौरा तो नहीं होता पर नहरों के देवताओं की आराधना में कृषक के जितने धन और समय का नाश होता है, उसकी तुलना में यदि हर तीसरे साल अकाल का स्वागत करना पड़ता तो शायद उसे वह कम खलता। कितने गावों के कृषक नहर की झंझटों और उसके अधिकारियों के अत्याचार से तंग आकर पानी लेने से इन्कार कर देते हैं। इस पानी का मूल्य भी उन्हें इतना देना पड़ता है जिसको लगान का अनुज कहना किसी प्रकार अनुचित नहीं हो सकता।

(साम्यवाद, ले० बाबू रामचन्द्र वर्मा, पृ० ४६८)

हिन्दुस्तान की सबसे बड़ी समस्या है जमीन पर इतने ज्यादा लोगों का बोझा होना, जिनके पास खेती के सिवा और कोई धन्धा नहीं है। ज्यादातर यही वजह है कि, हिन्दुस्तान गरीब है। अगर ये लोग जमीन

से हटाकर रुपया पैदा करने के दूसरे पेशों में लगा दिए जा सके होते तो वे न सिर्फ देश की सम्पत्ति में वृद्धि ही करते, बल्कि जमीन का बोझा भी कम हो जाता और काश्तकारी भी चमक जाती। (विश्व इतिहास की झलक ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ५६६ प्रथम खण्ड)

यह मैं जरूर साफ कर देना चाहता हूँ कि, हिन्दुस्तान में जमीन पर दबाव या बोझा पड़ने का असली कारण खेती के सिवा दूसरे पेशों का अभाव होना है, न कि आबादी का बढ़ती होना। हिन्दुस्तान की मौजूदा आबादी के लिए शायद अच्छी तरह या आसानी से गुँजाइश हो सकती है और यह फल फूल भी सकती है, बशर्ते दूसरे पेशे और धन्धे खुले हुए हों। (विश्व इतिहास की झलक ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ६०० प्रथम खण्ड)

लेकिन हम इस खेती के ऊपर के अत्यधिक दबाव या बोझ को कम कैसे करें ? क्या हम मशीनों को मँगाकर, कल कारखाने खोलकर, अत्यधिक उत्पादन चाहते हुए उन कल कारखानों में इन किसानों को मजदूरी का काम दें ? हमने यह अच्छी तरह देख लिया है कि, मशीनों का प्रयोग करना कितना हानिकर है। मशीनों के प्रयोग के अर्थ ही यही होते हैं कि—मनुष्य के श्रम को छीनना। यदि जनशक्ति का अभाव हो तब तो मशीनों का प्रयोग करना समझ में आता है, लेकिन इतनी जनशक्ति के फालतू रहने पर भी मशीनों का उपयोग करना, यह तो समझ सकना बिल्कुल असम्भव है। नए-नए कल कारखानों में पहले अवश्य थोड़े से लोगों को मजदूरी मिल जाती है, लेकिन इसका अन्तिम नतीजा अच्छा नहीं होता। भारत जैसे घनी आबादी के देश में यदि कल-कारखानों में ही सभी बेकार व्यक्तियों को काम देने की कल्पना की जाय तो शायद सम्पूर्ण एशिया को कल-कारखानों से पाट कर ही ऐसा

किया जा सकता है ! हमें अभी अपने वर्तमान और भविष्य के विषय में विस्तारपूर्वक देखना बाकी है। हमें अपनी वर्तमान भीषण परिस्थियों तथा समस्याओं से सावधान हो जाना और शिक्षा ग्रहण करना चाहिए।

अब यह किसान वर्ग अपने गावों के बाजार के बजाय अन्तर्राष्ट्रीय बाजार के लिए खाना और कपड़ा तैयार करने लगा। वह अब सारी दुनियाँ के लिए पैदा करने और उसके अनुसार कीमतों के भँवर में पड़ गया और ज्यादा ज्यादा नीचे डूबता गया। पहले जमाने में हिन्दुस्तान में फसल बिगड़ जाने पर अकाल पड़ते थे और गुजारे का और कोई सहारा नहीं रहता था, और कोई ऐसे मौजूँ साधन भी नहीं थे कि, देश के एक भाग से दूसरे भाग को खाद्य सामग्री और अनाज वगैरह पहुँचाई जा सकती। वे अकाल खाद्य सामग्री के अकाल थे। लेकिन अब एक अजीब बात हुई। अब खाने को इफरात से मिल सकता था, लेकिन फिर भी लोग भूखों मर रहे थे। अगर उस जगह जहाँ अकाल हो और खाने पीने की चीजें न भी मिलती हो, तो रेल और ऐसी ही और दूसरी तेज सवारी के जरिए दूसरी जगहों से चीजें पहुँचाई जा सकती थीं। दूसरे खाद्य सामग्री तो मौजूद थी लेकिन उसे खरीदने के लिए पास में पैसा नहीं था। और इस तरह इस समय अकाल पैसे का था, भोजन की चीजों का नहीं। इससे भी ज्यादा अजीब बात यह थी कि, जैसा पिछले तीन वर्षों में हमने देखा है, कभी-कभी फसल का बहुत अच्छा और ज्यादा होना ही किसानों की तबाही का कारण बन जाता था।
(विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ६०२, ६०३ प्रथम खण्ड)

सचमुच ऐसे बहुत कम नजारे होंगे जो धसी हुई आखों और चमकती और निराश नजरों वाले हमारे किसानों से ज्यादा दर्दनाक हों। हमारे किसानों को इतने वर्षों से कितना बोझ उठाना पड़ रहा है, और

हमें यह बात भूल नहीं जाना चाहिये कि, हम जो थोड़े से खुशहाल पाए जाते हैं, उनके इस बोझ का एक हिस्सा बढ़ा कर ही हुए हैं। विदेशी और देशी हम सभी लोग इस अर्से से मुसीबत के मारे किसान को चूसते रहे हैं और उसकी पीठ पर सवारी गांठे बैठे हैं। ऐसी हालत में उसकी पीठ टूट जाय तो क्या आश्चर्य ? (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू पृ० ६१० प्रथम खण्ड)

आज ऐसे ग्रेजुएटों और दूसरे शिक्षितों का एक बड़ा समुदाय मिलेगा जिन्होंने यूनिवर्सिटियों में इतनी उम्र गुजारने के बाद भी कोई तिजारत या दस्तकारी नहीं सीखी। इनमें से लोग ज्यादातर कोई भी चीज बना या पैदा नहीं कर सकते। ये सिर्फ क्लर्क या सरकारी दफ्तरों में छोटे अहलकार या वकील ही हो सकते हैं। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ६२१ प्रथम खण्ड)

दरअसल यह प्रश्न व्ययक्तियों का नहीं सिस्टम या प्रणाली का है। हम एक विशाल मशीन के नीचे दबे रहे हैं, जिसने हिन्दुस्तान के लाखों करोड़ों को चूसा और कुचल डाला है। वह मशीन है औद्योगिक पूँजी-वाद से उत्पन्न नया साम्राज्यवाद। ... अगर कोई प्रणाली गलत है और हमें नुकसान पहुँचाती है तो उसे ही बदलना होगा। ... मेरे ख्याल से यही बात साम्राज्यवाद और पूँजीवाद की है। इनमें सुधार हो नहीं सकता। इनका एक मात्र असली सुधार है, इनका जड़ से खात्मा कर देना। (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० ६१२ प्रथम खण्ड)

औद्योगिक पूँजीवाद ने "नया साम्राज्यवाद" को जन्म दिया। लेकिन औद्योगिक पूँजीवाद को जन्म देने वाला कौन था ? हमें यह समझाने की जरूरत नहीं कि मशीनों के प्रयोग, और स्वतन्त्र उद्यम तथा व्यक्तिगत सम्पत्तिपर निजी अधिकार की प्रणाली के समन्वय से ही इसकी पैदाइश हुई थी। इसलिए

साम्राज्यवाद और पूँजीवाद को जड़ से समाप्त करने के लिए हमारे सामने दो ही रास्ते नजर आते हैं। एक तो मशीनों का बहिष्कार यानी यान्त्रिक मर्यादा और दूसरा स्वतन्त्र उद्यम और व्यक्तिगत अधिकार की प्रणाली का खात्मा। पहली स्थिति में हम कुटीर उद्योग की स्थापना को नजर में आते देखते हैं—जबकि दूसरी अवस्था में हम साम्यवाद की मंजिल पर पहुँच जाते हैं। हमें चुनना होगा हम इन दो रास्तों में से किसको चुनते हैं। इन दो रास्तों के सिवा और किसी भी तीसरे या मध्य के रास्ते का अस्तित्व होना नामुमकिन है। भारत इस द्विविधा के मझधार में फँसा हुआ आज किधर जा रहा है, हमे यही देखना है।

साम्राज्यवाद का खात्मा स्वतन्त्रता प्राप्त कर किया जा सकता है। पूँजीवाद का खात्मा साम्यवाद को प्रश्रय देकर किया जा सकता है! मशीनों का प्रयोग कर संपत्ति का अत्यधिक उत्पादन किया जा सकता है। और फिर हमारी समस्याओं का अन्त हो जायगा! भारत समृद्धिशाली होगा! भारतवासियों के मकान सोने की ईटों से बने हुए होंगे! लेकिन जब हम एक साथ दो नौका पर पैर रखकर चलते हैं तो हमारी स्थिति कितनी दयनीय हो जाती है! मशीनों के प्रयोग के साथ-साथ हम स्वतन्त्र आर्थिक व्यवस्था को भी प्रश्रय देते रहते हैं। इस प्रकार पूँजीवाद को समाप्त करने के फिराक में हम उल्टे उसी को प्रोत्साहन देते हैं। अंत में हमें लूट खसोट करनी पड़ती है। अमीरों या पूँजीपतियों के धन को किसी भी प्रकार छीनकर सरकार अपने हाथ में कर लेती है और उसे बड़े-बड़े कल कारखानों के निर्माण में व्यय करती है। पर हमने अपने इस सुधार के प्रयत्न में अपने पीड़ित व

जीवनदायी कृषक को कहाँ भुला दिया ? उसकी समस्या को हमने कैसे हल कर डाला ? पृथ्वी के अतिरिक्त बोझ को क्या हम अपने सुधारों से हल करने में समर्थ हुए ?

एक ओर तो हम धनिकों की खुली लूट कर, पूँजीवाद का विनाश कर, सर्वत्र देश में कंगाली का साम्राज्य स्थापित करते हैं और दूसरी ओर मशीनों से उत्पादन बढ़ाकर गृहउद्योगियों तथा बचे खुचे किसानों के सहायक धंधों का भी विनाश कर अधिकांश भारतवासियों की मुसीबतों का बढ़ाते हैं। व्यक्तिगत सम्पत्ति समझे जाने वाले कारखानें व फैक्टरियाँ, वर्तमान लूट-खसोट की नीति से तंग आकर अपने कारखानें बन्द कर देते हैं, जिसका स्वाभाविक नतीजा होता है कि, सरकार को इन सभी कारखानों व फैक्टरियों का राष्ट्रीयकरण करना पड़ता है। अस्तु, हम यह शीघ्र ही देखेंगे कि, पूंजीवाद के नाश के फिराक में समस्त निजी उद्यमों का विनाश कर, केवल राज्य ही समस्त आर्थिक नकेल व उत्पादन के साधनों को अपने हाथ में कर लेगा। ऐसी राज्य व अर्थव्यवस्था की प्रणाली साम्यवादी राज्य व अर्थव्यवस्था से तुलना करने योग्य हो जायगी। धीरे-धीरे अपनी बहुसंख्यक जनता को कोई भी काम या मजूरी न दे सकने के कारण तथा खेतों की घटती उपज, बँटती व छोटी होती हुई जमीन के टुकड़े के प्रादुर्भाव—की समस्या के खड़ी हो जाने के कारण, राज्य को खेती में भी दखल करना पड़ेगा। अन्त में समस्त भूमि पर राष्ट्रीय खेती करने में ही उसका निस्तार होगा। यानी राज्य फिर पूर्णत: साम्यवादी हो जायगा और उसका वर्तमान ढोंग उसे गलत रास्ते की मंजिल पर पहुँचने से रोक न सकेगा।

भारत की घनी आबादी को फिर काम करने के लिए क्या

बच रहेगा ? राज्य उसे खाने को देगो ही ! खाना खाने के बाद, निरुद्यमी होकर, वह शान्ति तथा आराम व भोग की असीम लालसा को तृप्त करेगी। साम्यवाद की भीषण अच्छाई समस्त मानव के लिए एक भीषण पतन का पैगाम लेकर आती है ! यह एक ऐसी महान् लौ का झोंका होता है जो दीपक के बुझने के ठीक पहले होता है। भारतवासी ही क्या, समस्त मानव जाति इस भीषण लौ के झोंके के बाद शीघ्र ही बुझ जायगी !

भारत आज जिस संकट-कालीन स्थिति से गुजर रहा है, वह अब छिपा नहीं रह गया है। सर्वसाधारण की कराह अब तेज और स्पष्ट होती जा रही है। भारत के अधिकांश लोगों का अस्तित्व आज खतरे में पड़ गया है और समस्त भारत-वासी अपने भविष्य को भयपूर्ण नेत्रों से देख रहे हैं। भारत-वासियों के मुख्य भय, चिन्ता, व कष्ट का विषय यही है कि, वह कौन सा काम करें जिससे उन्हें खाने भर को मिल जाय। भारत के करोड़ों निवासी आज उद्यम चाहते हैं जीविका निर्वाह का साधन चाहते है, लेकिन यह उनका अभाग्य ही होता है —कि सारे प्रयत्नों के बावजूद भी—उन्हें कुछ भी सफलता नहीं मिलती। भारत के सर्वसाधारण में आज यह शंका समा गई है कि, दूसरे दिन उसे खाने भर को रोजी मिल जायगी या नहीं। भारत के आकाश में व्यापक रुप से ऐसे आर्थिक संकट के बादल कभी भी आज तक नहीं छाए थे। यह बादल निरंतर घना ही होता चला जा रहा है।

भारत की इस भीषण संकट कालीन स्थिति का कारण क्या है ? वास्तव में यह भारतवासियों के ऊपर पड़ा हुआ आर्थिक संकट व भय किसी भी भयानक युद्ध की स्थिति से

कहीं ज्यादा बढ़-चढ़ कर है। युद्ध भूमि में, आवेश व देश प्रेम में, अपनी विजय के हेतु, लड़ते लड़ते मर जाना और समस्त देश के निवासियों को खाना बदोशों की भाँति हो जाना—यह किसी हद तक उचित व स्वाभाविक कहा जा सकता है। ऐसी संकट कालीन स्थिति का सामना करने के लिए जनता पहले से ही अपना आवश्यक प्रबन्ध कर लेती है। लेकिन यह वर्तमान आर्थिक संकट बिल्कुल नए प्रकार का व अत्यन्त ही सूक्ष्म आकार का है। यह अदृश्य रहकर धीरे-धीरे समस्त मानव को अपने चंगुल में फँसाता जा रहा है। भारतवासी आज नहीं जानते उनके इस आर्थिक भय व चिन्ता का मूल कारण क्या है। वे तो केवल इतना ही जानते हैं कि, पृथ्वी की भूमि गर्म होती जा रही है। उन्हें भय होने लगता है कि, कहीं वह बहुत ज्यादा गर्म न हो जाय कि, फिर वे छटपटाने लगें। सर्वसाधारण भारतवासियों की दरिद्रता बढ़ती जा रही है। उनकी क्रयशक्ति घटती जाती है। फटेहाल व आधापेट ही भोजन प्राप्त होने के कारण, वह आज प्रत्यक्ष कंगाली व भुखमरी का नमूना है।

उद्यम की कमी कोई बिमारी नहीं है जो कभी कभी फैल जाती है। यह कोई स्वाभाविक वस्तु नहीं है, जिसे मनुष्य को अवश्यम्भावी रूप से भोगना ही पड़े। भयानक महामारी की बिमारियों आदि से मानव परिचित होता बहुत काल से चला आया है। लेकिन यह वर्तमान भीषण अस्तित्व के खतरे का भय व चिन्ता का दुःख-दर्द न उसने अभी तक कभी अनुभव किया था और न सुना था। वास्तव में यह दुःख-दर्द अपने ढंग का निराला और अद्वितीय है, और यह एक ऐसा है जो सर्वसाधारण को तड़पा कर उसे लम्बे काल तक घुलाने के

बाद भी, अन्त में उसका पीछा नहीं छोड़ता। भारत के अधिकांश निवासी अपनी जीविका उपार्जन में निराश व हताश होकर उच्छृंखल होते जा रहे हैं। कठोर से कठोर परिश्रम, कम से कम पारिश्रमिक में करते हुए भी उन्हें काम-धन्धे की निरंतर कमी होती जा रही है। रोटी के लिए चील-झपट्टा विख्यात है। भारतवासी आज जीविका के लिए प्रतियोगिता रूपी भयानक चील-झपट्टा करने लग गए हैं।

भारत में पहले कताई राष्ट्रीय धंधा था। बुनाई करोड़ों की जीविका का साधन था। मिलों की बाढ़ ने उसे डुबा दिया। गृह-उद्यम के सहयोगी धन्धे बढ़ईगिरी, लुहारी इत्यादि भी साथ ही साथ समाप्त हो गए। अब बीड़ी बनाने वाले लाखों मजदूरों को थोड़ी सी मशीनें निकाल बाहर फेंक रही हैं। दाल बनाने वालों के रोजगार को दाल की मिलें लेती जा रही रही हैं। बैलगाड़ी चलाने वाले देश भर के कितने ही लाख हृष्ट-पुष्ट गाड़ीवानों को तेज मोटरें परास्त कर रही हैं। पढ़े-लिखे अनगिनत नौजवानों के पास न तो खेती है, न नौकरी। उनकी स्थिति अन्य सभी वर्गों से भी गई गुजरी कही जा सकती है। मानव के उद्यम के प्रत्येक अंग में मशीनों की बाढ़ ने उसे निठल्ला बना दिया है और निरंतर बनाती जा रही है। निठल्ले व्यक्ति को कोई आँख उठाकर देखता भी नहीं। उसके इस भयानक प्रश्न 'रोजी' को कोई भी नहीं सुनता। जिनके परिवार में आजतक के इतिहास में किसी ने भी भीख माँगने का निंदित कर्म नहीं किया, उन्हें भी अब बाध्य होकर भिखारियों की श्रेणी में सम्मिलित होना पड़ता है।

विशेषज्ञों का अनुमान है कि, भारत में लगभग १४ लाख भिखमंगे हैं, जिनमें आधे से अधिक शरीर से पुष्ट होने के बावजूद भिक्षा माँगने का कार्य करते हैं। (नवनीत, हिन्दी डाइजेस्ट, सितम्बर १९५३, पृ० ४५)

जापान का मजदूरों का बाजार पूरी तौर से भर चुका है और बहुत से विश्व-विद्यालय व कालेज के विद्यार्थी काम पाने में दिक्कत उठा रहे हैं।

नौजवान लोग आज, जैसा कि कितने ही पिछले वर्षों की भाँति, बराबर अपने गाँव को छोड़कर नौकरी की तलाश में शहरों की ओर चले जा रहे हैं, जिसमें उन्हें आमतौर से असफलता ही मिलती है।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चौथाई वर्षों में, जब जापान खेतिहर देश से औद्योगिक देश में बदल रहा था, औद्योगिक नये केन्द्र यथा टोकियो कोबे और ओसाका इन सभी ने हजार के भी सैकड़ों गुना नौजवानों को हर साल जज्ब कर लिया था। लेकिन इस जज्ब की अंतिम अवस्था कितने साल पूर्व ही पहुँच चुकी थी और आज इन भारी भरकम शहरों में नए नए लोगों के लिए कोई स्थान नहीं है। (Amrit Bazar Patrika, dated 11 Nov. 1953, P. 4.)

महाशय – प्रोफेसर एस एन. अग्रवाल का लेख जिसका शीर्षक "बेकारी की समस्या और सरकार का कर्तव्य" था मैंने ध्यान से पढ़ा है। ..

सरकार का नैतिक कर्तव्य जैसा कि हमारे विधान में भी रखा गया है "नागरिकों को पर्याप्त जीविका उपार्जन के साधनों को प्राप्त करने का अधिकार है', मुश्किल से पूरा किया गया है। मेरा स्वयं इस दृष्टिकोण से एक उदाहरण है। स्थानीय मिल से निकाला हुआ, एक काम करने वाला हूँ मैंने सरकार से नौकरी के लिए बिल्कुल असफल प्रार्थना की और न ही इम्पलायमेंट-एक्सचेंज ने कुछ किया जो कि लोगों को काम दिलाने में महत्त्वपूर्ण संस्था समझी जाती है।— मुझे बचाइए।— एस एम. बनर्जी, कानपुर—(Amrit Bazar Patrika, dated 26 Sept. 1953, P 4.)

बरेली—पिछले रविवार को बरेली के जंकशन यार्ड पर उन्नीस

सालें के एक रिक्शा चलाने वाले ने अपने को एक शंटिंग करती हुई गाड़ी के आगे फेंक कर आत्म हत्या कर ली।

ऐसा समझा जाता है कि, इस आत्म-हत्या का मतलब अपने परिवार की आम आवश्यकता पूर्ति के हेतु रकम को प्राप्त करने की अयोग्यता ही थी।

हाल ही में शहर में रिक्शा खींचने वालों की संख्या ३००० के करीब पहुँच गई है. जिसके फलस्वरूप सभी के आमदानी में उसी के अनुपात में घटती हुई है। (Amrit Bazar Patrika, dated 18 July. 1953, P. 3.)

भोपाल—राज्य के वित्त मन्त्री श्री कामता प्रसाद कल रात अपने घर पर एक ६० वर्षीय शरणार्थी सिन्धी वृद्ध के कपड़ों में आग लगा कर आत्महत्या करने से बचाने में स्वयं बुरी तरह जल कर आहत हुए। आपका चेहरा और दाहिना हाथ झुलस गया। शरणार्थी नाजुक दशा में अस्पताल पहुँचाया गया जहाँ उसकी स्थिति अभी खतरे से बाहर नहीं बतलाई गई है। मजिस्ट्रेट के सामने दिये गए अपने बयान में उसने बतलाया कहीं भी नौकरी न पा सकने और भूखों मरने की दशा से ऊब कर मैं सम्पूर्ण शरीर पर मिट्टी का तेल छिड़क पुनर्वास मन्त्री के घर गया उनसे भी बातचीत के अनन्तर दूसरा कोई चारा न रह जाने पर बेकारी और भुखमरी से छुटकारे के लिए मैंने उनके सामने ही अपने कपड़ों में आग लगा जीवन समाप्त कर देना चाहा।

('आज,' ता० ५ नवम्बर १९५३, पृ० १)

बम्बई—नौकरी की समस्या बम्बई शहर में, खासकर पढ़े लिखे युवकों व स्त्रियों की रीजनल डाइरेक्ट्रेट आफ रीसेटलमेंट एन्ड एम्प्लायमेंट के अफसरों के कहे मुताबिक बहुत ज्यादा खराब हो गई है।

छटनी, व्यापारिक गिराव, और फैक्टरियों के बन्द होने की अवस्था

से, उन्होंने कहा कि, महीने दर महीने बेकारी की हालत बिगड़ती जा रही है।

अब अवस्था उस सीमा तक पहुँच गई है, जब कि एम्प्लायमेंट ऐक्सचेन्ज बेकार युवकों व स्त्रियों के लिए कुछ भी कर सकने में बिलकुल असमर्थ हो गया है। (Amrit Bazar Patrika, dated 19 Aug. 1953.)

राजकोट—गोहिल वाड जिला के पटियाला स्थित डीपुरी कलक्टर के आफिस के सामने, अपने को रोजगार और भोजन पाने के लिए, जैसा कि खबर यहाँ आई है, दस बेकार व्यक्तियों ने भूख हड़ताल कर दी है। (Amrit Bazar Patrika, dated 5 Sep. 1953, P. 2.)

कलकत्ता में बेकारी

१,८६,७०० व्यक्ति काम खोज रहे हैं--

कलकत्ता अक्टूबर १०

कलकत्ता क्षेत्र के बेकारी की समस्या के हेतु किए गए शीघ्रता से निरीक्षण के परिणाम स्वरूप यह पता चला है कि, कलकत्ता की कुल आबादी २५,६६,७०० है। वहाँ पर १७,७७ २०० निवासी ऐसे हैं जिनकी अवस्था १६ वर्ष से ६० वर्ष के अन्दर है। बाकी अन्य की संख्या ७ ९२.५०० है। उपरोक्त वर्ग में ६२.६ प्रतिशत बंगाली हैं और ३७.४ प्रतिशत अन्य हैं। उनकी क्रमिक संख्या इस प्रकार है—११,१३,००० और ६४,२००। काम में लगे हुए बंगालियों की संख्या में जो ५०.८ प्रतिशत है, २,७३,७०० मध्यमवर्ग के हैं। बेकारों में जो कि काम खोजते हैं, कलकत्ता शहर में, जिनकी उम्र १६ और ६० के वर्ग की है—मध्यम श्रेणी के पुरुष जिनकी संख्या १,२६.२०० है, उनमें ६४,००० ऐसे हैं जो शारीरिक मजूरी करने की इच्छा रखते हैं।

(Amrit Bazar Patrika, dated 12 oct. 1953, P. 5)

मन्त्री महोदय की विचारधारा

मेरठ अगस्त २६

जहीवारा संगीत समाज, जो कि शहर की प्रमुख संस्था है, द्वारा आयोजित एक दो दिन के नृत्य व संगीत के प्रदर्शन में दर्शकों के सामने बोलते हुए उत्तर प्रदेश के यातायात मन्त्री श्री विचित्र नारायण शर्मा ने कहा कि, उन्होंने नागरिकों के इस महान् नृत्य व संगीत के विकास के लिए किए गए परिश्रम की सराहना की हैं, उनकी पहली विचारधारा उन दसों लाख अर्धपेट खाए हुए, अर्धनग्न अवस्था के अपने देश के निवासियों पर गया। उनकी यह चाहना थी कि, किसी भी अन्य वस्तु के ऊपर वह देश-वासियों के प्रफुल्लित चेहरे को देखना चाहते थे।

श्री शर्मा ने स्वदेशी का उपयोग करने के लिए जोर दिया, जिससे यह व्यापक देश की बेकारी दूर की जा सके।

(Amrit Bazar Patrika, dated 27 Aug. 1953, P. 8)

पूरी तौर से काम देने की समस्या अब आज की प्रमुख समस्या हम सभी के लिए हो गई है। हमलोगों को इसका बहुत ज्यादा क्षेत्रों में सामना करना है। लेकिन यह अब अधिकाधिक माना जा रहा है कि, इसको हस्तगत करने का मुख्य तरीका गाँव व कुटीर उद्योग के धन्धों के प्रोत्साहन देने में ही है। — श्री जवाहर लाल नेहरू (Amrit Bazar Patrika, dated 17 Sep. 1953., P 5)

पंच वर्षीय योजना भारतीत उन्नति की सर्वोत्तम लिखावट है।
नेहरू की गरीबी को निर्माणकारी कार्य से दूर करने की अपील

जालंधर, नवम्बर ६

प्रधान मन्त्री श्री जवाहर लाल नेहरू ने यहाँ कहा कि, पचवर्षीय योजना एक सर्वोत्तम लिखावट (blue print)—भारतीय उन्नति के लिए है। इसको कार्य रूप में परिणित करने के लिए सम्भवतः हम सभी

के लिए निरन्तर प्रयास की आवश्यकता होगी। (Amrit Bazar Patrika, dated 11 Nov. 1953, P. 1.)

पंचवर्षीय योजना के बारे में हम सभी जानते हैं, सिवा औद्योगिक विकास के यह अन्य कुछ नहीं है। प्रमुखतः कल कारखानों की बाढ़ मशीनों का उच्छृंखल प्रयोग, भारत की दुर्दशा के ही चिह्न स्वरूप होंगे। अजीब द्विविधा है। एक ओर कुटीर उद्योग पर महत्व दिया जाता है, वहीं मशीनों से अत्यधिक उत्पादन करने को कहा जाता है। कैसे कुटीर उद्योग इस मिल व कारखानें तथा मशीनों की प्रतियोगिता में ठहर सकता है ? कौन इस कुटीर उद्योग के घाटे के व्यापार को करेगा ? मशीनों की बढ़ती व विस्तार से हम भी उसी जापान के वर्तमान उदाहरण को पहुँच रहे हैं। हमारी समस्याएँ हल होने के बजाय बढ़ती जा रही हैं। क्या यही है पंचवर्षीय योजना की अनर्थकारी उपयोगिता ? हमें इस संकट-कालीन स्थिति में हाथ पर हाथ धर कर बैठ जाना चाहिए। अमेरिका के प्रारम्भिक इतिहास से शिक्षा लेना चाहिए। आँखों में पट्टी बाँध कर बिना किसी सहारे के दौड़ते जाने में बुद्धिमानी नहीं है। भारत की आगे आने वाली सन्तति, वर्तमान भारत के भाग्य निर्णायकों को कभी भी क्षमा नहीं करेगी।

महीनों के श्रम जनक दैव दुर्विपाकों, असफल प्रयत्नों तथा भेद की घनी घटाओं से घिरने और उत्साह के शिथिल होने पर भी उन्होंने संयुक्त राज्य को कभी एकता से विचलित न होने दिया। अपने ध्येय से वे कभी अणुमात्र भी विचिलित हुए हों, इसका कोई भी उल्लेख नहीं मिलता। किसी समय तो वे निवृत कार्य हो उग्र एवं दृढ़ निश्चय की मूर्तिवत् मूक निश्चल भाव से ह्वाइट हाउस में बैठ जाते थे, और कभी चित्त शान्ति के लिए आमोद-प्रमोद करने एव कहानियाँ कहने लग

जाते थे। (संसार का संक्षिप्त इतिहास, ले० एच० जी० वैल्स, अनु० श्री मदन गोपाल, पृ० १८७ द्वितीय खण्ड)

शासन और राष्ट्र तो अस्थाई वस्तु हैं, जो मानव-आवश्यकताओं की वृद्धि एवं उनके बदलने पर परिवर्तित हो सकते हैं, और यही होना भी चाहिए, क्योंकि इन राष्ट्र एवं शासन सत्ताओं की अपेक्षा में आर्थिक शक्तियाँ कहीं अधिक महत्वपूर्ण हैं। ये शक्तियाँ मानव जगत की स्वत्व-कल्पना (Ideas of property) एवं चेष्टाओं पर अवलम्बित हैं। .. मानव व्यापारों का रूप जन साधारण के मस्तिष्कगत् विचार-क्रमों के अनुसार ही होता है। अतएव इन विचार क्रमों के अशुद्ध निरूपण एवं अयथार्थ बोध को जड़ से उखाड़ देना ही सामाजिक एवं आर्थिक कष्टों के दूर करने का जीता जागता इलाज है। (संसार का संक्षिप्त इतिहास, ले० एच० जी० वैल्स, अनु० श्री मदन गोपाल, पृ० २२० द्वितीय खण्ड)

प्रथम-पंचवर्षीय योजना में कृषि विकास को सबसे ज्यादा महत्व दिया गया है। अभी तक के जितने भी समाचार प्राप्त हुए हैं उनसे यह मालूम होता है कि, इसके (योजना) दूसरे बार के प्रयोग में—यह सबसे ज्यादा महत्व औद्योगिक उत्पादन की ओर मोड़ दिया जायगा। इस निर्णय के पीछे जो कारण है उसे पता लगा लेना बहुत मुश्किल नहीं हो सकता है। यद्यपि हम लोग अभी तक खाद्य की कमी को बिल्कुल दूर कर देने में समर्थ नहीं हुए हैं, यह साफ जाहिर है कि, हम लोगों ने पासा पलट दिया है और यदि सभी हालात ठीक तौर से गुजरते रहे तो हम अगले कुछ वर्षों में स्वयं-पर्याप्त अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं। कृषि में विस्तार और अत्यधिक बढ़ाव का कार्य भी, ऐसा हिसाब लगाया गया है कि, केवल परिमित संख्या के आदमियों को ही काम देगी और किसी भी प्रकार हमारी समस्याओं की सिरताज—बेकारी को दूर करने में कोई भी वास्तविक सहायता प्रदान नहीं करेगी।

इसके अतिरिक्त इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि, प्लैनिंग कमीशन का, जो कि अब कहा जाता है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना का खाका खींचने में अपने ध्यान को लगा रही है, मुख्य ध्येय देश के औद्योगिक साधनों का तेजी से विकास और उनका अत्यधिक उपयोग ही हो जायगा। एक ऐजेन्सी की खबर के मुताबिक, कमीशन ऐसा अनुभव करता है कि, औद्योगिक विकास के अन्तर्गत यह सम्भव हो सकेगा कि प्रतिवर्ष पाँच लाख नए काम करने वालों को जगह दी जाए और इससे शुरुआत कर क्रमिक उन्नति से दस लाख के लक्ष्य को भी पहुँचा जाए। प्लैनिंग कमीशन प्रथम पंचवर्षीय योजना की सफल समाप्ति के बाद भी, देहाती क्षेत्रों की बेकारी को किसी प्रकार सन्तोषजनक रूप से दूर होना सम्भव नहीं देखता। यह भी एक समस्या की वस्तु है कि, क्या व्यापक बेकारी, दोनों शहरों व देहातों की, द्वितीय पंचावर्षीय योजना के भी बीत जाने पर किसी सन्तोषजनक हल को प्राप्त होगी?

ऐजेन्सी की खबर में गणना की गई उक्ति के आधार पर, द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत ४० लाख से ज्यादा लोगों को नए काम प्रदान नहीं किए जा सकेंगे। यदि प्रथम दो वर्षों में १० लाख व्यक्तियों को काम मिलता है (५ लाख प्रतिवर्ष) और ३० लाख लोगों को काम शेष काल में मिलता है, तो यह सूचना भी हम लोगों को कोई एक बहुत सन्तोषजनक फल प्रदान नहीं कर सकती है। भारत की बेकारी का प्रसार पूरी तौर से मालूम नहीं है, फिर भी यह हिसाब लगाया गया है कि, प्रत्येक वर्ष १५ लाख लड़के बालिग में परिवर्तित हो जाते हैं और काम माँगते हैं। यह मान कर कि, इस पाँच-साला अवकाश में कोई भी जनसंख्या में वृद्धि नहीं होती है, सरकार को ७५ लाख नौजवान आदमियों को काम देने की पुकार दी जायगी। वास्तव में वर्तमान अत्यधिक बढ़ती हुई आबादी की रफ्तार को ध्यान में रखा जाय तो काम खोजने वालों की संख्या ज्यादा ही होगी। इसमें हमें वर्तमान बेकारों को

बड़े अनुपात में जोड़ना पड़ेगा, जो कि अभी भी काम करने योग्य होंगे। अस्तु, यह मालूम होता है कि, अधिकारी गण द्वितीय पंचवर्षीय योजना के बाद भी, देश के बेकार नागरिकों में से किसी एक हिस्से से ज्यादा को काम प्रदान नहीं कर सकेंगे। भविष्य वास्तव में अन्धकार-पूर्ण व निरुत्साहित हो, किसी हद तक दिखाई देता है।

आयोजक गण किस प्रकार इस भविष्य की समस्या को दूर करते हैं? बेकारी की समस्या पर साथ ही साथ दो क्षेत्रों से धावा मारना है। तेज प्रोत्साहन और रक्षा—निजी उद्योगों को (Private industries) और उन उद्योगों को जिनका कि सम्मिलित (Co-operative) रूप से आयोजन होगा और जिनकी धन सम्बन्धी जरूरतें अधिक रूप से जनता के संगठनों द्वारा पूरी की जायंगी – प्रदान की जायेगी। दूसरे यह योजना, जैसा कि हम कह सकते हैं, देहाती उद्योगीकरण और कुटीर तथा छोटे पैमाने के धन्धों—जो कि उत्पादित कच्चे माल के सीधे सम्पर्क में रहते हैं – के विकास के लिए साधनों को प्रस्तुत करेगी। यह खबर का हिस्सा जिसकी हम देख रेख कर रहे हैं, यह साफ साफ हम पर नहीं प्रकाशित करता कि, इन दोनों में से किस गुट को ज्यादा महत्व प्रदान किया जायगा। प्रथम पंचवर्षीय योजना में तो बड़े पैमाने के औद्योगिक विकास के ऊपर ही ज्यादा महत्त्व दिया गया था। वास्तव में छोटे और कुटीर उद्योगों को बिल्कुल ही नहीं साथ साथ खींचा गया और ऐसे दस धन्धो को विकास के लिए चुना गया लेकिन सर्वसाधारण को ज्ञात है कि, किस प्रकार पिछले दो वर्षों में छोटे उधोगों को ध्यान नहीं दिया गया, जिसके फलस्वरूप उनका आम तौर से ह्रास हुआ और कई एक धन्धों का तो अन्त ही हो गया। हमारे औद्योगिक उत्पादन के दो पहलुओं में से किसको हम प्रमुखता देते हैं, यह मुख्य प्रश्न वास्तव में हमारे सामने नहीं है; बल्कि यह है कि इन दो में से कौन हमारी आबादी को ज्यादा काम प्रदान कर सकता है और आयोजकों की मंशा को पूरी

कर सकता है - इसको नजर में रखने की खबर मिली है। वास्तव में आगे आने वाला प्रयोग का भविष्य, साथ ही साथ राष्ट्र का भविष्य भी, स्वयं हमारे इस निर्णय पर निर्भर करता है कि, हम इस समस्या का क्या हल करते हैं !

अभी वर्तमान में करीब ३० लाख लोगों को बड़े उद्योगों में काम मिला है, जिसमें करीब १२०० करोड़ रुपये का मूल्य लगाया गया है। यदि इन क्षेत्रों में भी प्रसार व विकास, आयोजना के मुताबिक किया गया तो भी इससे ज्यादा आदमियों को काम में लगाने की माद्दा निश्चित रूप से परिमित ही होगी। सन् १९५० से १९५१ की अवधि में नई फैक्टरियों की स्थापना तथा पुरानी फैक्टरियों के प्रसार के कारण इन फैक्टरियों ने ६·८ लाख ज्यादा आदमियों को काम पर लगाया। यही एक सत्य घटना बेकारी की समस्या को हल करने की दृष्टि से — मशीनों की व्यवस्था के साथ, औद्योगिक क्षेत्र अपने मजदूरों को लेकर— कितनी संकुचित व परिमित है, यह साफ समझाता है। फिर इन उद्योगों में अधिक रुपये लगाने के लिए देश के 'सामुहिक रुपए से बचत' द्वारा पूर्ति करने की आशा की जाती है। वर्तमान अत्यधिक जीवन निर्वाह के स्तर के साथ और वर्तमान देहात की बेकारी और अर्ध-बेकारी, यह सभी वास्तव में एक बहुत बड़ा काम साबित होंगी। यदि बाहरी क्षेत्रों से पूँजी प्राप्त भी हो गई और मशीनों द्वारा उद्योग धन्धों का विकास भी आयोजना के मुताबिक पूरा कर लिया गया, तो उसके द्वारा उत्पादित माल अपने खरीददारों को कहाँ से प्राप्त होगा ? इसका नतीजा होगा कि, वर्तमान दयनीय स्थिति और अधिक मात्रा में खराब हो जायगी, साथ ही स्वभावतः अधिक बेकारी और दुःख कष्ट भी बढ़ जायेंगे। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के निर्देशकों के लिए, इस प्रकार सिर्फ यही रास्ता रह जाता है कि, वे छोटे व कुटीर उद्योग के धन्धों की उन्नति पर ही सबसे ज्यादा जोर दें जिसका कि हिसाब लगाने से, यदि इसका उचित रूप

से विकास हो तो, निकट भविष्य में ही हमारे लोगों में से ८० लाख व्यक्तियों को काम दिया जा सकता है और इसके साथ ही ये उद्योग भविष्य में विस्तार के लिए काफी माद्दा रखते हैं।... (Editorial, Amrit Bazar Patrika, dated 29 Oct. 1953, P. 4.)

महाशय—देश की बढ़ती हुई बेकारी की समस्या सरकार के लिए गम्भीर चिन्ता का विषय हो रही है। पंचवर्षीय योजना बार बार विस्तृत और परीक्षित की गई है। एक द्वितीय पंचवर्षीय योजना बेकारी की समस्या को दूर करने के लिए आ रही है। आचार्य जे. बी. कृपालानी ने हाल में ही यह विधान सभा में व्यक्त किया है कि "देश एक अजीब घटना को देख रहा है, जब कि योजनाएँ तो चालू ही चली जा रही हैं, बेकारी बढ़ती जा रही है।" यह सभी सत्य बातें यह बताती हैं कि, हमारी योजनाओं में कुछ मूल गड़बड़ी है।

एक सूक्ष्म विश्लेषण यह जाहिर कर देगा कि एक बेकार व्यक्ति वह है जिसके पास अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कोई धन नहीं है और उस उपयोगी धन्धे को चाहता है जिससे उसे धन की प्राप्ति हो। लेकिन एक व्यक्ति, जिसके पास अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए काफी धन है, चाहे वह कोई भी काम न करता हो, उसे हम बेकार नहीं पुकारते। (!) इसलिए प्राथमिक वस्तु यह है कि, मनुष्य की आवश्यकता पूर्ति की जाय, और गरीबी इन आवश्यकताओं की न पूर्ति होने के कारण ही होती है। धन ही एक मात्र ऐसा साधन है, जो कि आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है।

मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए परिश्रम करता है, लेकिन वर्तमान औद्योगिक प्रणाली का मूल आधार ही निरन्तर बढ़ती हुई आदमियों की जरूरी आवश्यकताएँ हैं। (कोई भी अर्थ-शास्त्री यह बात तुरन्त स्वीकार कर लेगा।) इस प्रकार यह औद्योगिक प्रणाली आदमियों के हितों के विरुद्ध ही काम करती है, जो कि व्यवहारिक रूप

से हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दृष्टिगोचर होती है, और बढ़ती हुई गरीबी और बेकारी के लिए मुख्यतः जिम्मेदार है। खाद्य शरीर निर्वाह के लिए आवश्यक वस्तु है, और जो व्यक्ति इस आवश्यक वस्तु को भी नहीं खरीद सकता, वही गरीब आदमी है।

यही वास्तव में सबसे ज्यादा अभाग्य की बात होगी कि, हमारे आयोजक-गण अपनी आयोजना में औद्योगिक प्रणाली के इस मूल तत्व को बिल्कुल ध्यान न दें। पश्चिमीय आथिक पद्धति ही आवश्यकताओं की स्थापना तथा मानव की समस्याओं (Creation of wants and problem for mankind) के सिद्धान्त पर आरुढ़ है। हमारे आयोजक-गण देश में समृद्धि, एक ऐसे आर्थिक और औद्योगिक प्रणाली द्वारा लाने की मंशा रखते हैं, जिसका मूल सिद्धान्त ही गरीबी का निर्माण करना होता है। गरीबी और समुन्नति की सड़कें एक दूसरे की विरुद्ध दशा में जाती हैं और एक ऐसे रास्ते से जाना, जो कि गरीबी की ओर ही ले चलता है, हमें कभी भी समुन्नति के मंजिल पर नहीं पहुँचा सकता।

यह आर्थिक व्यवस्था जो कि लाभ और अधिक से अधिक उत्पादन पर आधारित है, दूसरे बाजू के हालातों को भुला देता है—यानी वितरण को। उत्पादन, बिना वितरण के कोई माने नहीं रखता। इसको निश्चय ही एक तरफ तो अत्यधिक माल को प्राप्त करना चाहिए, कि उसको कोई भी खरीदने वाला न हो, और दूसरी तरफ भुखमरी के शिकार, अर्धनग्न अवस्था के दसों लाख ऐसे व्यक्ति होने चाहिए जिनकी क्रय शक्ति बिल्कुल न हो। यह अर्थ-प्रणाली की व्यवस्था तो संसार के सबसे धनी देश संयुक्त राज्य अमेरिका को भी माफिक नहीं होती, जहाँ पर बहुत ज्यादा संख्या में लोग दुःख-पूर्ण व भीख माँग कर गुजर करते हैं। और वर्तमान में संयुक्त-राज्य-अमेरिका के पास आवश्यकता से

भी अधिक खाद्य सामग्री, बाजार मूल्यांकन के अनुसार ३०० करोड़ डालर का पड़ा है।

अपने विकसित दिनों में, भारत की अर्थ व्यवस्था समुन्नति के मूल तत्व पर आधारित थी अर्थात् मानव की आवश्यकता पूर्ति पर ही। और वह समुन्नति फिर से हमारी कभी नहीं हो सकती, जब कि हम उसके विनाश के लिए ही आयोजन व कार्य करें। आचार्य विनोबा भावे के शब्दों में—परिस्थितियाँ हमारे शासकों को यह मूल सत्य मानने के लिए बहुत शीघ्र ही मजबूर करेंगी। सम्भवतः विस्तृत अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी यह बिगड़ती हुई आर्थिक स्थिति लोगों को आधुनिक आर्थिक दृढ़ मतों (Theories) को छोड़ने के लिए विवश कर देंगी, और उनको शान्ति तथा समुन्नति के मूल आयोजनाओं में 'आवश्यकता की पूर्ति' के लिए स्थान देना जरूरी हो जायगा। (M. R. Agrawal, B. Sc., (Eng.) A. M. I. E. (Ind.), Banaras Hindu University—Amrit Bazar Patrika, dated 6 Nov. 1953, P. 4,)

हमें भारत की इस क्रमानुगत बिगड़ती हुई आर्थिक अवस्था, बेकारी और दरिद्रता का ज्यादा प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं। यदि भारत वास्तव में मशीन के प्रेम को नहीं छोड़ सकता तो उसे कम से कम शीघ्रातिशीघ्र साम्यवादी सिद्धान्त को अपना कर अपनी स्थिति सुधारने का प्रयत्न करना चाहिए! मानव की यह वर्तमान कराह अधिक देख सकना किसी भी हृदय वाले व्यक्ति के लिए अब नामुमकिन होता जा रहा है। साम्यवाद में कम से कम खाने पहनने को तो प्राप्त हो जायगा! वर्तमान मानव साम्यवाद की प्रस्तुत सेवाओं व उसकी उद्धारक प्रेरणा का सदैव कृतज्ञ रहेगा। आज का पीड़ित मानव रोमांचित व गद्गद् तथा प्रेमाश्रुपूर्ण नेत्रों के साथ,

साम्यवाद की चरण धूलि अपने मस्तक पर रख लेने को आतुर हो रहा है! हम सभी को इस शुभ कृत्य में सहयोग प्रदान करना चाहिए! हमारे असीम दुःख दर्दों का ईलाज होना अनिवार्य सा हो गया है। हम एक बार इस ईलाज की यातनाओं को भी सहन करने के लिए तैयार हैं!

— —

११

महात्मा गांधी के आर्थिक सिद्धान्त

जब कि मैं जानता हूँ कि, हमारा यह शरीर भी एक अतिशय नाजुक यन्त्र है। खुद चरखा भी तो एक यन्त्र ही है। छोटी सी दांत कुतरनी भी एक यन्त्र है। मेरा विरोध यन्त्रों से नहीं यन्त्रों के पागलपन से है। आज तो जनता में उन यन्त्रों का एक पागलपन सवार हो रहा है जिन्हे श्रम की बचत करने वाला बताया जाता है। हाँ उनसे श्रम की बचत तो होती है, पर उनके कारण लाखों आदमियों की रोजी छिन रही है, और वे राह के भिखारी बनकर घूम रहे हैं। मैं भी तो समय और श्रम का बचाव चाहता हूँ। पर अमुक वर्ग का ही नहीं, समस्त मानव जाति के श्रम और समय की बचत होनी चाहिए। मैं नहीं चाहता कि, इने गिने लोगों के पास सम्पत्ति का सञ्चय हो जाय। मैं चाहता हूँ कि, वह सबके पास हो। आज तो ये यन्त्र मुट्ठीभर आदमियों को करोड़ों के कन्धों पर

सवार कराने में मददगार हो रहे हैं। आज यन्त्रों के उपयोग में प्रेरक कारण श्रम की बचत नहीं, धन का लालच है। आज की इस अर्थ व्यवस्था के खिलाफ मैं अपनी सारी ताकत लगाकर लड़ रहा हूँ।

—महात्मा गांधी (यन्त्रों की मर्यादा, पृ० ७, ८)

संसार के मानव निवासी जब-जब मोहान्धकार में फँस कर अपने विनाश की ओर अग्रसर होते थे, जब कभी मानव घोर पिशाचिता, क्रूरता तथा उद्दंडता पर उतर आता था, जब भी कभी वह स्वयं अपनी कब्र अपने ही हाथों से खोदने लगता था—ठीक ऐसे ही समय में किसी न किसी ऐसी ज्योति का प्रादुर्भाव सदा और सर्वदा से होता चला आया है, जिनकी महान् अनुकम्पा व ज्योति से मानव जाति अबाध गति से चलती चली जाने में समर्थ हुई है। महात्मा गांधी भी वर्तमान युग की एक ऐसी ही महान् ज्योति थे। निस्सन्देह यह एक कठोर सत्य है कि, जहाँ ज्योति जगमगा रही होगी वहाँ अन्धकार रह ही नहीं सकता, और यही बात महात्मा गान्धी के सत्य व अनुभवसिद्ध सिद्धान्तों के बारे में भी लागू होती है। जब तक महात्मा गान्धी के आदर्श सिद्धान्त इस संसार में रहेंगे, तब तक हताश व हारा हुआ मानव उनकी शरण में निरन्तर आता रहेगा। जब संसार में कहीं भी प्रकाश न रह जायगा, घोर अन्धकार में जब मानव भटकता हुआ फिर रहा होगा, तब उसे दूर पर इस टिमटिमाते दीपक की रोशनी अवश्य दिखाई देगी। इस दीपक के अवशेष से ही समस्त संसार में एक बार फिर से उजाला किया जा सकेगा। हमें महात्मा गांधी के आदर्श (आर्थिक) सिद्धान्तों को एक नजर अवश्य देख रखना चाहिए। शायद किसी समय काम आ जाए।

हम जो कुछ भी करें उसमें सबसे प्रधान चीज हो मानव जाति का

हित। काम के अभाव में मनुष्य के अंग हाथ-पाँव वगैरह कहीं जड़ और निकम्मे न बन जाएँ—यन्त्रों के उपयोग में इस बात का खूब ध्यान रहे।

—महात्मा गांधी (यन्त्रों की मर्यादा, पृ० ८)

मानवता का पुजारी महात्मा गांधी, मानव की भलाई के लिए अपने जीवन भर कार्य-रत रहा। कभी वह मानव की दुर्दशा व उसकी दयनीय स्थिति को देखकर रो बैठता अथवा तड़प उठता था। अपने इस महान् शुभचिन्तक को मानव भले ही भुला दे, लेकिन उसका शुभचिन्तक उसे कैसे भुला सकता था ? यही कारण था उसने मान-अपमान, यश-अपयश, लाभ और हानि इन सभी को परवाह न कर, अपनी आत्मा की आवाज को बुलन्द करता हुआ, मानव की भलाई के हेतु ही अपने प्राणों की आहुति दे दी। उसे जो सही मालूम होता था, उसे निर्भय होकर व्यक्त कर देता था। अन्याय के खिलाफ वह अपनी तमाम नैतिक शक्ति के साथ उतर आता था। जनता के दुःख दर्दों में वह भी कूद पड़ता था। मानव में उसने ऐसी ताकत भर देने वाली युक्तियों का प्रादुर्भाव किया था, जिसका सामना संसार की कोई ताकत न कर सकती थी। कायरता के स्थान पर साहस, असत्य के स्थान पर सत्य, हिंसा के बीच अहिंसा, अन्याय का प्रतिशोध 'सत्याग्रह,' जीवन के मोह के स्थान पर त्याग—इन सभी द्वारा महात्मा गांधी ने मानव में एक ऐसी नैतिकता, ओज व तेजस्विता भर देने की कोशिश की, जिसके सामने एक बारगी समस्त मानव जाति अग्नि सदृश भभक उठे और उसकी तमाम बुराइयों का उसमें सदा के लिए अन्त हो जाय। भारतवासियों की गुलाम व कायर प्रवृत्तियों को साहस व शक्तियों में बदल देने में वह

महात्मा गांधी ही प्रमुख रुप से सहायक रहा। वह स्वयं एक ऐसी शक्ति का स्तम्भ था, जिससे टकराकर बड़ी-बड़ी हस्तियों का विनाश हो गया। स्वतन्त्र भारत आज उस ज्योति को राष्ट्र-पिता के नाम से सम्बोधित करता है और उसकी समाधि पर श्रद्धा के फूल चढ़ाता है।

मुझे जिस बात पर सन्ताप होता है वह तो यह कि, १६०० मील लम्बे १५०० मील चौड़े इस भारत खण्ड के हजारों परिवारों की, जीवन डोर के समान इस 'गृह उद्योग' का निरंकुशता और धृष्टतापूर्वक नाश किया गया।

—महात्मा गांधी (यंत्रों की मर्यादा, पृ० १०)

इस प्रकार मेरी योजनानुसार यंत्रों के मालिक केवल, अपना या देश का ही विचार न करें। उन्हें समस्त मानव जाति के हिता-हितों का विचार करना होगा। लंका-शायर के लोग हिंदुस्तान और दूसरे देशों का शोषण करने की दृष्टि से अपने यंत्रों का उपयोग करना ही केवल नहीं रोकेंगे बल्कि वे इस उद्योग में लग जावेंगे कि, हिन्दुस्तान के लोग अपने खेतों में उत्पन्न होने वाली कपास से अपने गाँव में ही किस प्रकार सुन्दर वस्त्र बनावें—ऐसे साधनों को ढूँढ़ निकालेंगे। इसी प्रकार अमेरिका निवासी भी अगर अपनी शोषक बुद्धि का उपयोग दुनियाँ के अन्य राष्ट्रों के प्रजाजनों का शोषण करके अपनी तिजोरियाँ भरने में लगे हुए हैं, तो मेरी योजना-नुसार उन्हें यह बन्द करना होगा।

—महात्मा गांधी (यन्त्रों की मर्यादा, पृ० १२)

कल कारखानों ने योरप को उजाड़ना शुरू कर दिया है और अब उसकी हवा हिन्दुस्तान में भी बह रही है। कलें (मशीनरी) आधुनिक सभ्यता की खास निशानी हैं और मुझे तो साफ दिखलाई दे रहा है कि, यह महा पाप है। —महात्मा गांधी (यन्त्रों की मर्यादा, पृ० १)

सच तो यह है कि, मशीनों की अच्छाई तो मुझे एक भी याद नहीं पड़ती, जब कि उनकी बुराई का तो पोथा ही तैयार हो जायगा।

— महात्मा गांधी (यन्त्रों की मर्यादा, पृ० ५)

महात्मा गांधी ने आर्थिक आजादी को ही राजनैतिक आजादी के रूप में देखा था। आर्थिक आजादी को वह गृह-उद्योगों अथवा कुटीर उद्योगों से ही प्राप्त होना संभव मानते थे। उनका विश्वास था कि, यदि मनुष्य सभी जरूरतें अपने से और आपस में ही पूरी कर ले, और किसी अन्य शक्ति का मुखापेक्षी न रह जाय, तो फिर मनुष्य गुलाम नहीं रह सकता—वह स्वतन्त्र हो जाता है। ऐसे स्वावलम्बी मनुष्य, समाज अथवा भूखण्ड विशेष यानी देश को—कोई भी बाह्य शक्ति गुलाम बनाकर नहीं टिकी रह सकती। महात्मा गान्धी स्वयं भारतवासी होने के नाते, साथ ही भारत की समस्त संसार में अपनी विशेष स्थिति के कारण, उनका ध्यान भारत की समस्याओं पर विशेष रूप से आकृष्ट हुआ गुलाम भारतवासियों को उन्होंने गृह-उद्योगों का फिर से पाठ पढ़ाया। चरखा व खादी की फिर से उन्होंने प्रारम्भिक स्थापना की। उन्होंने साफ देखा था, वर्तमान मशीनों के कारण ही साम्राज्यवाद तथा साम्यवाद का भी जन्म हुआ है उन्होंने यह भी साफ देखा था कि, मशीनों के उच्छृंखल प्रयोग से मनुष्य बेकार होकर नाशोन्मुख हो रहा है। भारतवासियों को, साथ ही साथ समस्त संसार को भी इसीलिए उन्होंने चेतावनी दी थी और उन्हें इस बुराई से बचने की प्रार्थना की थी।

दुनियाँ में एक भी ऐसा दूसरा देश नहीं है जहाँ इस प्रकार करोड़ों मनुष्यों को रोजी नहीं मिल रही है। जिसकी आबादी का इतना बड़ा हिस्सा गाँवों में ही बस रहा हो, जहाँ की संस्कृति ग्रामीण होने पर भी

उनके पास मुश्किल से भी फी आदमी दो एकड़ जमीन की औसत भी न पड़ती हो। ऐसी स्थिति में देश के लिए जरूरी कपड़ा–भाप या बिजली से, मनुष्यों को छोड़कर अन्य किसी शक्ति की सहायता से पैदा किया जाय तो उसका परिणाम यही होगा कि, लोग और भी अधिक बेकार होंगे, अर्थात् हिन्दुस्तान में बड़े पैमाने पर भाप या बिजली की सहायता से चलने वाले उद्योग खड़े हो जायें तो उसका सीधा मतलब यही होगा कि इस देश के करोड़ों लोगों को मर जाना चाहिए।

—महात्मा गांधी (यन्त्रों की मर्यादा, पृ० १५)

"जर्मनी में कितने ही उद्योगों में बढ़ती बेकारी को रोकने के लिए नाजियों ने इस आशय का एक हुक्म जारी किया कि, यन्त्रों के प्रयोग से अगर आदमी बेकार हो रहे हों तो ऐसे यन्त्रों को बन्द कर देना चाहिए।" जर्मनी में तलवार के जोर पर ग्रामीण उद्योगों को जिलाया जा रहा है। उसका इस बात से कोई ताल्लुक नहीं है यहाँ तो असल बात यह है कि, जिस देश ने भारी से भारी यन्त्र कौशल बताया है और यन्त्र कौशल में जो देश सबसे आगे बढ़ा हुआ माना जाता है, वह भी भयंकर बेकारी के सवाल को हल करने के लिए पुनः ग्रामोद्योग का आश्रय ले रहा है।—महात्मा गांधी (यन्त्रों की मर्यादा, पृ० १५, १६)

...कातने और बुनने वाली मिलों ने गावों के लोगों की आजिविका का एक बहुत बड़ा साधन छीन लिया है। मिलें अगर अधिक अच्छा और सस्ता कपड़ा भी तैयार करती हों तो भी उपर्युक्त दलील को काट नहीं सकतीं क्योंकि अगर मिलें हजारों आदमियों की रोजी छीन कर उन्हें बेकार बना दिया है तो मिल का बना सस्ता से सस्ता कपड़ा गावों की कती-बुनी महँगी से महँगी खादी से मँहगा ही है।

—महात्मा गांधी (यन्त्रों की मर्यादा, पृ० १७)

यन्त्र युग जो चाहे करे, परन्तु यन्त्रों के एक साथ और व्यापक

प्रवेश से जो करोड़ों मनुष्य अनिवार्य रूप से बेकार हो जाने वाले हैं, उन्हें वे कभी रोजी नहीं दे सकेंगे।

—महात्मा गांधी (यन्त्रों की मर्यादा, पृ० १८)

पैंतीस करोड़ के देश में बड़े (पैमाने पर) यन्त्रों का व्यवहार करने का विचार करना क्रूरता-पाप है। हर आदमी यन्त्र है, केवल उसमें तेल डालकर उसे चलता हुआ रखने की जरूरत है। यही तो मेरा सारा प्रयत्न है। —महात्मा गांधी (यन्त्रों की मर्यादा, पृ० १८)

महात्मा गांधी ने सम्पत्ति के अत्यधिक उत्पादन करने के इच्छुकों की तीव्र निन्दा की थी। मशीनों द्वारा सम्पत्ति का अत्यधिक उत्पादन उन्हें मूर्खतापूर्ण ही लगता था। उनका ऐसा विचार केवल अनुमान पर ही आधारित नहीं था। इसके पक्ष में उनके पास अकाट्य प्रमाण व ठोस दलीलें भी थीं। उनका कहना यह सत्य ही था कि, सस्तापन का अर्थ यह नहीं होता कि, सभी मनुष्यों की आवश्यकताएँ पूर्ण हो जाती हैं, और लोग पहले से ज्यादा चीजें उपयोग करने में समर्थ हो जाते हैं। मशीनों द्वारा सस्तेपन का लाभ यदि किसी को होता है तो केवल थोड़े से पूँजीपतियों को ही। मशीनों द्वारा प्रस्तुत सस्ती, अधिकाधिक मनुष्यों का दिन-दिन बेकार व दरिद्र बनाती जाती है, जिससे यह सस्ती से सस्ती सामग्रियाँ भी उन गरीब बेकारों के लिए महँगी से महँगी और दुर्लभ होती जाती है। महात्मा गान्धी ने इस अत्यधिक उत्पादन के मूल तत्व व सस्ती तथा महँगी के अर्थ-शास्त्र को यथार्थ रूप से देख लिया था।

हमारे उद्योगों का नाश हो गया और उसके कारण यहाँ बेकारी छा गई, यही तो हमारी दरिद्रता का कारण है।

—महात्मा गान्धी (यन्त्रों की मर्यादा, पृ० १६)

जो यन्त्र बहुतों को लूट कर थोड़े से लोगों को धनवान बनाने के लिए हैं अथवा जो अकारण हजारों की उपयोगी रोजी छीनने के लिए बनाए गए हैं, उनके लिए मेरे दिल में कोई गुञ्जाइश नहीं है।

— महात्मा गांधी (यन्त्रों की मर्यादा, पृ० २०)

आज यन्त्रों का प्रयोग यों हो रहा है कि. इने-गिने लोगों के हाथों में सम्पत्ति के ढेर के ढेर पहुँचा दिए जावें और जिन करोड़ों लोगों के मुँह की रोजी छीनी जा रही है उनकी कौड़ी भर भी परवाह न की जाय। बहुत भावना-शील लोगों से काम लेना ठीक नहीं, इस हेतु से जड़ यन्त्रों की सहायता से ढेरों की सम्पत्ति एकत्र करने के पागलपन ने समाज पर घोर मुसीबतें ढाई हैं। — महात्मा गांधी (यन्त्रों की मर्यादा, पृ० २१)

अब तो उन्हें (अमेरिकन किसानों) इस बात के लिए धन दे दिया जाता है कि वे गेहूँ पैदा न करें। अंडों के भाव गिर गए तो लोग एक दूसरे पर अंडे फेकने का खेल खेलने लग गए।

हम नहीं चाहते कि ऐसा हमारे यहाँ हो। खूब माल होना चाहिए इसका अर्थ अगर यह हो कि, प्रत्येक मनुष्य को विपुल अन्न, दूध, दही और कपड़े मिलने चाहिए, मनको सुसज्ज और सुशिक्षित बनाने के लिए पूरी साधन-सामग्री मिल जाय तो उससे मुझे सन्तोष होगा। परन्तु हम इतना खावें कि हजम भी न कर सकें या गैर जरूरी चीजों से घरों को भर दें तो मुझे यह पसन्द नहीं है। पर दूसरी तरफ मैं यह नहीं चाहता कि हिन्दुस्तान में दुःख, दरिद्रता, कंगाली और गंदगी हो।

— महात्मा गांधी (यन्त्रों की मर्यादा, पृ० २६)

पूँजीवादी प्रथा में सर्वसाधारण आसानी से सस्ती और मँहगी के चक्कर में फँसकर गलत फहमी में आ जाता है। लोग यह सोचते हैं कि, यदि मशीनों का खूब प्रयोग किया जाय तो माल का उत्पादन खूब हो, उत्पादन खर्च कम हो और माल सस्ता हो जाए जिससे उन्हें अपनी आमदनी से ज्यादा वस्तुएँ

उपलब्ध होने लगें। थोड़ी देर के लिए अगर इसे मान भी लें, तो हम शीघ्र ही देखेंगे कि यह हमारा मानना बिल्कुल गलत था।

संसार भर में यदि मशीन समान रूप से फैल जाय तो फिर उत्पन्न वस्तु की बहुलता हो जाय। उत्पादन अपनी चरम सीमा पर पहुँचने लगे। आज के मनुष्य मात्र का स्वप्न पूरा हो! उसकी महान् साधना तब फली-भूत हो। मनुष्य का लक्ष्य तब पूरा हो जाय। प्रत्येक व्यक्ति को बहुलता से वस्तुएँ प्राप्त होने लगें! लेकिन मैं समझता हूँ, यह केवल ख्याली पुलाव ही सिद्ध होगा। उस समय की हालत, इस समय की हालत से बिल्कुल भिन्न हो जायगी। पूँजीवादी प्रथा होने के कारण, मशीनों की पूर्ण विकसित अवस्था के सहयोग से, थोड़े से इने गिने पूंजीपति ही इन सामग्रियों को उत्पन्न करेंगे। रुपए का चक्कर तब बहुत कम व्यक्तियों के बीच तक ही सीमित रह जायगा। कितने ही ऐसे व्यक्ति होंगे जो रुपए के चक्कर के क्षेत्र से बाहर फेक दिए जायेंगे। उन बेचारों को न तो काम ही मिलेगा और न खाने को पैसा। क्रय शक्ति का पूर्ण अभाव, अत्यन्त मन्दी में भी उनके भाग्य का सुधार न कर सकेगी। समाज ने उनका बहिष्कार कर दिया है! उनको तो भूखों ही मरना है! इसके सिवा उनके पास कोई चारा नहीं रहता! पानी के बीच प्यासा मरना यह आश्चय की बात है। पर कुत्ते का काटा हुआ ऐसा सर्वहारा वर्ग, बहुतायत, मन्दी और अच्छी चीजों के रहते हुए भी, उनके बिना तड़प-तड़प कर मर जाता है। पूँजीदारी प्रथा में मशीनों की निर्माण-कार्य क्षमता से एक ऐसा दरिद्र व बेकार वर्ग निरंतर बनता जाता है जो सस्ती और बहुलता को केवल मृगतृष्णा की तरह ही देखता रह जाता है।

इसके साथ ही एक महत्वपूर्ण परिवर्तन सस्ती और मँहगी में और होता है, जिससे मनुष्य अपनी स्थिति में जहाँ का तहाँ रह जाता है। बात ऐसी है कि, ज्यों-ज्यों सस्ती अथवा मँहगी आती जाती है, त्यों त्यों रुपए का मूल्य भी बढ़ता और घटता जाता है। रुपए की इस मूल्यता में घटती और बढ़ती के कारण ही मँहगी और सस्ती का असर सामाजिक जीवन पर वास्तव में कुछ नहीं होता। सस्ती में लोगों को क्षणिक खुशी होती है। मँहगी में उन्हें कष्ट का अनुभव और अधिक होता है, और वह भी इसीलिए क्योंकि कष्ट में तो हमेशा से वह रहते आए हैं। केवल मँहगी का दर्शन कर ही उन्हें अपने कष्टों का स्मरण मात्र हो आता है, और वे मँहगी पर दोपारोपण करने लग जाते हैं। मँहगी इस लिए भी अखरती है, क्योंकि बढ़े हुए मूल्य के अनुपात में लोगों की आमदनी, मजूरी या वेतन भी नही बढ़ पाता।

महँगी में रुपए का मूल्य बहुत कम हो जाता है। इसलिए किसी वस्तु को खरीदने के लिए हमें ज्यादा रुपए देना पड़ता है। महंगी में हमें महँगाई का भत्ता मिलता है। मजदूरों की मजदूरी बढ़ जाती है। कर्मचारियों के वेतन में भी वृद्धि हो जाती है। ऐसे समय में हम दूसरों से ज्यादा पैसे लेते हैं और देते भी हैं। महँगी में भी हमें चीजें तो उतनी ही मिल जाती हैं, जितनी सस्ती में मिलती थीं! फर्क यदि होता है तो केवल यही कि, सस्ती में जब कि थोड़े रुपये का आदान व प्रदान होता है, वहीं महँगी में रुपये की मात्रा बढ़ जाती है। लेकिन यह रुपये की मात्रा के कम या ज्यादा होने के माने व्यवहारतः यह नहीं होते कि, हमारी आवश्यकता की वस्तुओं को प्राप्त में कमी या ज्यादा हो जाती है। अत्यधिक सम्पत्ति का उत्पादन

केवल गोदामों में पड़ा रहने के लिए ही होता है। पूँजीदारी प्रथा में अत्यधिक माल के उत्पादन से सर्वसाधारण को कोई लाभ नहीं होता। जिन पूँजीदारों का माल ज्यादा बिकता है उन्हें लाभ अधिक होता है, जिन पूँजीदारों का माल कम या नहीं बिक पाता है, उनके ऊपर वज्रपात हो जाता है।

सस्ती, महँगी और रुपये के मूल्य के घटाव व बढ़ाव को स्पष्ट समझने के लिए उदाहरण स्वरूप—मान लिया बिल्कुल साधारण स्तर पर १० सेर अन्न ५ रुपये में मिलता था। यानी दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि १० सेर अनाज, ५ रुपये को खरीद सकता है। लेकिन जब वही १० सेर अनाज ८ रुपये में मिलने लगा यानी महँगी आगई, तो हम कहेंगे कि १० सेर अन्न अब ८ रुपये को खरीद सकता है। साफ जाहिर है, दूसरे सौदे में रुपये का मूल्य घट गया अथवा रुपये के मूल्य में मन्दी आ गई। यही बात उस समय होती जब सस्ती आती, क्योंकि यदि सस्ती में १० सेर अन्न ४ रुपये को ही खरीद सकता तो फिर रुपये का मूल्य बढ़ जाता यानी रुपये के मूल्य में महँगी आ जाती। अस्तु, ऐसी अवस्था में यदि किसी व्यक्ति की आमदनी ३० रुपये माहवार हो, तो वह व्यक्ति साधारण अवस्था में २० रुपए की खाद्य सामग्री, ५ रुपए का कपड़ा और ५ रुपये में अन्य आवश्यक वस्तुएँ खरीद कर अपना जीवन निर्वाह कर लेता है। लेकिन किसी कारण-वश यदि महँगी आ जाय और सभी चीजों के दाम ड्योढ़े हो जायँ तो उस व्यक्ति के सिर पर वज्रपात हो जायगा। वह अपना जीवन निर्वाह कभी न कर सकेगा। रुपये का मूल्य ऐसी अवस्था में घट जायगा और उसे इस घटे हुए रुपये के मूल्य की पूर्ति के लिए कम से कम डेढ़ गुने यानी ४५ रुपये

की जरूरत होगी। ४५ रुपये उसकी तन्खाह शीघ्र ही हो भी जाती है, क्योंकि यदि यह तन्खाह उसे न दी जाय तो वह नौकरी कर ही नहीं सकता। महँगी तो आई—कष्टों की याद दिलाकर आई लेकिन हमारी स्थिति में कोई फर्क नहीं आया।

यही हालत सस्ती में होती है। यदि सभी वस्तुओं की कीमत किसी कारण वश, यानी माल के अत्यधिक उत्पादन के वजह से ही सही, आधी हो जाय तो उस व्यक्ति की तमाम जरूरतें १५ रुपये में ही पूरी हो जायगी, और १५ रुपये उसके पास शेष बच जायँगे। इसे वह विलास द्रव्यों में उड़ा देने में अब समर्थ हो सकेगा। ऐसी सस्ती में उस व्यक्ति को खुशी हो सकती है, लेकिन यह खुशी ज्यादा दिन नहीं टिक पाती। उसका मालिक, उसकी तन्खाह शीघ्र ही घटाकर १५ रुपये कर देता है और सस्ती का कोई भी नाजायज फायदा वह नहीं उठा पाता। मन्दी में रुपये का मूल्य बढ़ जाता है और यह रुपये के मूल्य में बढ़ती का असर लेन और देन दोनों में ही सन्तुलित रूप से होता है।

चरखे द्वारा आमदनी भले ही फूटी कौड़ी के बराबर हो, परन्तु किसान का जहाँ आधा साल फजूल और बेकार जाता है और उसमें फूटी कौड़ी भी नहीं मिलती एवं उल्टा बेकारी की बीमारी गले पड़ जाती है। ये दो बातें यदि न होतीं तो भारत के अर्थ-शास्त्र में चरखे के लिए कहीं स्थान न होता।—महात्मा गान्धी (गांधी विचार दोहन ले० किशोर लाल घ० मशरुवाला, पृ० १३३)

व्यक्तिगत नहीं परन्तु राष्ट्रीय अर्थ-शास्त्र की दृष्टि से विचार करें तो किसी भी वस्तु की लागत, कीमत आँकने के लिए, सिर्फ उसके माल, पूँजी और मजदूरी के खर्च का ही विचार न करना चाहिए, बल्कि इस

तरह चीजें बनाने से जो बेकारी बढ़ती है और उनके निर्वाह के लिए लोगों पर जो खर्च पड़ता है, वह भी उसकी लागत में जोड़ना चाहिए। इस दृष्टि से विचार करेंगे तो मालूम हो जायगा कि, खादी की बनिस्बत मिल का कपड़ा महँगा पड़ता है। —महात्मा गांधी (गांधी विचार दोहन, ले० श्री किशोर लाल घ० मशरुवाला, पृ० १३४)

इस विचार को समझने के लिए श्री ग्रेग की पुस्तक से ली गई नीचे लिखी जानकारी उपयोगी होगी—हाथ कताई और हाथ बुनाई द्वारा एक मनुष्य जितना सूत कातता और कपड़ा बुनता है, उससे मिल में (१९२६ ई० की गिनती के अनुसार) फी घंटा २०३ से २३६ गुना और बुनाई २० गुना अधिक होती है। अर्थात् दोनों एक समान घण्टे काम करें तो सूत की मिल का मजूर २०० से अधिक कतैयों को और २० हाथ बुनकारों को बेकार बनाता है। इनमें से ३/४ बेकार भी यदि दूसरे कामों में लग जायँ, ऐसा मानलें तो भी २९७½ लाख मनुष्यों की ३ आना के हिसाब से मजूरी का नुकसान होता है। (आज १९५३ में तो यह ३/४ बेकार आदमियों को भी कोई अन्य उपयोगी धन्धा मिलना सर्वथा असंभव हो गया है—ले०) इनके निर्वाह का खर्च यदि विदेश और स्वदेशी मिलों के कपड़े पर चढ़ाया जाय तो फी बार १॥। आना और सिर्फ विदेशी कपड़े पर चढ़ावें तो ६ आना २ पाई कीमत उस कपड़े की बढ़ जाय। १९२६ की गिनती के अनुसार भी खादी और मिल के कपड़े की कीमत में २ आने का ही फर्क था। आज तो इससे भी कम है। यदि सरकार प्रजासत्ताक हो तो इन बेकारों का निर्वाह खर्च कपड़े की मिलों से प्रत्यक्ष कर के रूप में वसूल की जाय और फिर यह स्पष्ट ही मालूम हो जाय कि, मिल का कपड़ा सस्ता नहीं है। आज इस खर्च को लोग परोक्ष रीति से देते हैं और इस कारण कपड़े के बाजार भाव में वह दिखाई नहीं देता। (स्पष्ट है ज्यों ज्यों मशीन निर्मित

वस्तुओं का मूल्य सस्ता होता है, त्यों त्यों बेकारों की वृद्धि व दरिद्रता-आती जाती है—ले०)

(गांधी विचार दोहन, ले० किशोर लाल घ०मशरुवाला, पृ० १३४)

यदि राजतन्त्र प्रजाहितकारी ही हो तो मिल को खादी के साथ प्रति-स्पध करने की व्यवथा तबतक नहीं चलने देगा जब तक बेकारी मिटाने का कोई उपाय न सूझ जाय । —महात्मा गांधी

(गांधी विचार दोहन, ले० किशोर लाल घ० मशरुवाला, पृ० १३५)

जब तक ऐसा तन्त्र न हो तब तक गरीब लोगों के प्रति सहानुभूति रख कर लोगों को चाहिए कि वे ऐसे धंधों को रोकें ।—महात्मा गांधी (गांधी विचार दोहन, ले० किशोर लाल घ० मशरुवाला, पृ० १३५)

मिल की इस हानिकारक प्रतियोगिता को रोकने के अहिंसात्मक उपाय ये हैं—विदेशी वस्त्र का तथा उन देशी मिलों का बहिष्कार जो खादी के क्षेत्र में उतर आई हैं । धरना, खादी ही पहनने की प्रतिज्ञा, खादी के लिए दान, तथा यज्ञार्थ कताई ।—महत्मा गांधी (गांधी विचार दोहन, ले० किशोर लाल घ० मशरुवाला, पृ० १३५)

भारत एक कृषि प्रधान देश है। करोड़ों व्यक्तियों का धन्धा केवल खेती ही है। इसलिए भारत की समृद्धि तभी संभव है, जब यहाँ के इन अधिकांश नर-नारियों की समृद्धि हो। थोड़े से खेतों को अपने स्वामित्व में जोत कर कोई भी किसान समृद्ध नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त किसान का यह खेती का मुख्य धंधा ऐसा है कि, तमाम खेती का काम यानी जोतना, बोना, औसाना आदि कर लेने के बाद भी उसके पास काफी समय फालतू बच रहता है. इस फालतू समय में वह कोई एक सुलभ व व्यवहारिक उपयोगी धंधा खोजने लगता है। बिना उपयोगी काम किए आदमी अपना समय नहीं काट सकता। ग्रामीण भी अपनी बेकारी का समय काटने के

लिए कोई ऐसा उपयोगी धंधा खोजता है, जो उसकी खेती के काम में बाधा भी न डाले और उस धंधे से उसकी समृद्धि यानी लाभ भी हो। चरखा एक ऐसा ही धंधा पुरातन काल से भारतीय ग्रामीणों की सेवा करता आया है। चरखे में किसानों के सह-उद्योगी धन्धे के रुप में होने योग्य सभी गुणों का पूर्णतः समावेश है। इसलिए कुटीर उद्योग की रुह या बीज मात्र यह चरखा है। मशीन कृत पूँजीदारी प्रथा की घोर दुरावस्था को दूर करने का एकमात्र हल यह चरखा ही, प्रतीक बन जाता है। चरखे की स्थापना. पूँजीदारी प्रथापर कुटीर उद्योग की विजय होगी। और कुटीर उद्योग की विजय हो जाने पर हम उसका साम्राज्य भी अच्छी तरह स्थापित कर सकने में समर्थ हो जायेंगे। महात्मा गांधी का चरखे पर इतना जोर देना केवल इसी एकमात्र कारण पर ही आधारित था। चरखा ही महात्मा गांधी के समस्त उसूलों का सार कहा जा सकता है।

हिंदुस्तान में खेती बहुतेरे कुदरती खतरों के आधीन है। उनसे बचने के उपाय करते रहने पर भी बहुतांश में ऐसी ही स्थिति बनी रहेगी। फिर भी बारहो महीने का धन्धा यह नहीं हो सकती। खेती के मौसम में भी एक सी मेहनत नहीं करनी पड़ती। बीच बीच में बहुतेरे आदमियों के एक साथ काम करने की जरूरत पड़ती है और उसके घर के लोग बेकार रहते हैं। इस कारण भारत में खेती और उद्योग धन्धे एक दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते। बल्कि खेतों के साथ ही साथ कोई न कोई सहयोगी धन्धा अवश्य होना चाहिए। —महात्मा गांधी (गांधी विचार दोहन, ले० किशोर लाल घ० मशरुवाला, पृ० १११)

उस सहयोगी धन्धे में नीचे लिखी अनुकूलताएँ होनी चाहिए—

(१) वह मुख्य धन्धे (अर्थात खेती) के अनुकूल होना चाहिए। ऐसा न होना चाहिए कि, उसके लिए खेती को बिगाड़ना पड़े।

(२) इस कारण यह धन्धा ऐसा होना चाहिए कि, मुख्य धन्धे के लिए मजदूरी की जरूरत पड़ते ही वह बन्द किया जा सके और फिर भी उससे नुकसान न हो अथवा खास तौर पर ध्यान दिए बिना भी उसका काम चलता रहना चाहिए।

(३) इसके अलावा यह धन्धा नौकरी के सिद्धान्त पर चलने वाला नहीं, बल्कि स्वतन्त्र रूप से मजूरी के सिद्धान्त पर चलने वाला होना चाहिए।

(४) फिर इसी कारण से उसमें यन्त्र अथवा माल के लिए इतनी पूँजी की आवश्यकता न होनी चाहिए कि, जो निर्धन देश के लोगों के सामर्थ के बाहर हो।

(५) ऐसा होना चाहिए जो खेत के नजदीक हो अर्थात अपने घर या गाँव में ही किया जा सके।

(६) यदि यह धन्धा करोड़ों के लिए हो तो एसा होना चाहिए कि, जिससे उसका माल असानी से खप सके अर्थात वह वस्तु ऐसी होनी चाहिए जो सार्वजनिक आवश्यकता की हो।

(७) उसी तरह, करोड़ों की दृष्टि से, इस धन्धे की व्यवस्था के लिए, अपेक्षाकृत तेजी से, सरलता से और थोड़े खर्च में शुरु होने वाला होना चाहिए।

(८) फिर करोड़ों की दृष्टि से वह ऐसा होना चाहिए जिससे अपढ़, थोड़ी बुद्धि रखने वाले, कमजोर और छोटे-बड़े सब तरह के मनुष्य उसे कर सकें।

(९) फिर भी वह ऐसा न होना चाहिए कि जिससे, कारखाने की तरह, वह मनुष्य को काम करने में जड़यन्त्र की तरह आनन्द रहित और रसहीन बना दे और काम करने के बाद थका दे और जी उबा दे।
— महात्मा गांधी (गांधी विचार दोहन, ले० किशोर लाल घ० मशरुवाला, पृ० १११—११३)

इन सहयोगी उद्योगों में चरखा और गोपालन का प्रधान स्थान है। दोनों उद्योग प्राचीन काल से खेती के साथ ही लगे हुए हैं और दीर्घ कालीन अनुभव की कसौटी पर कसे जा चुके हैं।—महात्मा गांधी (गांधी विचार दोहन, ले०किशोर लाल घ० मशरुवाला, पृ०११३)

मेरा अमुभव है कि, चरखा कातने और निवाण बुनने में मजा भी आता है और दिल को तस्कीन और शान्ति मिलती है। इसलिए जब कभी किसी असमंजस में हो या कोई शक शुबहा हो, तो कातने लगो। —जवाहर लाल नेहरू (विश्व इतिहास की झलक, ले० श्री जवाहर लाल नेहरू, पृ० २६ प्रथम खण्ड)

जिस तरह तार, डाँक, रेल अथवा अन्य अखिल भारतीय विभाग समझे जाते हैं, उसी तरह चरखे और गोपालन का महत्त्व अखिल भारतीय है। यही ऐसे धन्धे हैं जिनमें बड़े पैमाने पर अधिक से अधिक लोगों को आसानी और सुविधा से काम दिया जा सकता है।...

...गोपालन को अपेक्षा चरखे का महत्व अधिक है, क्योंकि गोपालन में तो फिर भी थोड़ी बहुत जमीन और पूँजी की आवश्यकता रहती है, इसलिए यह उन्हीं किसानों का सहयोगी धन्धा बन सकता है, जिनके पास निज की जमीन हो। परन्तु उन लाखों लोगों के अनुकूल नहीं है, जो केवल खेती की मजूरी पर ही अपनी गुजर करते हों। फिर गोपालन खेती से और खेती के अलावा स्वतन्त्र धन्धा भी हो सकता है, और चरखा इन दोनों के साथ चल सकता है। उसी तरह गोपालन और चरखा दोनों एक साथ किसान के सहयोगी धन्धे भी हो सकते हैं।— महात्मा गांधी (गांधी विचार दोहन, ले० किशोर लाल घ० मशरुवाला, पृ० ११३)

मछली पकड़ने के और नमक बनाने के धन्धे खेती और चरखे की कोटि के हैं। उनके सम्बन्ध में आर्थिक नीति वैसी ही होनी चाहिए। जैसे सूत कातना प्रत्येक किसान का हक समझा जाय, वैसे ही नमक बनाना

समुद्र तटस्थ प्रत्येक व्यक्ति का हक समझना चाहिए।—महात्मा गांधी (गांधी विचार दोहन, ले० किशोर लाल घ० मशरुवाला, पृ० ११५)

सहयोगी उद्योग के रूप में चरखे में जो गुण हैं वे दूसरे किसी भी उद्योग में नहीं हैं। संक्षेप में वे इस प्रकार हैं—

(१) यह सुसाध्य है, तत्काल साध्य है।—कारण

(क) इनमें किसी बड़े औजार की जरूरत नहीं होती। कपास घर का और औजार भी घरेलू ही।

(ख) इसमें न बहुत बुद्धि की जरूरत है, न बड़ी कुशलता की। अपढ़, कुपढ़ किसान भी इसे सहज ही बना सकता है।

(ग) इसमें न भारी मेहनत की जरूरत है, स्त्रियाँ भी कात सकती हैं, बच्चे बूढ़े और बीमार भी कात सकते हैं। और —

(घ) यह तो सिद्ध भी हो चुका है।

(२) कतैये के लिए घर बैठे का धन्धा है, सूत हमेशा बिक सकता है, और गरीब के घर में दो पैसे की वृद्धि होती है।

(३) इसे वारिश की भी जरूरत नहीं, अकाल के समय में यह भूखों का बेली हो जाता है।

(४) न तो इसमें कोई धार्मिक रुकावट है और न यह ऐसा धन्धा है जिसमें लोगों का दिल न लगे।

(५) घर बैठे आदमी को काम मिलता है, इससे इसमें मिलों के मजदूरों की तरह घर-बार छोड़ कर दूर देश जाने और कुटुम्ब को छिन्न-भिन्न कर डालने का अंदेशा नहीं है।

(६) इस कारण, हिंदुस्तान की जो ग्राम पंचायतें आज मृत प्रायः हो गई हैं, उनके पुनरुद्धार की आशा इसमें समाई हुई है।

(७) किसान की तरह बुनकर का भी काम इसके बिना नहीं चल सकता। जो बुनकर आज भी भारत की आवश्यकता का १/३ कपड़ा बुनते हैं, वे किसी दिन चरखे के अभाव में बरबाद हुए बिना न रहेंगे।

(८) इसके पुनरुद्धार के साथ ही दूसरे कितने ही धन्धों का उद्धार हो जायगा। बढ़ई, लुहार, पिंजारे, रंगरेज, सब में फिर से जीवन आ जायगा।

(९) यही एक ऐसी चीज है, जिसके द्वारा धन के असमान विभाजन में समानता आ सकेगी।

(१०) इसी से बेकारी मिटेगी। सिर्फ यही नहीं, किसान को फुरसत के वक्त काम मिल जायगा। बल्कि आज जो पढ़े लिखे लोग रोजी के लिए इधर-उधर मारे-मारे भटकते हैं उन्हें भी पूरा काम मिल जायगा। इस धन्धे के पुनरुद्धार का कार्य इतना बड़ा है कि, इसकी व्यवस्था और संचालन के लिए हजारों शिक्षित पुरुषों की आवश्यकता होगी।—महात्मा गांधी (गांधी विचार दोहन, ले० किशोरलाल घ० मशरुवाला, पृ० १३०, १३१)

इसके उपरांत चरखा जहाँ फिर से जम गया है, वहाँ दूसरे फायदे बहुतेरे हुए हैं। वे इस प्रकार हैं :—

(१) चरखे ने कितने ही लोगों के जीवन और हृदय को बदल दिया है।

(२) चरखे की बदौलत शराबखोरी घटने लगी है, और किसान कर्ज से छुटकारा पाने लगे हैं।

(३) अकाल में संकट निवारण के कामों में चरखा सफल साबित हुआ है।—महात्मा गांधी (गांधी विचार दोहन, ले० किशोरलाल घ० मशरुवाला, पृ० १३१)

चरखा कातने के बदले सिर्फ हाथ बुनाई को ही उत्तेजन देना, और मिल के सूत का नहीं, बल्कि सिर्फ मिल-बुनाई का ही बहिष्कार करना, यह चरखे सम्बंधी गलत-फहमी से पैदा होता है। क्योंकि—

(१) जिस तरह हाथ कताई सार्वत्रिक उद्योग हो सकता है, उस प्रकार हाथ बुनाई नहीं हो सकता।

(२) इस विचार वालों के ध्यान में यह सूक्ष्म भेद नहीं आता कि, चरखा तो सह-उद्योग ही हो सकता है किन्तु बुनाई स्वतन्त्र पेशा ही हो सकता है।

(३) यदि कानून के द्वारा मिल-बुनाई बन्द नहीं, बल्कि लोगों के प्रयत्न से ही उसका बहिष्कार करना पड़े, तो फिर बुनकरों को मिलों की दया पर ही अवलंबित रहना पड़ेगा। क्योंकि मिल तो हाथ बुनाई की प्रतिस्पर्धा करती है और दिन-दिन मिलें ही अधिक बुनाई करती जा रही हैं। एवं यह प्रतिस्पर्धा दिन दिन तीव्र और घातक होती जायगी।

(४) इसके विपरीत हाथ-करघा और चरखा दोनों भाई-बहन हैं। दोनों एक दूसरे के बिना नहीं टिक सकते।

(५) प्रत्येक घर में एक चरखा और हर एक छोटे गांव में एक करघा, यह आने वाले युग के विधान का मंत्र है।—महात्मा गांधी (गांधी विचार दोहन, ले० किशोर लाल घ० मशरुवाला, पृ० १३६, १३७)

चरखे और करघे, इन दोनों के सामंजस्य से खादी की उत्पत्ति होती है। खादी वह वस्त्र है, जिसके बिना मनुष्य संसार में, आधुनिक सभ्यता के काल में, सामाजिक जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। कपड़े से तन ढाकना प्रत्येक मनुष्य का अनिवार्य फर्ज है। जिस कपड़े से हम तन ढाकें, वह खादी ही होना चाहिए, यही हमारे वर्तमान प्रसंग का विषय है। इसलिए खादी कैसी हो, उसकी उन्नति कैसे की जाय, उसमें सुधार तथा व्यापकता कैसे लाई जाय यह एक महत्व-पूर्ण विषय है। इस संबंध में आवश्यक जानकारी के हेतु हमें महात्मा गांधी के विचारों से बहुत कुछ सहायता मिल जाती है।

खादी उत्पत्ति सम्बंधी लोढ़ने से लेकर बुनाई तक सब क्रियायें गृह-उद्योगों द्वारा होना ही उचित है। यदि इनमें से कोई भी क्रिया कारखानें

में करनी पड़े तो संभव है कि, इससे खादी का उद्देश्य न जाने कब गड्ढे में गिर जाय।

इस कारण लोढ़ना और पींजना – ताँत के चरखे के आनुषांगिक अंग समझना चाहिए।

चरखा, पींजना लोढ़ना में जो कुछ सुधार किये जायँ, वे ऐसी मर्यादा में होने चाहिए कि जिससे गृह-उद्योग के रूप में इनका नाश न हो जाय।

खादी सुधार के लिये कपास इकट्ठा करने से लेकर बुनाई तक की सब क्रियाओं का और साथ ही, यन्त्रों का सूक्ष्मता से अध्ययन और अभ्यास करना चाहिए।

इसकी पहली सीढ़ी यह है कि जिसको खुद कपास की खेती है, वह अपनी आवश्यकता के योग्य कपास रख छोड़े। इसके लिये किसान अच्छा बीज इकट्ठा करने की चिन्ता रखेगा और कपास को पौधे पर से ही इस तरह चुन लेगा कि जिससे उसमें मिट्टी या गर्दा न मिलने पावे। यों तो किसान इन बातों को खुद ही करने लग जायगा, किन्तु उसे समझाने की, राह दिखाने की और ब्योरा बताने की जरूरत है।

हाथ लोढ़ने में कपास के बीज बिनौले को कोई नुकसान नहीं पहुँचता और न रुई के तन्तुओं की मजबूती ही कम होती है। ताजी लोढ़ी हुई रुई को पींजना आसान होता है।

अच्छे सूत का बहुत कुछ दारोमदार अच्छी पूनी पर रहता है। जो कातना जानता है वह भली और बुरी पूनी का भेद समझता है, जो पींजना जानता है वह उसकी खूबियों को जानता है। इसलिए जो पींजना जानता है, वह दूसरे की बनाई पूनी का इस्तमाल बदरजे मजबूरी ही करता है।

खराब पूनी से सूत का अंक घटता है और टूटे तारों की रद्दी बढ़ती है। अतएव आर्थिक दृष्टि से बहुत हानिकर है।

रुई की किस्म जितना बर्दाश्त कर सके उससे मोटा या महीन सूत कातना हानिकर है। आमतौर पर कतैयों का झुकाव मोटा कातने की तरफ होता है, इसे रोकने की जरूरत है। खादी उत्पादक का ध्यान इस बात पर अवश्य रहना चाहिए कि, रुई की किस्म के योग्य महीन सूत कताया जाय।

उत्पादकों को इस बात पर भी नजर रखना चाहिए कि, सूत पूरे कस का और एक सा निकले।

महीन सूत का मतलब है, थोड़ी रुई से अधिक कपड़ा, कसदार सूत का मतलब है, मजबूत और टिकाउ कपड़ा, और समान सूत का मतलब है एक सा और सुन्दर कपड़ा। फिर यदि सूत कसदार और एक सा हो तो बुनकर थोड़ी मजदूरी में ही उसे बुनने के लिए तैयार हो जाता है। इस कारण खादी सस्ती करने के ये महत्वपूर्ण अंग हैं।

खादी सेवक को उत्पत्ति सम्बन्धी सब क्रियाओं का अनुभव युक्त ज्ञान होना चाहिए। फिर खादी उत्पत्ति सम्बन्धी सभी यन्त्रों के गुण दोष और उनकी मरम्मत का भी ज्ञान होना चाहिए। वह खुद इतना कारीगर अवश्य हो कि गाँव के किसानों को ही नहीं बल्कि बढ़ई, लुहार, इत्यादि कारीगरों को भी सखा सके और राह बता सके। इसके अलावा उसे खादी के आर्थिक अंगों का भी परिज्ञान होना चाहिए।

किसान अपने ही खेत की कपास से खुद लोढ़, पींज, कात लें और सिर्फ बुनाई के लिए ही पैसा दें, तो वह खादी मिल से भी सस्ती पड़ती है। इसे वस्त्र स्वावलम्बन कहते हैं।

किसान रुई खास करके राह खर्च लग कर आई हुई—खरीद कर पूर्वोक्त क्रियाएँ घर पर करे तो उसका कपड़ा आज मिल के कपड़े से कुछ महँगा पड़ता है। परन्तु सूत के कस और अंक में सुधार होने से यह कसर निकल जायगी। फिर भी खादी मिल के कपड़े से तो अधिक ही टिकाऊ होता है। इसलिए, इस हिसाब से उसे सस्ती ही कह सकते हैं।

खरीदी हुई खादी की किस्मों में और सस्तेपन में जो तरक्की अब तक हुई है, उससे उसके भविष्य के सम्बन्ध में तथा चरखे का आन्दोलन ठीक दिशा में किया गया उद्योग है, इस विषय में कोई संशय नहीं रहता।

परन्तु श्रेष्ठ प्रकार का कताई यज्ञ तो यह है कि, नित्य आधा घण्टा नियमपूर्वक कातें और वह सूत देश के अर्पण करें।

इस तरह कातने की मजदूरी का दान बहुत बड़ी तादाद में देश को मिलेगा इससे भी खादी गरीबों की मजदूरी कम हुए बिना, सस्ती हो सकती है।

खादी की उत्पत्ति और बिक्री के संगठन में सैकड़ों उच्च आकांक्षी युवकों को अपनी बुद्धि, व्यवस्था-शक्ति, व्यापारिक चतुरता और शास्त्रीय ज्ञान को प्रदर्शित करने का व्यापक क्षेत्र खुला हुआ है। इस एक ही काम को सुचारु रीति से सम्पन्न कर दिखाने से राष्ट्र अपनी स्वराज्य-संचालन शक्ति सिद्ध कर सकता है।

फिर यह काम आज आत्मशुद्धि का बहुत बड़ा सहायक हो रहा है इसके निमित्त से कार्य-कर्तागण गाँव-गाँव में स्वराज्य का और उसकी तैयारी के रूप में किये जाने वाले रचनात्मक कार्यक्रम (अहिंसा, मद्य-पान-निरोध, अस्पृश्यता निवारण, स्वच्छता, राष्ट्रीय एकता आदि) का सन्देश पहुँचा रहे हैं।

एक ऐसा महकमा होना चाहिए जो खादी के सम्बन्ध में सब प्रकार की जानकारी दिया करे और शोध करता रहा करे।—महात्मा गान्धी (गान्धी विचार दोहन, ले० किशोर लाल घ० मशरुवाला, पृ० १३७—१४२)

चरखे के साथ साथ गोपालन का भी नाम लिया गया है। गोपालन एक अत्यंत ही महत्वपूर्ण गृह उद्योग है। भारतीय-कृषि-अर्थशास्त्र की तो रुह ही यह है। बिना गोपालन के

भारत की कृषि सम्पन्नता कभी भी नहीं टिक सकती। हिंदुस्तान गाय के महत्व को बहुत प्राचीन काल से ही जानता चला आ रहा है। यह इसी वस्तु से प्रमाणित होता है, जो उसने गाय को 'माता' के नाम से संबोधित किया। हिंदुस्तान का बच्चा माँ की गोद से ही गाय को आदर की दृष्टि से देखने लगता है और उसे जब कभी पुकारता है 'गऊमाता' के नाम से ही पुकारता है। गाय को जो इतना ज्यादा महत्व दिया गया है, यह हिंदुस्तानियों ने भावावेश या केवल अपनी श्रद्धालु प्रकृति के कारण ही नहीं दिया है। इसके पीछे गूढ़ रहस्य छिपा है। गाय का मनुष्य की आर्थिक व कृषि-उत्पादन सम्पन्नता से गहरा संबंध है। हिंदुस्तान में गाय का मुख्यतः तीन कारणों से आदर व उपयोग किया जाता है। पहला तो उसके दूध की उपयोगिता दूसरा उसके गोबर की खाद का उपयोग, और अन्त में बैलों की प्राप्ति का साधन। अहिंसक हिन्दुस्तानी गाय का खाल, चमड़ा व गोश्त का व्यवहार करना उचित नहीं समझते. क्योंकि गाय की उपयोगिता से वे इतने ज्यादा कृत्य-कृत्य हो चुके होते हैं कि, उसे अपने परिवार के सदस्य का स्थान दे देते हैं, और उसकी अन्त समय तक सेवा सुश्रुआ करते हैं।

मनुष्य का मुख्य आहार अन्न ही है। अन्न खेतों से उपजता है, जो कि किसान के श्रम से पैदा होता है। खेतों की उपजशक्ति का मुख्य स्त्रोत, उसको मिलने वाली खाद ही होती है। इसलिए खेतों में कौन सी खाद का उपयोग किया जाय, यह एक बहुत ही महत्व-पूर्ण प्रश्न है। किसान इस बात को जानता है। उसे ज्यादा इधर-उधर माथा-पच्ची करने की आवश्यकता नहीं होती। गाय का दूध पीकर हृष्ट-पुष्ट व निरोग

होने के साथ ही साथ, वह उसके गोबर को जी-जान से हिफाजत करके रखता है। वह जानता है, गोबर की खाद सर्वोत्कृष्ट खाद है, और पृथ्वी का असली पुष्टि-कारक भोजन है। गायों के बछड़ों को वह बैल बनाकर या तो स्वयं काम में लाता है या बेच देता है। गायों द्वारा उत्पन्न बछियों को भी वह अच्छी नस्ल के गायों में बदल देता है, और या तो स्वयं उसका दुग्ध पान करता, घी, मक्खन बनाता है या उसे भी वह दूसरों के उपभोग के लिए बेच देता है। इस प्रकार गायें कृषि-अर्थ-सम्पन्नता की मुख्य अंग हैं, और किसानों के लिए महत्वपूर्ण सहारा हैं।

गोधन की उचित व सस्ती बाढ़ के लिए यह आवश्यक है कि, प्रत्येक गाँव में अच्छे चरागाह हों प्रत्येक गाँव की कुछ भूमि ऐसी अवश्य छोड़ दी जाय, जहाँ गाँव या नगर की गायें आकर चर सकें। इस प्रकार धूप व छाँव में, खुले मैदान व हवा में चरने से गायों का दूध बहुत गुणकारी और निरोग हो जाता है। इसके अतिरिक्त चरागाहों की विपुलता के कारण प्रत्येक किसान को यह सुविधा हो जाती है कि, वह गोधन आसानी से बढ़ा सके और देश में दूध, घी की नदियों का प्रादुर्भाव कर सके। गोधन के समुचित संग्रह के कारण और दूध, घी, मक्खन की विपुलता से अन्न की खपत कम हो जाती है। श्रमिक किसान की खूराक स्वभावतः अधिक होती है, लेकिन वह कम अन्न का उपयोग करता हुआ अपने गोधन के विपुल दूध, घी का उपयोग कर अपनी क्षुधा की तृप्ति आसानी से कर लेता है। इस प्रकार शहरों के लिए अन्न विपुलता से संग्रह हो जाता है, जिसे बेचकर वह अपनी अन्य आवश्यक वस्तुओं को प्राप्त करता है और साथ ही अपनी

समृद्धि भी करता है। गोधन निरंतर वृद्धि करने वाला है। इसकी वृद्धि के लिए किसी व्यवसायिक की निगरानी या तत्परता या चिन्ता की आवश्यकता नहीं है, और न किसी वैज्ञानिक या राजनीतिज्ञ की भाँति माथापच्ची करने की। सुकाल हो या दुकाल, किसान के लिए गायें एक अजीब सहारा रहती हैं, और किसान का खाली समय गायों की सेवा में, उनको चराने तथा उनके द्वारा प्रस्तुत दूध का उपयोगी सामानों के बनाने में अच्छी तरह बीत जाता है। इस प्रकार से वह हमेशा उद्यमी बना रहता है और किसी भी समय हाथ पर हाथ रखकर, निठल्ले बने रहकर, बैठने की उसे आवश्यकता नहीं रहती। गोबर की खाद का निरंतर प्रयोग उसके खेत की उपज शक्ति को हमेशा, अनन्त समय तक के लिए भी, बनाए रखती है, जिससे समस्त मानव जाति को खाद्य पदार्थ हमेशा सन्तुलित रूप से प्राप्त होता रहता है।

हिंदुस्तान की स्थिति आज भिन्न प्रकार की हो गई है। कृतिम युग में वह भी कृतिम हो चला है और अपने सात्विक व अनन्त उपयोगी गाय को भुला बैठा है। हो सकता है उसे गाय की रह रहकर याद आती हो, पर आज वह उसका पालन पोषण करने में आर्थिक दृष्टि से असमर्थ है। गाय की संख्या के साथ-साथ उसकी नस्ल भी गिरती जा रही है। गाँवों में किसानों के लिए एक भी गाय रखना दूभर हो गया है। अन्न की कमी निरन्तर पड़ती जा रही है। सर्वत्र मनुष्य का अस्तित्व खतरे में पड़ा हुआ दिखाई देता है। भुखमरी व अकाल का निरन्तर ही प्रकोप होने का डर लगा रहता है। खेतों की उपज कम होते जाने के साथ ही साथ किसान की आर्थिक स्थिति भी गिरती जाती है। खेती से गुजर-बसर करना उसके लिए

मुश्किल हो जाता है। परिस्थितियाँ उसके काबू के बाहर की होती हैं। किसान को अन्त में खेती छोड़ कर शहरों व कारखानों की शरण लेनी पड़ती है। लेकिन शहरों व कारखानों में भी काम कहीं न पाकर उसे अपने गाँव वापस आना पड़ता है, और फलस्वरूप निठल्ला बना रहकर अपने परिवार का बोझ स्वरूप हो जाता है।

इन सबका कारण क्या है? किसान की आर्थिक दुरावस्था के मूल में कौन सी वस्तु है? क्या कारण है कि सम्पत्ति का मूल उत्पादक—किसान ही घोर दुर्दशा को प्राप्त हो? हमें जरा सभी ओर दृष्टि दौड़ाकर देखना चाहिए। किसान और गाय का हमें अजीब सम्बन्ध दिखाई देगा। लेकिन किसान का गाय से बिछुड़ जाने का बहुत ही महत्वपूर्ण कारण है। यदि हम इस कारण को समझ जायँ तो हम अपने असली भेद को पहुँच जायेंगे, और हमारी सारी समस्याओं का अन्त हो जायगा।

हम जानते हैं यह जमाना मशीनों का है। हमने मशीनों की बुराई भी अच्छी तरह देखी है। उन बुराइयों में से एक यह बुराई भी हमने देखी है कि, हिन्दुस्तान में मशीनों के अत्यधिक प्रयोग से खेती के ऊपर बोझा बहुत ज्यादा हो गया है। स्वभावतः खेतों के छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट जाने, चरागाहों के जोत दिए जाने तथा किसानों को किसी भी सहयोगी धन्धे के अभाव के कारण, किसान अपनी आर्थिक दुरावस्था से परवश होकर गाय बैलों को उचित मात्रा में रखने से बिल्कुल असमर्थ है। गायों का तो पालन् करना किसान के लिए सर्वथा मुश्किल हो रहा है। ऐसी दशा में किसानों के खेतों में उचित मात्रा में खाद का प्रयोग नहीं हो पाता और पृथ्वी की उपज शक्ति क्षीण

होती जाती है। अपनी जीविका निर्वाह के लिए खेती ही एक-मात्र साधन होने से, और वह भी निरन्तर ह्रास की ओर अग्रसर होती जाने से, किसान अपनी बौखलाहट में साल में जमीन को तीन-तीन बार जोतने बोने लगता है, और यदि सम्भव हो सका तो रासायनिक खादों का प्रयोग करने लग जाता है। जिससे उसकी और भी अधिक बर्बादी होती है और उसकी खेती के नेस्त-नाबूद हो जाने का भय उपस्थित हो जाता है। गाय या बैल का जो कुछ गोबर वर्तमान कृतिम युग में किसानों को प्राप्त भी होता है, वह उसे सुखा कर गोहरे बना कर शहरों में जलाने के हेतु बेच देता है। ऐसा वह मजबूरन करता है, क्योंकि किसान के पास अन्य किसी भी सहयोगी धन्धे के अभाव में पैसे की भीषण कमी पड़ जाती है, जिसे इस रूप में पूरा करना ही पड़ता है। ऐसी अवस्था में खेती की उर्वरा शक्ति और भी तेजी से घटती है और प्रत्यक्षतः हिन्दुस्तान आज इसी अन्न उत्पादन के हेतु तड़प रहा है।

हिन्दू धर्म में गोपालन को धार्मिक महत्व दिया गया है और गो-वध महापाप माना गया है, एवं गो-रक्षा राजाओं और वैश्यों का एक विशेष कर्तव्य बताया गया है। इस कारण गो-रक्षा के लिए लाखों रुपयों का दान दिया जाता है, फिर भी उचित दृष्टि के अभाव से आज भारत में गो-भक्षक देशों की अपेक्षा भी पशुओं की दशा अधिक दयाजनक है।

गोपालन सम्बन्धी धार्मिक दृष्टि से नीचे लिखे अनुसार विकास होने की आवश्कता है:—

(१) गोपालन का क्षेत्र सिर्फ इतना ही नहीं है कि, अपंग और अशक्त पशुओं का ही पालन किया जाय, बल्कि गाय और बैल की किस्मों को सुधार कर गाय का सत्व और दूध बढ़ाना एवं बैलों की किस्म सुधारना भी गोपालन धर्म में सम्मिलित है।

(२) इस कारण पींजरा-पोलें ऐसी आदर्श गोशालाएँ होनी चाहिए जो लोगों को गोपालन का पदार्थ पाठ दे सकें। उनके ऐब, उनको घास, दाना इत्यादि देने का तरीका और परिणामों का विचार इत्यादि में शास्त्रीय-वैज्ञानिक सावधानी और निश्चितता तथा अध्ययन से काम लेना चाहिए।

(३) पशुओं की औलाद सुधारने के लिए, पींजरापोलों की तरफ से साड़ों का पालन इस तरह होना चाहिए कि, जिससे गाँव के लोगों को पूरा पूरा लाभ मिले।

(४) पींजरापोलों में चर्मालय-विभाग भी होना चाहिए कि जिससे गाँव के लोगों को पूरा पूरा लाभ मिले।

(५) पींजरापोलों में चर्मालय-विभाग भी होना चाहिए और मरे ढोरों के चमड़ों के उद्योग के प्रति घृणा रखने के बदले कर्तव्य दृष्टि होनी चाहिए। यह समझ लेना चाहिए कि, जो मालिक मरे पशुओं के चमड़े का उपयोग नहीं होने देता है, वह उनकी हत्या को प्रोत्साहित करता है और इसलिए जीव दया-धर्मी को उचित है कि, वह मरे पशुओं के चमड़े का ही इस्तमाल करने का आग्रह रक्खें।

(६) जीवित पशु की अपेक्षा कत्ल किये गए पशु का अधिक कीमती माना जाना धार्मिक दृष्टि से भयानक है। यह जानकर जीवित पशुओं के आर्थिक महत्व बढ़ाने का यत्न करना धार्मिक कर्तव्य समझा जाना चाहिए।

(७) बैल को बधिया करना अनिवार्य है—ऐसा समझ कर बधिया करने की दुःख रहित शास्त्रीय पद्धति को जानना और पींजरा-पोलों में उसकी योजना करना चाहिए।

(८) जब प्राणी को ऐसा कष्ट होता हो कि, उसके अपंग और असहाय हो जाने पर भी उसके बचने की आशा न हो और सिर्फ वेदना का समय ही बढ़ता हो तो, उसके प्राण छुड़वाने का दुःखहीन

उपाय करना दया-धर्म है—इस विचार को स्वीकार कर लेना चाहिए ।

सच तो यह है कि गो शब्द में आम तौर पर समस्त प्राणियों का समावेश होता है, फिर भी उसके व्यवहार में अहिंसा की दृष्टि से भी कितनी ही बातों में विवेक से काम लेने की जरूरत है । बिना विवेक के किया गया प्राणियों का पालन अन्त में हिंसा का ही पोषण करता है ।

ऐसे विवेक के अभाव में भैंस के दूध घी के उपयोग से गाय और भैंस दोनों की हिंसा की वृद्धि हुई है । इसके कारण ये हैं—

(क) भैंस ठंडक और पानी में रहने वाला प्राणी है । इसलिए उसे गर्म और रूखे प्रदेशों में रखना उसके साथ क्रूरता करना है ।

(ख) पाड़ों या भैंसों का कुछ उपयोग नहीं होता, इसलिए उनका वध किया जाता है ।

(ग) गाय का पालन बैल के लिए और भैंस का पालन दूध के लिए होने के कारण, भैंस की तरह गाय का पालन लाभदायी नहीं होता और इसलिए गाय के दूध बढ़ाने का उद्योग नहीं होता और उसके कत्ल को उत्तेजना मिलती है ।

इस कारण से भैंस के घी दूध को छोड़कर भैंस का पालन बन्द कर देना चाहिए । इसका अर्थ यह नहीं है कि भैंसों को कत्ल करा दिया जाय, बल्कि यह है कि भैंसों की बढ़ती रोकी जाय ।—महात्मा गांधी (गांधी विचार दोहन, ले० किशोरलाल घ० मशरुवाला, पृ० १२२-१२५)

हिंदुओं की धार्मिक दृष्टि के सन्तोष के लिए ही नहीं, बल्कि भारतवर्ष को आर्थिक दृष्टि से भी गोवध की मनाई होनी चाहिए ।—महात्मा गांधी (गांधी विचार दोहन, ले० किशोरलाल घ० मशरुवाला, पृ० १२७)

खेती की बेहबूदी के लिए गोचर भूमि की सुविधा भी आवश्यक है । खेती तथा जंगल विभाग की नीति ऐसी होनी चाहिए जिससे लोग पशु अच्छी तरह रख सकें और पशुओं के खाने के लिए खास किस्म

के चारों की खेती भी होनी चाहिए।—महात्मा गान्धी (गान्धी विचार दोहन, ले० किशोरलाल घ० मशरुवाला, पृ० १११)

गाय के गोबर की खाद पूरी तौर से पूर्ण है जिसमें नाइट्रोजन के साथ साथ, यद्यपि थोड़ी मात्रा में ही सही, पोटाश और फासफोरस दोनों ही मिलते हैं। (Pocha's Garden Guide, P 23)

गृह उद्योगों की स्थापना भारत जैसे देशों के लिए अनिवार्य है। बिना गृह उद्योग के ऐसे देशों का आर्थिक सन्तुलन व समृद्धि कभी कायम नहीं रह सकती। लेकिन इसके साथ साथ ऐसे अन्य भी उपयोगी, औद्योगिक अथवा सामाजिक धन्धे हैं जिनका महत्व भी गृह उद्योग से किसी प्रकार कम नहीं है। जैसे खानों में काम करना, नौकरी करना, अध्यापक, डाक्टर, वैद्य, वकील अथवा पुलिस इत्यादि का पेशा। यह सभी धन्धे, अपेक्षा कृत देश के थोड़े से नागरिकों द्वारा सम्पादित किये जाते हैं, यानी यह अल्पसंख्यक जन-समुदाय ही इन सभी अन्य महत्वपूर्ण कार्यों को करता है, साथ ही अपना अमिट प्रभाव अधिकांश सर्वसाधारण पर डालता रहता है। सर्वसाधारण की भलाई के लिए, तथा इस अल्पसंख्यक जन-समुदाय को अधिक उपयोगी व अनुकूल बनाने के लिए भी, हमें इनके पेशों व मनोभावों में परिवर्तन व सुधार करने की आवश्यकता है। यदि यह अल्पसंख्यक वर्ग अपने कर्तव्य से च्युत हो जाय और मनमानी करने लगे, तो उसका व्यापक असर बहुसंख्यक जनता पर पड़ेगा और उनमें अव्यवस्था फैल जायगी।

समाज का निर्वाह, समृद्धि और उन्नति अच्छी तरह हो, इसके लिए खेती और वस्त्र के धन्धों के उपरान्त दूसरे भी अनेक धन्धों की जरूरत रहती है, जैसे कि धातु, कोयलों, मिट्टी का तेल इत्यादि खानों तथा

नमक, मछली इत्यादि सामुद्रिक, तथा लकड़ी, लाख, रबर, बनस्पति इत्यादि जंगली पदार्थों से सम्बन्ध रखने वाले।

यद्यपि ये धन्धे जीवन निर्वाह के लिए उतने अनिवार्य नहीं हैं, जितने कि खेती और वस्त्र सम्बन्धी धन्धे हैं, फिर भी ये ऐसे उद्योग हैं जिनकी उपेक्षा वर्तमान सामाजिक जीवन में नहीं की जा सकती।

यद्यपि इन उद्योगों में जनता का अधिकांश भाग नहीं लग जाता, तथापि इनसे बनने वाली वस्तुओं की हर एक के लिए आवश्यकता पड़ती है, अतएव जहाँ तक इनका उपभोग करने के लिए आवश्यकता पड़ती है, तहाँ तक इन उद्योगों में समस्त जनता का स्वार्थ है।

ऐसे उद्योग सारे देश में नहीं चलते, बल्कि खास खास स्थानों में ही रह और चल सकते हैं।

ये पूर्वोक्त धन्धे, अधिकांश में बड़ी पूँजी, विशेषज्ञता, सुप्रबन्ध, विशाल रूप, इत्यादि की अपेक्षा रखते हैं। ऐसे धन्धे चाहे व्यक्तिगत तत्वाधान से चलें, चाहे राज्य की सीधी देख-भाल में चलें, इन पर राज्य का नीचे लिखे अनुसार अंकुश होना चाहिए।

(१) इनमें जो चीजें सार्वजनिक उपयोग के योग्य बनती हैं उनकी कीमत लोगों के लिए अधिक से अधिक सस्ती होनी चाहिए।

(२) इन चीजों की बनावट अच्छी से अच्छी और मजबूत होनी चाहिए।

(३) यदि ये धन्धे व्यक्तिगत तत्वाधान में चलते हों तो उनके मुनाफे और कीमत पर राज्य का अंकुश होना चाहिए।

(४) इनमें काम करने वाले मजदूरों की सुख-सुविधा की राज्य को खास तौर पर चिन्ता रखनी चाहिए।

(५) इनमें से जो उद्योग ऐसे हों जो छोटे पैमाने पर और थोड़ी पूँजी से तथा गृह-उद्योग के तौर पर चल सकें, उन्हें विशाल उद्योग का

स्वरूप देते समय ऐसी मर्यादा रखनी चाहिए कि, उसके बड़े बड़े कल-कारखानों से गृह-उद्योगों का नाश न हो जाय, तथा बड़े कारखानों में उन चीजों के बनने की मनाई होनी चाहिए, जो गृह उद्योगों में बन सकती हों।

कपड़े के कारखानों पर भी, जब तक वे चलें, यही नियम लागू होना चाहिए।

सामाजिक जीवन में उद्योगों के उपरान्त भी कितने ही उपयोगी काम करने वालों की जरूरत होती है। जैसे कि शिक्षक, सिपाही, वकील, न्यायाधीश, अधिकारी, डाक्टर, दूकानदार, सफाईदार (भंगी आदि), कारकून इत्यादि।

ये लोग प्रत्यक्ष रूप से तो किसी उपभोग्य पदार्थ को उत्पन्न नहीं करते हैं, परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से उनकी उत्पत्ति तथा उपभोग में और अनथकारी पदार्थों की समुचित व्यवस्था करने में, उनकी सहायता की जरूरत होती है।

इन कार्य कर्ताओं के निर्वाह के लिए समाज पर जो बोझ पड़ता है, उसे व्यवस्था खर्च कह सकते हैं। इसलिए इन कार्य-कर्ताओं की संख्या और उनके लिए होने वाला व्यवस्था खर्च, जनसंख्या और देश की समृद्धि के लिहाज से मर्यादित होना चाहिए। ये काम सेवा की भावना से होने चाहिए। धन कमाने या श्रीमंत बन जाने के उद्देश्य से नहीं। इसलिए, इन लोगों को इतना स्थिर मेहनताना देकर निश्चित कर देना चाहिए कि, जिससे वे समाज की स्थिति और समृद्धि की मर्यादा में रहकर जीवन निर्वाह कर सकें, और उन्हें भी चाहिए कि उतने पर सन्तोष माने एवं इसके अलावा दूसरी आमदनी न करें।

ऐसी मर्यादा में रहकर यदि ये काम किए जायँ तो ये समाज के सर्वोदय में सहायक होंगे और इनमें पड़ने के लिए समुचित लालसाओं

तथा उनकी पूर्ति के लिए की जाने वाली कुटिल युक्तियों की आवश्यकता न रहेगी।

जो धन एकत्र करना चाहते हैं जमीन, मकान, गहनों की जिन्हें इच्छा है, जो इनका विस्तार बढ़ाना चाहते हैं, उनके लिए उद्योग ही आकर्षक द्वार होना चाहिये और उद्योगों में इनके लिये गुञ्जायश भी होनी चाहिए। परन्तु उनकी आमदनी या मुनाफे की मर्यादा ऐसी होनी चाहिये कि जिससे धन्धे उन्हें अनुकूल न प्रतीत हों।

इसके विपरीत जो मर्यादित परन्तु स्थिर और निश्चिन्त जीविका प्राप्त करना चाहते हैं, और चाहते हैं सेवा करना, उनके लिए इन धन्धों का द्वार खुला रहना चाहिये। इससे इन धन्धों में प्रवेश करने के लिये उनके ज्ञान के अतिरिक्त चरित्र की भी उच्चता होनी चाहिये।

संगीत, कथा, वार्ता, चित्रकला, नृत्य, नाटक, सिनेमा आदि ललित कलाएँ यदि उचित मर्यादा में रहें तो वे लोगों के निर्दोष मनोरंजन, ज्ञान प्राप्ति तथा मानव विकास के साधन बन सकती हैं, यदि ये मर्यादा छोड़ दें तो शराब अफीम जैसे हानिकर व्यसन हो जायेंगे।

आम तौर पर ऐसी कलाओं को जीविका का पेशा न बनाना चाहिये, बल्कि प्रत्येक मनुष्य को ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिये जिससे वह अपनी जीविका के धन्धे के उपरान्त ऐसी किसी कला में दिलचस्पी ले सके।

इस कारण से सर्वसाधारण के मनोरंजन के लिये, ऐसी कलाओं के प्रदर्शन या जलसों की व्यवस्था होना चाहिये, सो भी लोगों के उत्साह से ही और गैर पेशेवर लोगों की मण्डलियाँ बनाकर।

ऐसी कलाओं का शौक, अमर्याद, अनीति की तरफ ले जाने वाला या हानिकर न हो जाय, इसके लिये ऐसे प्रदर्शनों और जलसों पर अंकुश और देखभाल होनी चाहिये।

ये नियम तो पथ-प्रदर्शन के लिये बताये गये हैं। सम्भव है कि, इन कलाओं के द्वारा जीविका उपार्जन करने की मनाई करना व्यवहारिक

और हितकर न हो। इसलिये ग्राम पंचायतों को उचित है कि, वे जहाँ-जहाँ हो सके ऐसी तजबीज करें कि इन कलाओं का निर्दोष, ज्ञान प्रद और सद्भावना पोषक उपभोग लोग ले सकें ; और पिछले प्रकरण में उपयोगी धन्धों के सम्बन्ध में सूचित किये अनुसार उनका कर्तव्य होना चाहिये कि, वे समृद्धि की मर्यादा में रह कर ऐसे पेशेवरों की निश्चित जीविका बाँध दें और इस प्रकरण में की गई सूचना के अनुसार सु-चरित्र कलाविद् प्राप्त करें।

जो लोग स्वतन्त्रता पूर्वक ऐसे धन्धे करना चाहते हैं, उन पर नीति का नियमन होना चाहिये और उसके अतिरिक्त परवाने तथा खासकर इत्यादि की भी कैद हो सकती है।

ऐसी कलाओं की उचित पुष्टि और वृद्धि के लिये राज्य की ओर से सुविधा देकर, उनके विशेषज्ञों को प्रोत्साहन मिलना चाहिये, बशर्ते कि इसमें तार-तम्य का भंग न हो।

जो कारीगर अपने धन्धे में कला कौशल दिखावे, वह उत्तेजना देने योग्य समझा जाय और इस तरह कला की उन्नति की ओर राज्य को सबसे पहले ध्यान देना चाहिये। —महात्मा गांधी (गांधी विचार दोहन, ले० किशोर लाल घ० मशरुवाला, पृ० ११४-१२०)

परन्तु वह यदि ऐसे पत्र, मासिक या उपन्यास लेकर बैठेगा जो महज फुरसत का वक्त गुजारने के लिये ही प्रकाशित किया जाता है, तो उससे मनोरंजन का तो सिर्फ आभास ही मिलेगा, परन्तु अधिक समय आलस्य में ही बीतेगा और अधिकांश में अपने मनको हीन-भावनाओं से विचलित कर लेगा, एवं कुसंस्कारों को पुष्ट करेगा। पत्रों, मासिकों और उपन्यासों से अनेक युवक युवतियाँ विकार-युक्त अवस्था में पड़े हुये और कुमार्गों में प्रवृत्त हुये पाये गये हैं। ऐसे प्रकाशन जला देने के ही योग्य हैं। —महात्मा गांधी (गांधी विचार दोहन, ले० किशोर लाल घ० मशरुवाला, पृ० १६५)

जो कला मनुष्य की हीन वृत्तियों को जगाती है और भोगों की इच्छा को बढ़ाती है, उस कला को गन्दे साहित्य की तरह समझना चाहिये। —महात्मा गांधी (गांधी विचार दोहन, ले० किशोर लाल घ० मशरुवाला, पृ० १६६)

अन्त में, सभी आवश्यक व हितकारी बातों को बताने के साथ ही महात्मा गांधी ने वर्तमान अर्थशास्त्र की, जो पश्चिमी जगत की ही देन है, घोर निंदा व तीव्र आलोचना की है। पश्चिम का अर्थशास्त्र अपनी नाशकारी प्रवृत्तियों को साथ में लेकर, सभ्यता का जामा पहन कर, अपने अन्दर स्वार्थ को छिपाए रहता है। इस स्वार्थ के साथ ही क्रूरता, शोषण व भोगों का पूर्ण रूप से मिश्रण रहता है। पश्चिमी अर्थशास्त्र की बुनियाद मशीन ही है। मशीन द्वारा प्रस्तुत लाभ को पूरा-पूरा उठाने के निमित्त ही उसकी रचना की गई है। यही अर्थशास्त्र आज पूँजीदारी प्रथा के नाम से बदनाम हो रहा है। मशीनों का नियन्त्रण करके ही हम इससे छुटकारा पा सकते हैं। महात्मा गांधी द्वारा दी गई युक्तियों से हमें इन सभी बातों की स्पष्ट झलक मिलती है।

पश्चिम के अर्थशास्त्र का बुनियाद गलत दृष्टि-बिन्दुओं पर डाली गई है। इसलिए वह अर्थशास्त्र नहीं बल्कि अनर्थशास्त्र हो गया है।

यह अर्थशास्त्र यन्त्रों का, शहरों का (खेती की अपेक्षा से) तथा उद्योगों का अन्धपूजक बन गया है।

इसने समाज के भिन्न वर्गों और देशों में समन्वय सिद्ध करने के बजाय विरोध उत्पन्न किया है और सर्वोदय के बदले थोड़े लोगों का थोड़े समय के लिए ही लाभ सिद्ध किया है।

पिछड़े हुए समझे जाने वाले देशों में आर्थिक लूट मचाकर और उनका नैतिक अधःपात करके समृद्धि का पथ खोजता है।

जिन राष्ट्रों या समाजों ने इस अर्थशास्त्र को अंगीकार किया है, उनका जीवन पशु बल पर ही टिक रहा है।

इसने जिन जिन वहमों को जन्म दिया है या बढ़ाया है, वे धार्मिक या भूत प्रेतादिक के नाम से प्रचलित वहमों से कम बलवान नहीं हैं। —महात्मा गान्धी (गान्धी विचार दोहन, ले० किशोर लाल घ० मशरुवाला, पृ० ९०, ६१)

जन साधारण का बड़ा भाग न तो धन को ठोकर ही मारता है और न उसकी अपार तृष्णा ही रखता है। हाँ वे इतना जरूर चाहते हैं कि, वर्ष के अन्त में दो पैसे उनके पास बच जायँ सो भी बीमारी, मौत, शादी-ब्याह या बुढ़ापे में काम आने के लिए, अथवा त्योहार, यात्रा, दान-धर्म करने के लिए। उसकी इतनी मर्यादा जरूर होती है। जिन लोगों में धामिक संस्कार प्रबल हैं, उनमें धन और सुख की तृष्णा को अमर्याद न होने देने का संस्कार थोड़ा बहुत काम करता ही रहता है।

जिस प्रकार सब राजा सिकन्दर या नेपोलियन बनने की अथवा भर्तृहर या गोपीचंद होने की महत्वाकांक्षा या उसके लिए पुरुषार्थ करने का सामर्थ नहीं रखते, उसी प्रकार करोड़ों लोग धनी बनने का हौसला या हिम्मत नहीं रखते।—महात्मा गान्धी (गान्धी विचार दोहन, ले० किशोर लाल घ० मशरुवाला, पृ० ६३)

शासन विधान की बारीकियों तथा उसकी भिन्न योजनाओं के सूक्ष्म भेदों और उनके महत्व को समझने की आशा देश के करोड़ों लोगों से नहीं रखी जा सकती। इसलिए इन विषयों के विचार करने में खुद दिलचस्पी नहीं ले सकते।

उनके लिए तो महत्व की बात यह है कि उनके गाँवों का मुखिया, पटवारी, या गिर्दावर उनके पास हुकूमत का जोर चलाते हुए, उन्हें धौंस दिखाते हुए, घूस माँगते हुए आते हैं या उनके मित्र, सलाहकार और संकट के साथी बनकर रहते हैं। वे अपने को जिधर चाहे उधर लोगों

को हाँकने वाले, या छोटे या बड़े सत्ताधीश समझते हैं, या जनता के सेवक मानते हैं।—महात्मा गांधी (गांधी विचार दोहन, ले० किशोर लाल घ० मशरुवाला, पृ० ७७)

समाज की व्यवस्था और रचना ऐसी होनी चाहिए जिसमें प्रजा की आवश्यक सुख-सुविधा और धनेच्छा को धक्का पहुँचाए बिना, उन्हें पुरुषार्थ करने का उचित अवसर मिले, यही नहीं बल्कि उसके फलस्वरूप उनकी महत्वाकांक्षा को पोषण मिले, पर वह इस तरह कि अंत में उससे समाज का लाभ ही हो।

यदि समाज व्यवस्था में ऐसे पुरुषार्थ के लिए अवसर न हो तो उनकी महत्वाकांक्षाएँ और पुरुषार्थ उन्हें गलत रास्ते को ले जायेंगे और समाज की हानि करेंगे।

उद्योग धन्धे तथा समाज सेवा के कितने ही कामों में अनेक प्रकार के साहस और जोखिम उठाने पड़ते हैं। उनकी सिद्धि शंकास्पद होती है और इसलिए उनके प्रयोग राज्य संस्थाओं की अपेक्षा निजी तौर पर करना अधिक अनुकूल और सुविधा-जनक होता है। समाज रचना इसके अनुकूल होनी चाहिए।— महात्मा गांधी (गांधी विचार दोहन, ले० किशोर लाल घ० मशरुवाला, पृ० ६४)

मनुष्य को बाह्य साधनों के आधीन इतना अधिक न कर देना चाहिए कि, जिससे उनकी श्रम करने की स्वाभाविक शक्ति का ह्रास हो जाय और श्रम से जीविका अर्जन करने के अयोग्य बन जाय।

इसलिए मनुष्य की शारीरिक श्रम करने की शक्ति बढ़नी चाहिए।

अत्यन्त सूक्ष्म श्रमविभाग करके मजदूरों को जड़ यन्त्र की तरह बनाकर २-४ घंटे नीरस यांत्रिक क्रिया में उसे जोतना और फिर मौज शौक, आमोद-प्रमोद के लिए छुट्टी दे देने, आजाद कर देने से मनुष्य जाति का कल्याण नहीं होगा, परन्तु उद्योग धन्धों की रचना इस तरह करनी चाहिये कि जिससे काम करने में ही उसे आनन्द आवे, काम ही उसके

लिए आमोद-प्रमोद हो जाय और उसी के द्वारा वह अपना आध्यात्मिक विकास भी कर सके।

इसका अर्थ यह नहीं है कि, मनुष्य को उद्योग धन्धों के अतिरिक्त दूसरे कामों की आवश्यकता ही नहीं है, या उनके लिये अवकाश की जरूरत नहीं है। प्रत्येक मनुष्य के लिए यह वाञ्छनीय है कि वह निर्दोष आमोद प्रमोद का कुछ भाव रक्खे और उसके लिए अवकाश मिलना भी उचित है। परन्तु वह गौण रूप से होना चाहिए। अभी तक ऐसी संस्कारिता का तो प्रसार हुआ नहीं है कि जिससे मानव-समाज का एक बड़ा भाग फुरसत का समय उचित रीति से बिता सके। इसलिए आज तो अधिकांश लोग फुरसत का समय नींद, व्यसन और दोषमय भोग विलास मे बितावेंगे, ऐसा भय है।—महात्मा गांधी (गांधी विचार-दोहन, ले० किशोर लाल घ० मशरुवाला. पृ० १००, १०१)

———

१२

आंकड़े और अंकगणित

आँकड़े सत्य के पास पहुँचने के सर्वोकृष्ट साधन हैं। यदि प्राप्त आँकड़ों द्वारा, विवेक के साथ नतीजे निकाले जायँ, तो यह पूर्ण विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि, हम सही नतीजे पर पहुँच गए हैं। आँकड़ों से किसी निष्कर्ष को निकालने में, यानी आँकड़ों से अंकगणित करने में, विवेक की आवश्यकया बहुत अधिक होती है। उदाहरण के तौर पर, किसी नदी की गहराई भिन्न-भिन्न दूरी के स्थानों पर भिन्न-भिन्न थी। एक स्थान पर १ फीट, दूसरे स्थान पर २ फीट, इसी तरह तीसरे और चौथे स्थान पर क्रमशः ३ फीट और १० फीट थी। यह आँकड़े एक ही स्थान से एक ही सिधाई पर, नदी की गहराई का नाप कर प्राप्त किए गये थे। इनको यदि अंकगणित से हल किया जाय और किसी एक नतीजे पर पहुँचा जाय, तो हम यह कहेंगे कि नदी की औसत गहराई ४ फीट है। परन्तु इसी निष्कर्ष पर, यदि हममें विवेक है तो, किसी ऐसे व्यक्ति को जिसको तैरना नहीं आता है और जो केवल साढ़े पाँच फीट ही लम्बा है, नदी को पार कर जाने की हम सलाह नहीं दे सकते। अस्तु थोड़ा विवेक, तर्क बुद्धि के साथ हम आँकड़ों की मदद से कितने ही अकाट्य सिद्धान्तों व प्रमाणों को निकाल सकते हैं।

आज आँकड़ों द्वारा प्रस्तुत प्रमाण ही सबसे ज्यादा अच्छे प्रमाण माने जाते हैं। तर्कों का तो कोई अन्त ही नहीं है। परन्तु इसके विपरीत आँकड़ों द्वारा प्रस्तुत प्रमाणों का विस्तार सीमित व छोटा ही होता है। आँकड़ों द्वारा प्रस्तुत प्रमाण सीधे दिमाग पर असर करने वाले और सही-सही तस्वीर खींच देने में सहायक होते हैं, जब कि तर्क केवल, किसी हद तक, एक अस्पष्ट व धुंधली झलक ही दिमाग में छोड़ जाते हैं। निस्सन्देह आँकड़ों के फायदे अनेक हैं और इन फायदों का ही केवल जिक्र कर हम समय नष्ट नहीं करना चाहते हैं। इन आँकड़ों की मदद से, जितने भी हमें वह उपलब्ध हो सके हैं, हम यह दिखाने की कोशिश करेंगे कि वास्तव में मशीनों के उपयोग ने कितने लोगों को बेकार बना डाला है, कितने लोगों की और कितनी रोजी छीन ली है, पूँजी का केन्द्रीकरण कितना हुआ है, तथा यदि हम कारखानेदारी प्रथा को समाप्त कर दें तो कितने व्यक्तियों को राहत मिल सकती है।

मानव श्रम को जब मशीनें छीन लेती हैं, तब मानव बेकार हो जाता है। विश्व भर में आज मशीनों की बाढ़ आ गई है। सर्वत्र मशीनों का प्रयोग मनुष्य को पंगु बनाता जा रहा है। हमें जरा इस पंगुता का ही अध्ययन करना है। हिन्दुस्तान के आँकड़े हमें आसानी से उपलब्ध हैं और हमारी हिन्दुस्तान से दिलचस्पी भी अधिक है, इसलिए हम हिन्दुस्तान की समस्या का ही विशेष रूप से अध्ययन करेंगे। हिन्दुस्तान की समस्या को यदि हम विश्व की समस्या का एक उदाहरण मात्र भी समझ लें, तो सम्भवतः कोई हर्ज नहीं होगा।

भारतवर्ष की कृषि से जिनका सीधा जीवन निर्वाह होता है, उनकी संख्या हिन्दुस्तान की कुल आबादी का ७० प्रतिशत

है। बाकी ३० प्रतिशत अन्य आबादी भी अप्रत्यक्ष रूप से कृषि से ही सम्बन्धित है। भारतवर्ष में कुल ३५६, ८२६,४८५ व्यक्तियों का निवास है (१६५१)। जिसमें १८३,३०५,६५४ की संख्या तो पुरुषों की है और १७३,५२३,८३१ की संख्या स्त्रियों की है। यानी पुरुषों की संख्या, स्त्रियों की संख्या से करीब १ करोड़ अधिक है। हिन्दुस्तान की जनसंख्या में २४६,१२०,००० की संख्या कृषि पर निर्भर करती है, जिसकी तालिका नीचे दी जा रही है (१६५१)।

१—खेतिहर जिनके निजी खेत हैं, और उनके आश्रित लोग।—	१६७,३५०,०००
२—खेतिहर जिनके पास निजी खेत बिल्कुल या मुख्यतः नहीं है, और उनके आश्रित जन।—	३१,६४०,०००
३—खेती करने वाले मजूरे और उनके आश्रित।—	४४,८१०,०००
४—खेतों के वह मालिक जो खेती नहीं करते परन्तु मालगुजारी पाते हैं, उनके आश्रित।—	५,३२०,०००

हिन्दुस्तान का कुल क्षेत्रफल १,१७६,८६० वर्ग मील है। इस क्षेत्रफल में से २२४,४६५,००० एकड़ भूमि पर खेती होती है। हमने यह देखा है कि, कुल खेतिहरों की संख्या २४६,१२०,००० है। इसलिए एक खेतिहर के पास एक एकड़ से भी कम जमीन हुई। हिन्दुस्तान की औसत पैदावार से एक व्यक्ति, एक एकड़ से थोड़ा कम जमीन से, कितना उत्पादन कर सकता है, यही हमें अब देखना है।

एक एकड़ जमीन में औसत उत्पादन मुख्य फसलों का:—
पौण्ड में

फसल	१९३८-३९	१९४५-४६	१९४८-४९	१९४९-५०
१—चावल	७१४	७११	६६९	६९०
२—गेहूँ	६१२	५४६	५६२	५८५
३—जौ	६१९	७०३	६४१	६४७
४—ज्वार	४६७	३३६	३०५	३३८
५—मक्का	६५०	६१०	५६०	५९१
६—रगी (Ragi)	६५०	५४२	६३४	५८०
७—चना	५२६	४८२	४६०	३९९
८—गन्ना	२३६१	३१५५	२९६५	३०४९
९—तीसी	२९७	२८४	२४९	२५१
१०—मूँगफली	८६०	७११	७१४	७८४
११—रुई	७५	८१	६२	७२
१२—जूट	७६८	१०६२	१०२८	११३३
१३—तम्बाकू	८४४	७४३	७१४	६५०
१४—चाय	५४८	६८७	७४८	७६०
१५—काफी	२२१	२६६	१५९	१७५

इस प्रकार प्रत्येक किसान को १९४९ ५० के मुताबिक ८ मन २५ सेर से कम चावल, या ७ मन १२ सेर से कम गेहूँ, या ८ मन ३ सेर से कम जौ, या ४ मन ९ सेर से कम ज्वार, या ४ मन २६ सेर से कम बाजरा, या ७ मन १५ सेर से कम मक्का, या ४ मन ३९ सेर से कम चना इत्यादि, एक एकड़ से कुछ कम जमीन की खेती करने से प्राप्त होता है। भारतीय, प्रत्येक किसान को उपरोक्त अनाज के उत्पादन पर ही साल भर गुजर बसर व अपनी जीविका चलानो पड़ती है, साथ ही

उसे अपने देश के अन्य पेशे वालों की कुल जनसंख्या के ३० प्रतिशत यानी १०७.५७०,००० संख्या वाले देश वासियों को भी भोजन सामग्री देना पड़ता है। निश्चय ही उपरोक्त उत्पादन के सिवा भारतीय किसान को और किसी भी अन्य आमदनी का जरिया नहीं होता, क्योंकि उसके पास खेती ही एकमात्र धन्धा रहता है और किसी भी अन्य सहायक धन्धे का सर्वथा अभाव रहता है।

७ मन १२ सेर गेहूँ या ७ मन १५ सेर मक्का इत्यादि ही केवल एक आदमी को, हमने देखा है, खाने को प्राप्त हो सकता है। किसी आदमी की खूराक, खासकर एक खेतिहर की, जिसे दिन भर कड़ी मेहनत करनी पड़ती है, काफी होती है। यदि हम कम से कम उसकी खूराक औसतन सेर भर प्रतिदिन मानें तो वह महीने में ३० सेर खा जायगा और साल भर में ३६० सेर यानी ६ मन अनाज! हमने ऊपर देखा है कि, एक किसान ६ मन अनाज किसी भी किस्म का नहीं पैदा कर सकता। इसलिए हमारा खेतिहर स्वयं ही भूखा या आधा पेट भोजन करता है। इसके साथ ही यह भी साफ यहाँ हो जाता है कि, हमारा २४६,१२०,००० की संख्या वाला खेतिहर वर्ग निश्चय ही, अन्य कोई भी ऊपरी आमदनी न होने से, वस्त्र रहित व गृह रहित ही होता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं, भारत की ७० प्रतिशत जनसंख्या दरिद्र है और आधा पेट भोजन करती है, तथा उसकी क्रयशक्ति बिल्कुल नहीं के बराबर है। हम उपरोक्त दलील से यह भी निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि, भारत में खाद्यान्न की भारी कमी है और १०७,५७०,००० संख्या के मनुष्यों को भोजन देने के लिए प्रति वर्ष विदेशों से अन्न मंगाने की आवश्यकता है।

Production, Procurement and Net Import of Foodgrains, India

Figures in thousand tons

Foodgrains	1948-49			1949-50			1950-51		
	Production	Procurement	Net Import	Production	Procurement	Net Import	Production	Procurement	Net Import
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
Rice… …	22,597	3,074	1,003	23,170	2,707	802	20,389	2,381	866
Wheat ..	5,650	557	2,161	6,290	1,115	1,676	6,590	786	2,934
Others…	15,067	747	766	16,558	795	392	14,744	603	966
Total	43,314	4,378	3,930	46,018	4,617	2,870	41,723	3,770	4,766

Source—Bulletin on Food Statistics, January 1952—issued by the Economic Statistical Adviser, Ministry of Food and Agriculture.

Note—(1) "Others" include Jowar, Bajara, Maize, Ragi, Barley and small millets. (2) 1950-51 figures are provisional. (CURRENT AFFAIRS, 1953, Part II P. 314)

अब हम जरा दूसरे देशों की पैदावार पर भी नजर डालें और उनके उत्पादन से भारत के उत्पादन की तुलना करें।

	देश	चावल का उत्पादन प्रतिएकड़
१.	इटली	२६०३ पौंड
२.	मिश्र	२२७६ ,,
३.	श्याम	६४३ ,,
४.	भारत	७२८ ,,

भारत में चावल के पैदावार की प्रति एकड़ में कमी

	काल	उत्पादन
१.	१६१४-१५ से १६१८-१६	६८२ पौंड
२.	१६२६-२७ से १६३०-३१	८५१ ,,
३.	१६३१-३२ से १६३५-३६	८२६ ,,
४.	१६३८-३६ से	७२८ ,,

गेहूँ का औसत उत्पादन प्रति एकड़

१.	योरप	११४६ पौंड
२.	कनाडा	६७२ ,,
३,	भारत	६३६ ,,

गन्ने का उत्पादन प्रति एकड़

१.	अमेरिका (U. S. A.)	२० टन
२.	जावा	५४·६१ टन
३.	भारत	१२·६६ टन

रुई का उत्पादन प्रति एकड़

१.	मिश्र	५३१ पौंड
२.	अमेरिका	२६४ ,,
३.	भारत	८६ ,,

यह साफ जाहिर है कि, भारत का उत्पादन जहाँ एक ओर तो निरन्तर घट रहा है, वहीं दूसरी ओर वह अन्य देशों की अपेक्षा स्वयं बहुत कम है।

योरप में गेहूँ १४ मन १३ सेर प्रति एकड़ पैदा होता है। परन्तु भारत में ७ मन ३८ सेर गेहूँ ही प्रति एकड़ पैदा होता है। अस्तु योरप का उत्पादन भारत के उत्पादन से करीब दुगुना होता है। इस प्रकार यदि योरप के मुकाबले में गेहूँ का उत्पादन भारत में भी हो, यानी यहाँ भी १४ मन १३ सेर पैदा हो, तो प्रत्येक किसान फिर ६ मन उसमें से खाकर बाकी का ५ मन १३ सेर आसानी से बेच सकता है। इस प्रकार वह अन्य पेशे वाले भारत की ३० प्रतिशत जनसंख्या का भी पेट आसानी से भर सकता है। हम यहाँ यह अच्छी तरह देख सकते हैं कि, भारत की धरती-माँ को यदि मौका दिया जाय, तो वह अपने ऊपर के मनुष्यों के बोझ को आसानी से उठा सकती है। इसके साथ ही विपत्ति के समय के लिए काफी अनाज भारतवासी अपने भण्डार में रख भी सकते हैं।

प्रश्न सामने यही आता है—भारत की यह बुरी दशा क्यों

है ? भारत का ७० प्रतिशत जन-भाग खेती पर अवलम्बित होने पर भी भर पेट भोजन क्यों नहीं प्राप्त कर सकता ? इसका कारण केवल एकमात्र भारत की उत्पादन शक्ति की क्षीणता ही है। हमें जरा सोचना होगा, क्यों यह क्षीणता भारत को प्राप्त हुई है और दिन-दिन यह बढ़ती ही क्यों जाती है ? मिश्र देश भारत का समकालीन ही प्राचीन देश है, परन्तु उसका उत्पादन तो भारत से कहीं अधिक अभी भी है। भारत ही इस माने में अभागा देश क्यों हो ?

बिना कारण कोई कार्य नहीं होता। भारत की दुरावस्था का भी ठोस कारण है । हम अब उन्हीं कारणों का विश्लेषण करने जा रहे हैं। अमेरिका में एक वर्ग मील में ४१ व्यक्ति रहते हैं। मिश्र में एक वर्गमील में ५४ व्यक्ति रहते हैं। जापान में ५७६ व्यक्ति, इंगलैंड में ५३८ व्यक्ति, रुस में २२ व्यक्ति, चीन में १३७ व्यक्ति और भारत में ३०३ व्यक्ति एक वर्गमील में रहते हैं। इंगलैंड और जापान को छोड़कर भारत में उपरोक्त सभी देशों से ज्यादा घनी आबादी है। इंगलैंड और जापान में उद्योग धंधों में काफी व्यक्ति लगे हैं, जिससे खेती पर बोझा कम है। मिश्र में तो पहले से ही बोझा कम है। भारत में अवश्य ही यह बोझा बहुत अधिक है। इसलिए भारत की स्थिति अन्य सभी देशों से भिन्न व अपने किस्म की अकेली ही है।

इंगलैंड और जापान, साम्राज्यवादी देश होने के कारण येन-केन-प्रकारेण, यानी किसी भी प्रकार अपने यहाँ के बनाए हुए माल को विदेशों में बेच लेते हैं। फिर भी यदि हम इन बड़े बड़े औद्योगिक देशों का अध्ययन करें, तो इनके यहाँ, बावजूद इसके कि बड़े-बड़े उद्योग धन्धे मौजूद हैं, काफी

आर्थिक दुरावस्था पाई जा सकती है। भारत में इसके विपरीत साम्राज्यवादी नीति नहीं हासिल की जा सकती। अभी हाल तक (१९४७) तो यह गुलाम तथा शोषित ही था, और इसके अतिरिक्त भारत अहिंसा व तटस्थता में भी विश्वास रखने वाला है। फलतः भारत में भी कल-कारखानों की बाढ़ आ जाने से बड़ी विकट आर्थिक दुरावस्था उत्पन्न होने की संभावना हो सकती है।

भारत देश, हम देख चुके हैं, बहुत अधिक घनी आबादी वाला देश है। अस्तु भारत में यन्त्रीकरण से जितना ज्यादा कुटीर उद्योगों का नाश होने वाला है, उतना और किसी भी देश में सम्भवतः नहीं हो सकता। इसके साथ ही भारत में बड़े बड़े उद्योग धंधों से जितनी ज्यादा बेकारी फैलने वाली है, उतनी और किसी भी अन्य देश में नहीं हो सकती। शीघ्र ही हम यह देख सकते हैं कि, भारत में उद्योगीकरण से भारत जितना ज्यादा दरिद्र हो सकता है उतना दरिद्र संसार का और कोई भी देश नहीं होगा !

भारत में उद्योगीकरण के प्रसार से इन्हीं उद्योगों पर उलटे ही आफत आ सकती है। हम देख चुके हैं कि, भारत का ग्रामीण भरपेट भोजन भी नहीं पा सकता। फिर वह कहाँ से उद्योग धंधों के उत्पादन को खरीद सकता है ? उद्योग-धंधों के विस्तार से माल का उत्पादन तो अत्यधिक होता जायगा, परन्तु वह केवल जमा ही होता रहेगा। कल-कारखानों के बनाए हुए उपयोगी माल के इस प्रकार न बिक सकने के कारण, कितनी ही मिल-फैक्टरियाँ बन्द हो जायेंगी और मजदूरों को बेकार हो जाना पड़ेगा।

माल को बेचने के लिए भारत को बिना साम्राज्यवादी

नीति अख्तियार किए हुए विदेशों में बाजार मिलना असम्भव है। परन्तु हम बता चुके हैं, इस विषय में प्रजातांत्रिक पद्धति का प्रचारक, भारत पूर्णतः असमर्थ ही रहेगा। अस्तु, हर प्रकार से उद्योग धन्धों के प्रसार का परिणाम बेकारी ही होगी और भारत की कृषि पर बोझा निरन्तर बढ़ता ही जायगा। यह दबाव अधिक पड़ जाने के कारण खेत छोटे-छोटे टुकड़ों में बट जाते हैं, चरागाह जोत डाले जाते हैं, गायों व बैलों का पालन करना मुश्किल हो जाता है। इस प्रकार खेतों में खाद और किसानों को पुष्टिकारक दूध व घी का तोड़ा पड़ जाता है। खाद की कमी व छोटे छोटे खेतों के कारण खेती से उत्पादन दिन-दिन घटता जाता है, जिससे समस्त देशवासियों को उसका फल भुगतना पड़ता है। अस्तु हमारा यह सर्व-प्रथम व सबसे महत्वपूर्ण निर्णय होता है कि, कम से कम भारत को अवश्य ही अपने औद्योगिक विकास को रोक कर, कुटीर उद्योग को प्रोत्साहन व आश्रय देना चाहिए, जिससे खेतों पर का अतिरिक्त भार हल्का किया जा सके। कहने का अभिप्रायः यह है कि, ऐसी स्थिति आज पैदा करने की आवश्यकता है जिससे ज्यादा से ज्यादा चरागाह बन सकें, किसान ज्यादा से ज्यादा गायों व बैलों का पाल सके, और अपने खेतों में अच्छी व ज्यादा खाद देकर उसकी यथोचित रूप से खेती कर सके तथा कुओं इत्यादि को खुदवा कर सिचाई का भी प्रबन्ध कर सके। यह सभी कुछ किसानों की समृद्धि पर ही निर्भर करता है। किसानों की समृद्धि गायों की बढ़ौती व जमीन का ज्यादा बड़ा टुकड़ा प्राप्त होने से ही होती है। हमें यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि, यह तभी संभव है जब खेतों पर का अतिरिक्त बोझ कम हो, और

उसका एकमात्र उपाय मशीनों की मर्यादा कर कुटीर उद्योग की स्थापना ही है।

हमें अब जरा उद्योग धन्धों की ओर अग्रसर होना चाहिए। भारत के औद्योगिक जीवन में सूती कपड़े का धन्धा सबसे महत्वपूर्ण स्थान रखता है। कुल औद्योगिक पूँजी की ४६ प्रतिशत पूँजी इस व्यवसाय में लगी है। रुई की खपत की दृष्टि से भारत दुनिया में अपना दूसरा नम्बर रखता है। तकुए और चरखे की संख्या की दृष्टि से संसार में इसका पाचवाँ स्थान है।

१६५१ में प्रति व्यक्ति पीछे १० गज कपड़ा उपलब्ध था। गरीबों के समुदाय के लिए इसकी कीमत बहुत ज्यादा थी। इसलिए १६५२ में कपड़ों का जमाव हो गया, और इस उद्योग को राहत प्रदान करने के लिए १ जनवरी १६५३ को निर्यात रुकावटों को ढीला किया गया।

हिन्दुस्तान में कपड़ों की कुल मिलें या फैक्टरियाँ ६६३ हैं। जिनमें ६२०,००० व्यक्ति काम करते हैं, जिन्होंने ६८ करोड़ ४० लाख रुपया कमाया (१६५०)। यानी एक व्यक्ति करीब १०६६ रु० ८ आने साल भर में कमा सका। एक महीने में उसने औसतन ८६ रु० करीब पाया। इस व्यवसाय में कुल ६१ करोड़ ५० लाख की स्थिर पूँजी लगी है। सामानों की कीमत ३२१ करोड़ ६० लाख है, जब कि तैयारी माल की कीमत ४६५ करोड़ ६० लाख है। इस निर्माण से जो लाभ हुआ वह १४४ करोड़ है। यानी ६६३ फैक्टरियों को कुल मिलाकर १४४ करोड़ का लाभ हुआ। इस प्रकार १४४ करोड़ की सम्पत्ति का एक साल में ही केन्द्रीकरण हो गया। जनता के कुल धन में से १४४ करोड़ की कमी हो गई। निश्चित रूप से यह १४४

करोड़ की रकम जनता में वापस नहीं जाने वाली है। इसलिए जनता में पैसे की कमी पड़ती जाती है। यह कमी उपरोक्त उदाहरण में फी आदमी पीछे ४ रुपये होगी।

इसी प्रकार अन्य औद्योगिक व्यवसायों को भी लाभ होता है। २८ महत्वपूर्ण उद्योगों में ६,३२३ फैक्टरियाँ काम करती हैं, जिनको २७० करोड़ २० लाख का लाभ हुआ।

२३११ फैक्टरियों ने, जो कि स्थिर रहने वाले पदार्थों का निर्माण करती हैं, ६४ करोड़ ८० लाख का लाभ उठाया।

४०१२ फैक्टरियों ने, जो अस्थिर पदार्थों का निर्माण करती हैं, २०५ करोड़ ३० लाख का लाभ किया।

१४ सीमेंट की फैक्टरियों ने ५ करोड़ ३० लाख का लाभ किया।

२६१ चीनी की फैक्टरियों ने २१ करोड़ ५० लाख का फायदा किया।

इन फैक्टरियों के कुल फायदे को—इसमें कपड़े की फैक्टरियों के फायदे को भी जोड़ कर—जो कि नीचे दी गई तालिका से स्पष्टतः मालूम किया जा सकता है, हम वर्तमान पूँजी के होते हुए केन्द्रीकरण तथा जनता की दिन-दिन बढ़ती दरिद्रता का अनुमान आसानी से कर सकते हैं। मिल मालिकों के लाभ में मजदूरों की मजदूरी भी शामिल है, इसलिए उनका मुख्य लाभ जानने के लिए, इस मजदूरी की रकम को घटा देना चाहिए।

उद्योगों का नाम	फैक्टरियों की संख्या	मजदूरों की संख्या	मजदूरी जो दी गई	मिल मालिकों का कुल मुनाफा	मिल-मालिकों का असली मुनाफा	स्थिर पूँजी मिल मालिकोंकी
स्थिर पदार्थों	२,३११	३१५,०००	३६३m.	६४८m.	२५५m.	७१५m.
अस्थिर पदार्थों	४,०१२	१,२१२,०००	१,२३०m.	२,०५३m.	८२३m.	१ ६३८m.
लोहा और स्टील	१४०	७७,०००	१३६m	२५१m.	११५m.	२३१m.
सीमेंट	१४	१५,०००	१६m.	५३m.	३७m.	८०m.
कपड़ा	६६३	६२०,०००	६८४m.	१,४४०m.	५५६m.	६१५m.
चीनी	२६१	८७,०००	७१m.	२१५m.	१४४m.	१४७m
२८ मुख्य धंधों	६,३२३	१,५००,०००	१,६२३m.	२,७०२m.	१,०७६m.	२,३५४m.
	१३,७५४	४,१२६,०००	४,४५३m.	६,३६२m.	२,६०६m.	६,०८०m.

m=मिलियन यानी दस लाख

हम यहाँ देखते हैं कि, ६०८ करोड़ की पूँजी का केन्द्रीकरण हो चुका है। १९५० में २६० करोड़ ६० लाख का और अधिक केन्द्रीकरण हुआ। ४१ लाख २६ हजार मजदूरों को मजदूरी दी गई। उन्हें ४४५ करोड़ ३० लाख रुपया मजदूरी के रुप में प्राप्त हुआ।

४१ लाख २६ हजार मजदूरे अपनी आवश्यकता की पूर्ति भर ही के योग्य रुपए पाते हैं। उन्हें ६० रुपया औसतन प्रति महीने प्राप्त होता है। जो कुछ भी उन्हें मिलता है, उसे वह फैक्टरियों का सामान खरीद कर वापस कारखानेदारों को ही दे देते हैं। उपरोक्त पूँजी के अवाध केन्द्रीकरण से देश कंगाल हो जाता है। सम्पत्ति का उत्पादन तो अवश्य अत्यधिक होता है, परन्तु उसे खरीद कोई भी नहीं सकता। किसान तो खरीद ही नहीं सकता। मजदूरे भी केवल अपनी आवश्यकता भर ही खरीद सकते हैं। सरकार जो कर वसूल करती है. उससे उसके कर्मचारीगण अवश्य खरीद सकते हैं। परन्तु अधिकांश जन संख्या को दिन-दिन अधिकाधिक बेकारी और मुसीबत ही देखने को मिलती है। यदि कुटीर-उद्योग होता तो ऐसी बात न होती।

अन्य व्यवसाय में लगे हुए हिन्दुस्तान के व्यक्ति इस प्रकार हैं।

१. खेतो को छोड़कर अन्य उत्पादन के धंधे में लगे हुए व्यक्तियों की संख्या—	३ करोड़ ५६ लाख
२ व्यापार—	२ करोड़ १३ लाख
३ यातायात –	५६ लाख
४. अन्य नौकरियों और मिले जुले काम—	४ करोड़ २६ लाख
कुल जोड़	१० करोड़ ७५ लाख

यह १० करोड़ ७५ लाख की जनसंख्या बिना उपयोगी कामों को किए अपनी जीविका नहीं चला सकती। प्रत्यक्षतः ऊपर दी हुई तालिका के अनुसार यह सभी व्यक्ति भिन्न-भिन्न कार्यों को करते हैं। परन्तु अब यहाँ भी खेती की भाँति ही भराव की स्थिति आ गई है और कितने ही लोग ऐसे हो रहे हैं, जिन्हें बेकार होकर एक पैसा भी कमाने को नहीं मिलता।

'खेती को छोड़कर अन्य उत्पादन के धंधे' लोगों को काम देने की दृष्टि से महत्वपूर्ण अवश्य हैं, लेकिन इसमें भी मशीनों की बाढ़ के कारण दिन प्रति दिन आदमियों की संख्या कम ही होती जाती है। उदाहरण के तौर पर कपड़े को हाथ से बनाने के उद्यम में ६० लाख व्यक्ति काम करते हैं। लेकिन ज्यों-ज्यों मिलों का उत्पादन बढ़ता जायगा, वैसे ही वैसे इनकी संख्या बेकार होती जायगी।

कोयलों की खानों में १९४८ में ४,००,०५८ व्यक्तियों को, १९४९ में ३,१८,३५४ व्यक्तियों को, और १९५० में ३,४९,८८९ व्यक्तियों को काम मिला था, जो कि पश्चिमी देशों के कोयले की खानों में काम करने वाले मजदूरों की संख्या से कहीं अधिक संख्या में है। यन्त्रीकरण से इस संख्या में जरूर कमी हो जायगी।

व्यापार में लगे हुए २ करोड़ १३ लाख व्यक्ति भी अच्छी हालत में नहीं हैं, क्योंकि इनमें प्रतियोगिता की मात्रा अत्यधिक हो गई है।

यातायात के साधनों में यद्यपि पढ़े लिखे व्यक्तियों की मांग बढ़ सकती है, परन्तु उससे अन्य बिना पढ़े लिखे अधिकांश व्यक्तियों की दशा खराब हो जायगी। जैसे यदि प्रत्येक शहर में मोटर बसों को चालू कर दिया जाय तो निश्चय ही

कुछ हजार ड्राइवरों की अवश्यकता पड़ेगी, लेकिन इससे लाखों की संख्या में रिक्शा वाले, टांगे वाले, इक्के वाले, बैलगाड़ी वाले, अथवा अन्य सवारी पेशा करने वाले बेकार हो जायेंगे। इन सभी बेकारों को कोई भी अन्य रोजी न मिल सकेगी।

नौकरियों में सरकारी नौकरों का मुख्य स्थान है। सरकारी आमदनी पर ही इन मुलाजिमों को तन्खाह मिलती रहती है।

१९५१ में ४१८ करोड़ ८० लाख गज कपड़ा फैक्टरियों में तैयार हुआ, यानी ४१८ करोड़ ८० लाख गज कपड़ा ६२०,००० व्यक्तियों की सहायता से तैयार हो गया। हिंदुस्तान भर के कपड़े की जरूरत पूरी करने के लिए केवल ६ लाख २० हजार आदमियों की ही आवश्यकता हुई।

हाथ के बुनने वाले बुनकरों के व्यवसाय पर १९५२ में भीषण विपत्ति आई, और सरकार को मिल के कपड़ों का दाम बढ़ाकर व मोटे कपड़े के ऊपर रोक लगाकर, उन्हें मिल की प्रतिद्वंदिता से राहत प्रदान करने की कोशिश करनी पड़ी।

१—जुलाहों की संख्या—	२,४००,०००
२—अनियमित जुलाहों की संख्या—	३,६००,०००
३—कुल जुलाहों की संख्या —	६,०००,०००
४—हाथ द्वारा बुने हुए कुल सालाना कपड़े का उत्पादन—	१६० करोड़ गज

यदि फैक्टरियाँ या मशीनें न होतीं, तो हिन्दुस्तान की कपड़े की जरूरत पूरी करने के लिए बहुत ज्यादा बुनकरों की आवश्यकता पड़ती। १९५१ में ४१८ करोड़ ८० लाख गज

कपड़ा मिलों ने तैयार किया। यदि इतना ही कपड़ा बुनकरों को तैयार करना होता, तो करीब १५,७०५,००० बुनकरों की आवश्यकता होती।

हमने यह देखा है कि, १६० करोड़ गज कपड़े के उत्पादन के सिलसिले में ३,६००,००० जुलाहे आंशिक रुप से ही काम कर पाते हैं। यदि वह सभी पूरे तौर से काम करें तो इस १६० करोड़ गज कपड़े से काफी ज्यादा कपड़ा तैयार हो सकता है। इस प्रकार तब, हमारी गणना के अनुसार, यह १ करोड़ ५७ लाख बुनकर भी ४१८ करोड़ ८० गज से कहीं ज्यादा उत्पादन कर सकते हैं। यह भी संभव है, पूरे तौर से अपना समय कपड़ों के तैयार करने में देने वाले २,४००,००० बुनकर भी अपने पूरे जोर-शोर से काम न कर पाते हों, क्योंकि उनके माल को न बिकने का हमेशा डर लगा रहता है। फिर, इन सबके बावजूद भी, हम वर्तमान आँकड़ों से ही कुछ महत्व-पूर्ण निष्कर्ष व सुझाव निकाल सकते हैं।

हमने यह देखा है कि, २४६,१२०,००० खेतिहर भारत में बड़ी दुर्दशा को प्राप्त हैं, जिनको भरपेट भोजन भी नहीं मिलता। हमारे सामने सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न है, खेती पर के इस अत्यधिक दबाव को कम करना और फैलती हुई बेकारी को दूर करना। यह दोनों काम ही कुटीर उद्योग को प्रोत्साहन देकर आसानी से सफलता पूर्वक किया जा सकता है। फिल-हाल हम कपड़े के धंधे पर ही विचार कर रहे हैं। अस्तु अब हम कपड़े के धंधे और खेती, इन दोनों की तुलना करने व इनमें सन्तुलन कायम करने की कोशिश करेंगे।

जितने भी बेकार व्यक्ति हैं, अधिकांश खेती पर ही अपना बोझ दिये हुए हैं। ६ लाख २० हजार मिल के मजदूरों की

एवज में अब १ करोड़ ५७ लाख व्यक्ति, कुटीर उद्योग की व्यवस्था में, कपड़े के रोजगार में लग जायेंगे। यानी यदि फैक्टरियों के ६ लाख २० हजार मजदूरों को भी उपरोक्त संख्या में शामिल कर लिया जाय, तो अब १ करोड़ ४७ लाख ८० हजार व्यक्तियों की और आवश्यकता होगी। निश्चय ही, यदि इतना बड़ा जन-समुदाय न मिल सके तो हमें फैक्टरियों से काम लेने में कोई भी आपत्ति नहीं होगी। परन्तु यदि यह १ करोड़ ४७ लाख ८० हजार की जन संख्या बेकार हो और काम खोजती हो, तो हम इन्हीं बेकारों को काम पर लगा देंगे और फैक्टरियों से काम लेना बन्द कर देंगे। जितना उत्पादन मशीनें करेंगी, उतना ही उत्पादन यह १ करोड़ ५७ लाख व्यक्ति भी कर देंगे। इसलिए फिर हमें उत्पादन का रोना नहीं रह जायगा।

हमने फैक्टरियों को बन्द कर बहुत ही अच्छा व दूरदर्शिता का काम किया। यह काम करके वास्तव में हम मानव के सेवक कहलाने के सच्चे अधिकारी हुए। हमारे इस काम के लिए मानवता हमेशा कृतज्ञ रहेगी। १ करोड़ ४७ लाख ८० हजार की जन-संख्या देहातों से चली आयगी। इस प्रकार खेतों पर से दबाव कुछ कम होगा। खेतिहर लोग थोड़ा सन्तोष की सांस ले सकेंगे। साथ ही साथ १ करोड़ ४७ लाख ८० हजार बेकारों को काम व समृद्धि भी हासिल होगी। उनका जीवन, जीवन हो जायगा।

कुल खेतिहर पहले २४६,१२०,००० थे। अब इनकी संख्या में १ करोड़ ४७ लाख ८० हजार की कमी पड़ जायगी। यानी अब कुल खेतिहरों की संख्या २३४,३४०,००० हो जायगी। कुल खेती करने योग्य भूमि अब भी २२४,४६५,००० एकड़ ही

रहेगी। यानी पहले से अधिक भूमि, यद्यपि एक एकड़ से कम ही, प्रत्येक किसान को मिल सकेगी।

ज्यों ज्यों अन्य उद्योग धंधों में भी मशीनों का बहिष्कार होगा और कुटीर उद्योग की स्थापना होगी, खेती पर का बोझ वैसे-वैसे ही कम होता जायगा। प्रत्येक किसान को इस प्रकार पहले से अधिकाधिक जमीन भी मिलती जायगी।

२३४,३४० ००० की संख्या वाले खेतिहरों में से अब यदि केवल एक करोड़ व्यक्ति और, किसी अन्य कुटीर उद्योग के लिए भेजे जा सकें तो फिर प्रति किसान पीछे एक एकड़ से अधिक जमीन पड़ जायगी, यद्यपि यह एक एकड़ खेत भी कोई अधिक या काफी नहीं है, लेकिन फिर भी यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

कुटीर उद्योग की स्थापना से किसानों में एक नवीन जोश की लहर दौड़ जायगी। उन्हें नवीव जीवन व आशा का सन्देश मिलेगा। उन्हें अपना गौरव फिर से याद हो आएगा और इस शुभ लक्षण के उपलक्ष्य में वह फिर से अपनी समृद्धि के हेतु प्रयत्न में लग जायगा। क्योंकि अब किसान को खेत के छोटे होने का डर नहीं रहेगा, बल्कि उसे बढ़ते ही जाने की संभावना रहेगी। इसलिए वह निश्चिन्त होकर अपने खेत की उपज बढ़ाने के लिए दिलोजान से, परन्तु प्राकृतिक तरीके से ही, काम में जुट जायगा। सच पूछा जाय तो प्रत्येक किसान की बढ़ती हुई प्रत्येक एकड़ भूमि से उपज ही उसकी आने वाली समृद्धि की परिचायक होगी।

प्रत्येक किसान एक जोड़ी बैल और कम से कम एक गाय अवश्य रख सकता है। पशुओं की यह संख्या आसानी से एक एकड़ की अच्छी उपज के साथ रखी जा सकती है। यानी २२४,-

३४०,००० खेतिहरों में से प्रत्येक के पास ३ जानवर अत्यन्त ही महत्वपूर्ण हो जायेंगे। इस हिसाब से होने वाले ६७ करोड़ गाय बैलों की संख्या भारत में विशेष महत्व रखती है।

भारत में १६४७ में कुल पशुओं की संख्या २८ करोड़ ३० लाख, गैर-सरकारी सूत्रों के अनुसार थी। इस प्रकार खेतों में अब पहले से दूनी से ज्यादा गोबर की खाद उपलब्ध की जा सकेगी। इस दूनो से ज्यादा खाद देने मात्र से ही उपज भी हमारी दिन-दूनी रात-चौगुनी वृद्धि करेगी, इसमें कोई संशय नहीं हो सकता। भारत में गोबर के खाद की भरमार हो जायगी, और पृथ्वी भी भरपेट भोजन कर तृप्त हो सकेगी।

सभी उद्योग धंधों से यदि मशीनों को हटा दिया जाय तो अन्य भी कितने ही व्यक्ति कुटीर उद्योग में चले जायेंगे और प्रति किसान पीछे १½ एकड़ से ज्यादा अथवा २ एकड़ जमीन भी पड़ सकती है। यदि ऐसा हो गया तो हमें यह जानकर आश्चर्य होगा कि,भारत ने अपने को फिर से सोने की चिड़िया बना लिया है !

इसका कारण है। प्रति किसान पीछे दो एकड़ जमीन पड़ जाने के माने यह नहीं होते कि पैदावार केवल दुगुनी हो जायगी, अथवा गाय बैलों की संख्या बढ़ जायगी। हमें यह जानकर आश्चर्य होगा कि केवल प्रति किसान पीछे २ एकड़ जमीन पड़ जाने मात्र से ही भारत में अन्न व दूध का भंडार साथ ही सर्वत्र अमनचैन व खुशहाली व्याप्त हो गई है। खेती पर से करीब आधा बोझा उतर जाने से बहुत बड़े-बड़े नजारे सामने आते हैं। अब प्रत्येक किसान के खेत में कुआँ है। एक-एक किसान के पास दर्जनों गाय हैं, और कितने ही बैल उसने बेचने के लिए तैयार कर रखे हैं। अब वह थोड़ी जमीन

पारी-पारी से छोड़कर बाकी में फसल बोता है। चरागाह व जंगलों की भरमार है। गायें झुन्ड की झुन्ड इन चरागाहों व जंगलों में जाती हैं और भरपेट भोजन कर वापस आती हैं। खेतों में गोबर की खाद भरपूर दी जाती है। गोबर का जलाना पाप समझा जाता है। पहले से उत्पादन कहीं अधिक बढ़ गया है। संसार का कोई भी देश हिन्दुस्तान की इस भारी उपज का मुकाबला नहीं कर सकता। इस उत्पादन को घटने की तो कोई गुञ्जाइश ही नहीं है। पृथ्वी की उर्वरा शक्ति अनन्त काल के लिए सुरक्षित हो जाती है। अब किसान कम अन्न खाता है। दूध, घी खा पी कर ही मस्त हो जाता है। पहले से अब आधी मात्रा में ही अन्न की खपत होती है। बाकी का अनाज सस्ते भाव में वह बेच देता है। गायें उसकी विपत्ति में रक्षा करने वाली होती हैं। किसान की समृद्धि, उसे धीरे-धीरे अनेकों सुविधाएँ प्रदान कर देती है। खेती को सींचने के लिए लिए पक्का कुआँ तो पहले ही उसने निर्माण कर लिया था। अब पक्का मकान, बाग-बगीचा तथा सवारी गाड़ी व सड़कों का निर्माण आदि भी वह उपलब्ध कर लेता है।

किसान पहले गेहूँ का उत्पादन फी एकड़ पीछे ७ मन ३८ सेर करता था। परन्तु योरप में इतनी ही भूमि में १४ मन १३ सेर गेहूँ पैदा होता था। हमारी वर्तमान किसान की खुश-हाली की अवस्था में अब वही पुराना किसान दो एकड़ जमीन पर २८ मन २६ सेर से भी ज्यादा अन्न पैदा कर लेता है, जब कि स्वयं वह केवल ५ मन से ज्यादा अन्न साल भर में नहीं खाता। इस प्रकार दूध, घी बेचने के साथ ही वह अब २३ मन २६ सेर से भी ज्यादा अनाज आसानी से बचा लेता है। यानी प्रत्येक किसान अपने पीछे ४ या ५ व्यक्तियों को खाने

को अन्न व पीने को दूध प्रदान कर सकता है। इस प्रकार ११ करोड़ किसान बड़ी आसानी से ४४ करोड़ या ४५ करोड़ नर-नारियों, आबाल-वृद्धों का भरण-पोषण कर सकते हैं। हमें यह मान कर तसल्ली करनी चाहिए कि, किसी भी देश में, स्वाभाविक अवस्था में केवल उतनी ही आबादी कायम रहती है, जितनी कि वह अच्छी तरह उठा सकता है, यानी जितनी आबादी को खाने, पहनने व रहने योग्य सामग्रियाँ उपलब्ध हो सकती हैं। इसलिए यदि कुटीर उद्योग को प्रोत्साहन देकर स्वाभाविकता उत्पन्न की जा सके तो हमें फिर यह भय नहीं करना चाहिए कि, ३५ करोड़ की आबादी ४५ करोड़ हो गई तो!

पहले किसान खुद ही आधा पेट भोजन करता था। ऐसी अवस्था में वह अनाज नहीं बेच सकता था। परन्तु कभी-कभी खेती पर से बोझा कम हो जाया करता था। उदाहरण के तौर पर सरकारी नहरों, बाँधों, बिजली घरों व सड़कों आदि के निर्माण कामों में काफी आदमी लग जाते थे। इस प्रकार कुछ लाख हजार व्यक्तियों को अन्य कामों में लग जाने से, किसान थोड़ी राहत की साँस लेता था और थोड़ा बहुत अनाज बचा कर अपनी उपज को बढ़ाने का प्रयत्न करता था। इसका परिणाम यह होता था कि, यदि उसकी उपज ७ मन से बढ़ कर १० मन हो जाती थी और फिर ६ मन स्वयं खा कर बाकी का एक मन बाजार में रुपये का दो सेर के भाव से बेच देता था, तो उसे मुश्किल से २० रुपये उपलब्ध हो जाते थे। इन २० रुपये से उसे निमक, तेल, गुड़ इत्यादि जरूरी सामानों को खरीदने व हल की बनवाई इत्यादि में १५ रुपये कम से कम खर्च हो जाते थे। बाकी बचे ५ रुपये, सो वह साल भर में ४ रुपये का कपड़ा खरीदता था। यह जो ४ रुपए उसने

कपड़े खरीदने में लगाए, यही ४ रुपए अन्य कितने ही ४ रुपयों से मिलकर मशीन मालिकों को १४४ करोड़ का लाभ देते थे। ४ रुपये में, एक रुपए एक आने की दर से, उसे४ गज से कम कपड़ा ही मिलता था। इन्हीं करीब ४ गज कपड़े पर उसे साल भर गुजर करना पड़ता था। कितनी दयनीय दशा थी पहले उसकी ?

किसानों के इस ४ रुपए का अत्यन्त ही महत्व है। यह रुपए ही कारखानेदारों का लाभ व उनकी समृद्धि हैं। इन्हीं ४ रुपयों को इकट्ठा कर वह ६२०००० श्रमिकों को ६८ करोड़ ४० लाख रुपया मजदूरी के रुप में देता है। यद्यपि कारखानेदार के कुल माल की कीमत ४६५ करोड़ ६० लाख है, तो इस हिसाब से ३५ करोड़ की जनसंख्या वाले देश में प्रत्येक व्यक्ति को १३ रुपए से ज्यादा मूल्य का ही कपड़ा खरीदना चाहिए। लेकिन किसान कहाँ से १३ रुपए से ज्यादा दाम इकट्ठा करके उसे खरीद सकता है। ४१८ करोड़ ८० लाख गज कपड़े की कीमत ४६५ करोड़ ६० लाख है, इसलिए १ गज कपड़े की कीमत करीब १ रुपए १ आने २ पैसे पड़ेगी। इस प्रकार ३ रुपए में किसान केवल ३ गज २ फीट कपड़ा ही खरीद सकता है। इसका नतीजा यह होता है कि, मिल का माल भारी संख्या में बिना बिके ही जमा होने लगता है। फैक्टरियाँ बन्द होने लगती हैं, और मजदूरे बाहर निकाल दिए जाते हैं। स्वभावतः मिल मालिकों को अपने कपड़े की कीमत घटानी पड़ती है, यानी कपड़ा सस्ता होता है। परन्तु इससे किसान का फायदा तो बहुत थोड़ा होता है, परन्तु नुकसान ही ज्यादा होता है। मिल के कपड़े की सस्ती के कारण, कितने ही अन्य कुटीर उद्योगियों का रोजगार मारा जाता है। इस प्रकार फिर से

खेती पर दबाव बढ़ जाता है और किसान की उपज फिर कम हो जाती है। ऐसी अवस्था में पहले जो किसान ४ रुपए का कपड़ा खरीदता था, अब फिर नहीं खरीद पाता और मिल मालिकों का कपड़ा जहाँ की तहाँ ही पड़ा रह जाता है। वास्तव में यही एक सूक्ष्म विषय है, जो अच्छी तरह समझ लेने का है। पूँजीदारी प्रथा में कृषि पर अत्यधिक दबाव ही बहुत बड़ा रोग है। इस रोग से कृषक तो मर ही जाता है, साथ ही मिल मालिकों व मजदूरों की भी गनीमत नहीं रहती। सस्ती को लोग परोक्ष रीति से देखते हैं, यानी 'सस्ती आई' इस बात की खुशी तो लोगों को होती है, परन्तु यह भूल जाते हैं कि शीघ्र ही इस सस्ती का दुष्प्रभाव उन्हीं के सिर पर ही गिरने वाला है। अक्सर सस्ती के बाद शीघ्र ही वज्रपात होता है। अत्य-धिक माल के उत्पादन के शीघ्र बाद ही एक आर्थिक संकट आता है। कृषक, मजदूर व सर्वसाधारण सभी इसकी चपेट में आ जाते हैं और दुर्दशा को प्राप्त होते हैं।

कपड़े की ४२, ६७० गाटें
कानपुर में नहीं बिकीं

लखपति शीघ्र ही सरकार
से छुटकारे की सहायता
चाहते हैं।

हमारे कानपुर आफिस से
कानपुर अक्तूबर १५

स्थानीय सूती मिलों की अवस्था एक गंभीर स्थिति पर पहुँच गई है, क्योंकि आम तौर से पूरे देश में अत्यधिक उत्पादन हुआ है और

खपत की मांग भी कम हुई है, और इस प्रकार बिना बिके सूत और कपड़े का बड़ा भण्डार जमा हो गया है।

स्थानीय मिलों के पास, तारीख पर, ४२.६७० गाठें कपड़े की और ६,१४५ गाठें सूत की हैं जिनकी कुल कीमत मिलाकर ४,१७,३३,००० रुपए है। उत्तरी भारत, कानपुर के एम्प्लायर्स एसोसियेशन के चेयरमैन श्री आर. डी. आर. बेल ने कहा है कि, अवस्था सभी दृष्टियों से और भी अधिक विकट है क्योंकि यह सत्य बात है कि, कुछ ही हफ्तों के बीच में मिलों को अगले साल की जरूरत की रुई को खरीदने के लिए रुपयों का इन्तजाम करना पड़ेगा। (Amrit Bazar patrika, dated 17 oct, 1953 P. 5]

जैसा कि हम देख भी चुके हैं, आज हम यह साफ कह सकते हैं कि भारतीय किसान की क्रय शक्ति क्षीण है और वह किसी भी प्रकार बढ़ नहीं रही है। किसानों के रहन-सहन का तरीका व स्तर बहुत ज्यादा गिरा हुआ है। वर्तमान आर्थिक पहलू के बीच में किसान अपनी गिरी हुई दशा से सात जन्म में भी छुटकारा नहीं पा सकता। चाहे जितनी भी विकास की योजनायें बनाई जायें, चाहे जितना भी रुपया उन विकास योजनाओं पर खर्च किया जाय, चाहे जितनी भी नहरों, बिजली घरों और सड़कों का निर्माण तथा किसानों के शिक्षण का कार्य किया जाय - क्या कभी किसानों का लाभ इन वस्तुओं से हो सकता है ? गरीब किसान जिनके पास छोटे-छोटे जमीन के टुकड़े हैं, और जिनके बच्चे बड़े होकर, कहीं भी दूसरी जगह अन्य काम-धन्धा न प्राप्त कर सकने के कारण, इन खेतों के छोटे टुकड़ों को और भी छोटे हिस्सों में बटाने वाले हैं, ऐसे उन किसानों की आर्थिक दशा निरन्तर गिरती न जाय तो और क्या हो ? मिल मालिकों की सस्ती खैरात वास्तव में

कम हानिकर नहीं होती। नहरों का पानी, बिजली घरों की बिजली, तथा सड़कों का निर्माण व किसानों की शिक्षा आदि सभी इस एकमात्र सस्तेपन पर ही समूल बिक जाती है। सस्तापन ही तो पूँजीदारी प्रथा में एक भीषण रोग का कीटाणु होता है। सस्तापन ही मनुष्य के आर्थिक जीवनशक्ति का नाश-कर्त्ता है। हम नीचे दिए हुए उदाहरण से इसे अच्छी तरह समझ सकते हैं।

जिस समय मिल के कपड़े का मूल्य-दर १ रुपए का १ गज था, उस समय उसकी प्रतियोगिता में ६० लाख बुनकर कपड़ा बुनते थे। २२ गज कपड़ा प्रति महीने बुन कर, वह २२ रुपए ही कमा पाता था। इन २२ रुपयों में उसे अपना काम करते हुए मुश्किल से खाना भी अट पाता था। वह बुनकर ऐसी हालत में अपना धन्धा छोड़ भी नहीं सकता था, क्योंकि दूसरा कोई अन्य धन्धा भी नहीं था। नतीजा यह निकला कि यदि मिल के कपड़े का भाव जरा और भी गिरता यानी सस्ता होता, तो हमारी यह ६,०००,००० बुनकरों की संख्या बे मौत ही मर जाने वाली थी।

प्रश्न यह है कि सस्ती आखिर कैसे आती है? किसी वस्तु का मूल्य, उस वस्तु पर हुए खर्चे के आधार पर ही निर्भर करता है। यदि किसी वस्तु के निर्माण-व्यय में ज्यादा खर्च होता है, तो उसका मूल्य ज्यादा हो जाता है और यदि कम खर्च हो तो वह अपेक्षाकृत सस्ता रहता है। हमें यह देखना है कि, मिल मालिक किस प्रकार अपने सामानों को सस्ता करने के लिए, उस पर होने वाले निर्माण खर्च को कम कर सकते हैं। निश्चय ही मिल मालिकों को मशीन की अद्वितीय सहायता है, परन्तु कुटीर उद्योगी तो केवल उतना ही

कपड़ा तैयार कर सकता है जितना उसके हाथ पैर में कूवत रहती है। वह तो अपने हाथ-पैर से ही काम करता हुआ अपना पेट भरना चाहता है। परन्तु वह क्या करे। उसके सर पर प्रतियोगिता की तलवार लटका करती है।

मिल मालिक एक होता है। उसका पेट भी अकेला ही होता है। वह चाहे जितना पेट फुला ले, फिर भी वह परिमित मात्रा में ही भोजन कर सकता है। इसलिए यदि उसका पेट भर जायगा, तो फिर उसे अन्य कोई विशेष चिन्ता न होनी चाहिए। 'पेट के भरने' में उसकी अनेकों भोग सामग्रियों आदि को भी शामिल ही समझना चाहिए। यदि मिल मालिक का खर्च हजार रुपए प्रति महीने है, तो वह हजार रुपए की ही परवाह करेगा। अन्य जो लाखों रुपया उसके पास मुफ्त का मुनाफे के रूप में आता है, उसे वह घटा देने में कोई आपत्ति न समझेगा। इस प्रकार मिल मालिक उत्पत्ति खर्च को अपने अतिरिक्त मुनाफे में कमी करके, कम कर सकता है, जिससे उसके सामानों तथा कपड़ों का मूल्यदर कम हो जा सकता है। मिल मालिक के साथ जुलाहा भी निश्चय ही ऐसा काम नहीं कर सकता। २२ रुपए में तो उसका गुजर हो ही नहीं सकता, फिर उसे मुनाफा कहाँ से हो सकता है। उसका उत्पत्ति खर्च तो वह स्वयं ही होता है। यानी जितना वह खाता है, उतना ही उसका मुख्य उत्पत्ति खर्च है। यदि वह खाएगा नहीं तो, न तो वह जीवन धारण कर सकेगा और न अपना काम ही कर सकेगा। जुलाहा अपना पेट कैसे मार सकता है? मिल मालिक एक प्रकार से और भी उत्पत्ति खर्च को कम कर सकता है। वह आसानी से सैकड़ों हजारों मजदूरों के पेट को मार सकता है। यानी वह मजदूरों को निकाल कर

स्वयं चालित मशीनों द्वारा कम खर्च में ही सामानों का अत्य-धिक उत्पादन कर सकता है।

हम यह जानते हैं कि, ४१८ करोड़ ८० लाख गज कपड़े की कीमत ४६५ करोड़ ६० लाख रुपया है, अर्थात् १ गज कपड़े का दाम १ रुपया १ आना २ पैसा हुआ। अब यदि सस्ती करना है तो यह बखूबी मजदूरों की मजदूरी समाप्त कर की जा सकती है। ६ लाख २० हजार श्रमिक ६८ करोड़ ६० लाख रुपया वेतन में पाते हैं। यदि यह ६८ करोड़ ६० लाख रुपया कपड़े के मूल्य में से कम कर दिया जाय तो कपड़ा कुछ न कुछ अवश्य सस्ता हो जायगा। तब कुल कपड़े का मूल्य ३६६ करोड़ ७० लाख रुपया होगा और इस प्रकार प्रति गज कपड़े का मूल्य १४ आना पड़ेगा। यानी ६ लाख २० हजार श्रमिकों का बलिदान कर हम केवल २ आना प्रतिगज कपड़े के मूल्य में कमी कर सकते हैं।

हम यह भी जानते हैं कि, मिल मालिकों का असली मुनाफा ४५ करोड़ १० लाख रुपया है। यदि हमें और अधिक सस्ती चाहिए तो फिर अब मिल मालिकों को अपना मुनाफा घटाना पड़ेगा। यदि मिल मालिक केवल १० करोड़ १० लाख ही मुनाफा मंजूर करें, तो कपड़े का कुल मूल्य अब ३३१ करोड़ ७० लाख हो जायगा, और तब प्रतिगज कपड़े का दाम १२ आने ३ पैसे के करीब होगा।

कपड़े को बनाने में सामानों का खर्च ३२१ करोड़ ६० लाख रुपया है। इस हिसाब से यदि कपड़े का मूल्य-दर निकाला जाय तो, वह हमारे अनुमान के मुताबिक कम से कम मूल्य-दर यानी सबसे ज्यादा सस्ती का परिचायक होगा। इस हिसाब से प्रतिगज कपड़े का मूल्य १२ आने १ पैसा आयगा।

हम यहाँ यह साफ देख सकते हैं कि अधिक से अधिक बलिदान पर भी हम केवल ४ आना ही प्रतिगज कपड़े का मूल्य कम कर सके। निश्चय ही इस क्रिया में हमारा ६० लाख की संख्या वाला बुनकर वर्ग और ६ लाख २० हजार की संख्या वाला श्रमिक वर्ग इस संसार से उठ जायगा।

उपरोक्त सस्तेपन को हम और भी ज्यादा सस्ता बना सकते हैं। यानी यदि कपड़े के बनाने वाले सामान सस्ते हो जायें तो ऐसा हो सकता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं, यदि रुई सस्ती हो जाय तो कपड़ा और भी सस्ता हो सकता है। रुई दो प्रकार से सस्ती हो सकती है। प्रथम तो यदि अनाज सस्ता हो जाय तो रुई का उत्पादक किसान आसानी से अपना मूल्य-दर घटा सकता है। दूसरा तरीका यह है कि, यदि एक ही व्यक्ति को बहुत ज्यादा बड़े-बड़े रुई के खेत दे दिया जाय तो वह अत्यधिक उत्पादन कर, उसमें केवल अपने खाने के खर्च को जोड़कर, रुई को बहुत ज्यादा सस्ते दामों में बेच सकता है। परन्तु यह दोनों तरीका अभी वर्तमान समय में सम्भव नहीं दिखाई देता। क्योंकि प्रथम तरीके में पहले तो अन्न अभी फिलहाल सस्ता होने वाला नहीं है, क्योंकि अन्न तभी सस्ता होगा जब उसकी बहुलता होगी, और अन्न की बहुलता तभी हो सकती है, जब खेती पर के बोझ को कम किया जाय। पूँजीदारी प्रथा में तो ठीक इसका विपरीत ही होता है। दूसरा तरीका इसलिए सम्भव नहीं है, क्योंकि यदि एक ही व्यक्ति को बहुत बड़े-बड़े खेतों को दे दिया जाय तो अन्य लाखों की संख्या में किसान व उनके बाल बच्चे बिना किसी उद्यम के भूखों मर जाएँगे।

महँगी का क्या अर्थ है ? यदि सस्तापन बुरा है तो महँगा-

पन अच्छा होना चाहिए ! परन्तु मँहगेपन से भी तो हम भूखों मर सकते हैं ! निस्सन्देह कृतिम सस्ती व मँहगी दोनों ही बुरी हैं। सस्ती और मँहगी की इस जटिल समस्या को हमें समझ लेना चाहिए। आवश्यकता तो केवल इस बात की है कि, हमारा दैनिक-रोज का क्रम सन्तुलित रूप से चलता रहे। इस प्रकार फिर चाहे सस्ती हो या मँहगी हो, हमारी स्थिति में कोई भी फर्क नहीं आएगा। सस्ती और मँहगी की हम विशद विवेचना करने की कोशिश करेंगे।

सम्पत्ति शास्त्र का यह सिद्धान्त है कि, किसी वस्तु का मूल्य, उस वस्तु के निर्माण करने के लिए किया गया खर्च, व उसे उपयोगी सम्पत्ति के योग्य बनाने के लिए किया गया खर्च—इन दोनों पर ही आधारित रहता है। जैसे यदि कोई मजदूरा जंगल से काट कर लकड़ी लाए और शहर में बेचकर अपना पेट भरना चाहे, तो वह लकड़ी का मूल्य उतना ही निर्धारित करेगा जितना कि उसका स्वयं खाने का खर्च है। यदि दो मन लकड़ी वह काट कर रोज लाता है, और वह एक रुपए में अपना पेट भर सकता है, तो आसानी से वह मजदूरा दो मन लकड़ी १ रुपए में या १ रुपए से थोड़ा ज्यादा में बेच सकता है। इस प्रकार लकड़ी का मूल्य-दर निर्धारित हो जाता है। हो सकता है वह लकड़ी वाला २ रुपए में २ मन लकड़ी बेचे। तब हम कहेंगे कि लकड़ी का भाव १ रुपए मन है। यह दर काफी समय तक कायम भी रह सकता है। परन्तु इतना निश्चित है कि, लकड़ी का बाजार-दर आठ आने मन से ज्यादा नीचे कभी नहीं गिर सकता। यदि आठ आने मन के बजाय ६ आने या ४ चार आने मन लकड़ी का भाव हो जाय, तो उस लकड़ी काटने वाले को दिन भर की मेहनत के

बाद केवल १२ आने या ८ आने ही मिलेंगे। ऐसी हालत में वह भूखा पेट रहने लग जायगा, इसलिए लकड़ी वाला आठ आने मन से कम पर कभी भी अपनी लकड़ी बेचने को तैयार न होगा।

हाँ! एक बात और हो सकती है। यदि कोई ऐसी तरकीब निकल आवे जिससे कोई व्यक्ति अकेला ही दिन भर में १० मन लकड़ी काट ले, तो निश्चय ही एक नयी स्थिति पैदा हो जायगी। मेरा मतलब इस 'नई तरकीब' यानी मशीन से ही है। कोई व्यक्ति यदि किसी ऐसी ही मशीन का ईजाद करे, या अपने पूँजी से उसे खरीद ले, तो वह १० मन लकड़ी रोज अवश्य काट सकेगा। कम से कम बाजार भाव तो हम देख ही चुके हैं—आठ आने मन है। इस हिसाब से इस नए उद्योग-पति को ५ रुपए लकड़ी के दाम प्रतिदिन मिल जायेंगे। परन्तु इस मशीन वाले व्यक्ति के भी जीविका-निर्वाह का खर्च केवल १ रुपए ही प्रतिदिन है। अस्तु उसके पास ४ रुपए फालतू लाभ स्वरूप बच जाते हैं, और वह शीघ्र ही धनवान बनने लग जाता है। बिचारा मजदूरा इस मशीन को उपलब्ध कर सकने में नितांत असमर्थ होता है। इस प्रकार विषमता की सृष्टि होती है और एक व्यक्ति दिन-दिन धनवान होता जाता है और दूसरी ओर दूसरा व्यक्ति निर्धन होता जाता है। मशीनों द्वारा उत्पन्न विषमता का यह हमें सीधा-साधा व सरल दृष्टान्त मिला। वह मशीन वाला व्यक्ति तो शीघ्र ही मोटर खरीद लेता है, महल बनवा लेता है, अन्य उपयोगी सामग्रियों को भी जुटा लेता है, परन्तु लकड़हारा तो केवल उसे देखकर उसासें ही भरता रह जाता है। काश! लकड़हारा भी मशीन का मालिक हो पाता। काश! उसके पास भी पूँजी

और योग्यता होती। वह भी तब इस मशीन मालिक की भाँति गुलछर्रे उड़ाता नजर आता।

एक बात और ध्यान देने योग्य है। यह दोनों ही लकड़ी का रोजगार करने वाले किसी देहात या कस्बे में ही कारोबार करते थे। इस देहात या कस्बे की प्रतिदिन की लकड़ी की खपत या बिक्री १०० मन थी। इस १०० मन लकड़ी की बिक्री को पूरा करने के लिए पहले केवल लकड़हारों की संख्या ५० के लगभग थी। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं, ५० लकड़हारे प्रति-दिन मेहनत करके, लकड़ी काट कर व उसे बेचकर अपनी जीविका निर्वाह कर लेते थे। परन्तु अब स्थिति कुछ बदल रही थी। एक ऐसा व्यक्ति गाँव में पहुँच गया था, जो बड़ा तड़क-भड़क वाला था। उसके पास भाग्यवश एक मशीन थी। लोग उस मशीन को देखने के लिए कौतूहल पूर्वक जुटने लगे। लकड़हारा भी दर्शकों में शालिल था। उसे भी इस नई चीज को देखकर खुशी व ताज्जुब हो रहा था। पर वह यह नहीं जानता था कि, केवल इसी चीज से उसका सत्यानाश भी होने वाला है। उसके ऊपर शीघ्र ही वज्रपात होने वाला था!

लोगों ने देखा कि वह अजनबी व्यक्ति, अपनी मशीन को लेकर जंगलों की तरफ गया, जहाँ लकड़हारे लकड़ी काट रहे थे। उसने इन लकड़हारों को देखकर मुस्कुरा दिया। देखते ही देखते उसने १० मन लकड़ी काट कर इकट्ठा कर लिया और उसे गाँव में लाद लाया। आज के दिन बाजार में एक नई बात देखने में आई। आज का दिन लोगों के लिए अजूबा था। लोगों ने सुना कि लकड़ी का भाव आज ४ आने मन एकाएक कम हो गया है। दुगुना फर्क! क्या बात हुई? लोगों ने यह भी सुना, एक साहब आया है, वह ४ आने मन लकड़ी

बेच रहा है। सभी लोग उससे खरीदने को दौड़ पड़े। उन्होंने खरीदा भी। साहब की कुल लकड़ी बिक गई और उसे कुल अढ़ाई रुपए प्राप्त हुए। १ रुपया तो उसने भोजन वगैरह में खर्च किया, और बाकी डेढ़ रुपए उसने इकट्ठा कर लिया। इस प्रकार एक महीने में अजनबी ने ४५ रुपए और एक साल में ५०० रुपए इट्ठका कर लिया। धीरे धीरे उसने वहाँ आली-शान कोठी बनवा ली, और लकड़ी वाले बाबू के नाम से धनी, मानी मशहूर हो गया।

दूसरी तरफ ५० लकड़हारों पर अजीब गुजरी! केवल कस्बे में १०० मन लकड़ी तो बिकती थी, फिर इसमें से १० मन अकेला लकड़ी वाला बाबू ही काट ले जाता था। बाकी ६० मन लकड़ी अब ५० लकड़हारों में बटनी थी। यानी प्रत्येक लकड़हारा अब दो मन से कम लकड़ी काटने लगा। इस प्रकार जब कि लकड़ी का भाव तो गिरा ही था, दूसरी ओर लकड़हारा बेकार भी होने लगा था। उसे कम दाम तो अब मिलता ही था, परन्तु अब वह इसके साथ ही अपनी पूरी शक्ति से काम भी नहीं कर पाता था। उसकी शारीरिक शक्ति क्षीण होने लगी थी। वह काफी समय अब निठल्ला बना रहता था। पेट की चिन्ता तो थी ही उसे, परन्तु अब उसके लिए अपना समय काटना भी मुश्किल हो रहा था। पहले दिन भर, आठ घंटे वह लकड़ी काट कर २ मन इकट्ठा कर लेता था, परन्तु अब वह १॥ मन ही लकड़ी ५-६ घण्टों में काट लेता था और बाकी के दो-तीन घंटे गुजारना उसके लिए दूभर हो जाता था। आराम तो रात भर वह करता ही था, परन्तु दिन को तो उसे रोजी और परिश्रम दोनों ही चाहिए था। इन दो तीन घंटों को वह प्रतिदिन किस तरह व्यतीत

करता था, उसका दिमाग किधर-किधर दौड़ा करता था, यह यदि कोई जानना चाहे तो उसी लकड़हारे से ही जाकर पूछना चाहिए।

लकड़हारा वास्तव में बदनसीब था। १॥ मन लकड़ी का दाम उसे मुश्किल से १२ आने, बहुत आरजू-मिन्नत करने पर कहीं मिल पाते थे। यह १२ आने वह, वही पुराने दर से यानी आठ आने मन के हिसाब से ही प्राप्त करता था। लोग लकड़-हारों को गाली देते थे, कि यह लकड़हारे क्यों इतनी महँगी लकड़ी बेचते हैं, जब कि वह लकड़ी वाला बाबू तो उनके आधे मूल्य पर ही लकड़ी बेचता है! निश्चय ही लकड़ी वाले बाबू के यहाँ लोगों की भीड़ सर्व-प्रथम पहुँच जाती थी, और पहले पहल उसकी लकड़ी बिक जाने के बाद ही इन महँगी लकड़ी बेचने वाले लकड़हारों का नम्बर आता था।

लकड़हारों को अब सामाजिक जीवन व्यतीत करना मुश्किल हो रहा था। एक ओर तो वह आधे पेट भोजन प्राप्त करते थे, समय भी उनका फालतू बच रहता था दूसरी ओर था यह सार्वजनिक लांछन। उनके लिए यह सभी असह्य हो रहा था। वह न तो जी ही रहे थे और न तो मर ही रहे थे। उनके भाग्य में तो भुखमरी, दरिद्रता तथा अपमान ही लिखा था। वह कालान्तर तक इसी प्रकार बने रहने वाले थे। उनके गाल धँस गए थे, आँखें घुस गई थीं, माथे पर चिन्ता की रेखाएँ उभड़ आई थीं, दाढ़ी बढ़ आई थी, बाल बढ़े हुए थे, वस्त्र गन्दे थे और फटे जा रहे थे। यहाँ पर यह एक देश के निवासियों के एक नमूना थे। गाँव में ५० लकड़हारों का दर्द-नाक दृश्य था। मानवता को लांछना थी! कहाँ तो वह एक लकड़ी काटने वाला बाबू था, और कहाँ यह लकड़हारे! ऐ!

लकड़ी काटने वालों, तुम्हीं बताओ तुम्हारी यह दुर्दशा किसने की है ? क्या लकड़ी काटने वाले बाबू ने की है ? नहीं ! तुम भूलते हो, लकड़ी काटने वाले बाबू की मशीनों ने तुम्हारी यह दुर्दशा की है !

धीरे-धीरे लकड़हारों की संख्या कम होने लगी। वह या तो भीख माँगने के लिए परदेश चले गए, या अपने गाँव-देहात पर ही बोझ स्वरूप हो गए। धीरे-धीरे इस गाँव में कई एक लकड़ी वाले बाबू पैदा हो गए। उनकी संख्या जब १० हो गई, तो ५० लकड़हारों को गाँव-कस्बा छोड़ देना पड़ा। इसी प्रकार यदि कुल १०० गाँव या कस्बों में यह लकड़ी वाले बाबू पहुँच जाएँ, तो कुल मिलाकर ५००० लकड़हारे बेकार, भिखमगे अथवा खेती पर के बोझ स्वरूप हो जायेंगे। अब हम देखें जनता को इससे क्या लाभ हुआ ? क्या सस्ती सचमुच उनके लाभ की वस्तु थी ?

जिस कस्बे का यहाँ जिक्र हो रहा था, उसमें कुल ५०० व्यक्ति रहते थे। क्योंकि कस्बे भर में १०० मन लकड़ी की खपत होती थी, इसलिए प्रत्येक घर को प्रतिदिन औसतन १ मन लकड़ी की आवश्यकता होती थी। जब लकड़हारे वहाँ काम करते थे, तो उनके भी वहाँ करीब ऐसे ही ५० झोपड़े थे। यहाँ लकड़ी वालों का पेशा बहुत महत्वपूर्ण माना जाता था। कस्बे भर में अन्य रोजगार करने वाले व्यक्ति भी काफी थे। करीब ५० दुकानदार विविध वस्तुओं के बेचने वाले थे, १० हलवाई थे, २० कुटीर उद्योगी थे, १० लोहार बढ़ई वगैरह थे, और १० अन्य ऐसे थे जो नौकरी पेशा करते थे जैसे डाकखानों आदि में काम करते थे। कुछ वैद्य हकीम भी यहाँ थे।

पहले ५० लकड़हारों का यहाँ के सभी अन्य पेशेवर

सम्मान करते थे। क्योंकि इन लकड़हारों से कितनों को आमदनी या उनके सामानों की बिक्री होती थी। उदाहरण के तौर पर लकड़हारे अपना भोजन हलवाई के यहाँ करते थे। यदि प्रति व्यक्ति पीछे आठ आना भोजन में लगता था, तो १० हलवाई २५ रुपया प्रति रोज लकड़हारों से प्राप्त करते थे। यानी प्रति हलवाई लकड़हारों से २॥ रुपया प्राप्त करता था। इसी प्रकार लकड़हारे दुकानदारों से भी अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ खरीदते थे। सभी लकड़हारों को तेल, साबुन, कपड़ा आदि की जरूरत होती थी। निश्चय ही प्रति दुकानदार प्रतिदिन प्रत्येक लकड़हारे से आठ आना प्राप्त करता था। इसी प्रकार यह सभी दुकानदार प्रति हलवाई से भी आठ आने प्राप्त करते थे। दुकानदारों का अस्तित्व निस्सन्देह इन लकड़हारों और हलवाइयों पर ही अधिकांश रूप से निर्भर करता था।

लकड़हारे जब काम करते थे, तो लकड़ी आज की अपेक्षा मँहगी बिकती थी। लोगों को आठ आने प्रतिदिन लकड़ी का दाम देना पड़ता था। लेकिन फिर भी लोगों का काम तो चल ही जाता था। धीरे-धीरे जब लकड़ी वाले कई बाबू आ गए तो लोगों को बड़ी खुशी हुई, क्योंकि अब सभी लोगों को सस्ती लकड़ी मिलने लगी थी। सभी लकड़ी वाले बाबू ४ आने मन लकड़ी बेचकर २॥ रुपया प्रतिदिन कमा लेते थे।

हलवाई की घर वाली आज बड़ी खुश थी। उसने ४ आने में ही लकड़ी वाले बाबू के यहाँ से १ मन लकड़ी प्राप्त कर ली थी। उसके ४ आने की आज बचत हो गई थी। इस सस्तेपन के लिए वह लकड़ी वाले बाबुओं की बड़ी शुक्रगुजार थी। परन्तु जब शाम को हिसाब लगाने के लिए यह हलवाई दम्पति

बैठे तो उन्हें आश्चर्य हुआ यह जान कर कि, रोज की बनिस्बत उन्हें आज कम लाभ हुआ। ४ आने लकड़ी के दाम से जो लाभ हुआ था, सो तो था ही, इस चार आने को भी कुल लाभ में जोड़ कर, आज उस हलवाई को रोज से कम लाभ हुआ था। आज उसका माल कम बिका था। मालूम होता है अब उसको कल से कम सामानों को बनाना पड़ेगा। अब उसका सारा सामान नहीं बिक सकता। आखीर क्या कारण हुआ? क्या लोग अब पहले जितना सामान खरीदने नहीं आते? लकड़हारे तो खरीदते ही नहीं! दुकानदार भी कम खरीदने लगे हैं। हाँ वह लकड़ी वाले बाबू अवश्य ही आकर कभी-कभी खा जाते हैं और १ रुपये फेक कर चल देते हैं। परन्तु उससे क्या होता है?

पहले जब लकड़हारे थे तो प्रत्येक हलवाई लकड़हारों से २॥ रुपया प्राप्त करता था। लकड़हारों के चले जाने से उसने इस रकम पर से हाथ धो डाला। ५० दुकानदारों ने भी लकड़हारों से प्रतिदिन प्राप्त होने वाले आठ आनों को खो दिया। अब प्रत्येक हलवाई को लकड़ी वाले बाबुओं से औसतन आठ आने रोज प्राप्त होता था। और प्रत्येक दुकानदार इन बाबुओं के हाथ औसतन छः पैसे का सामान बेचता था। दुकानदारों की पहले साल भर में ५० धोतियाँ लकड़हारे खरीद लेते थे, परन्तु अब केवल १० धोतियाँ ही लकड़ी वाले बाबू खरीदते थे। इस प्रकार ४० धोती की माँग कम हो गई। प्रत्येक जुलाहे को २ धोती की कम मजूरी मिलने लगी। यद्यपि इस जुलाहे को भी ४ आने की लकड़ी के दाम की बचत हो रही थी, परन्तु इन २ धोतियों की मजूरी का भी उसे कम नुकसान नहीं हुआ था!

सस्ती आने से चीजों की खप कम हो गई ! सम्पत्तिशास्त्र तो कहता है, सस्ती आने से चीजों की खप बढ़ जाती है। क्या सम्पत्तिशास्त्र झूठा है ? मालूम होता है सम्पत्तिशास्त्र के निर्माण-कर्ताओं को इस कस्बे की इस अनोखी बात का पता नहीं था। सम्पत्ति के भरपूर उपस्थित रहते हुए भी, उनके उपभोग करने वाले कम हो गए थे। घटती हुई आमदनी से लोगों का रोजगार धीमा हो गया था। सभी वर्ग के लोगों को अपनी आवश्यकताओं में कमी करनी पड़ी थी। इसका कुप्रभाव सर्व-व्यापक रूप से पड़ा। सम्पत्ति का बहाव कम हो गया था। निश्चय ही पूँजीदारी प्रथा में सम्पत्ति का उत्पादन तो होता है, परन्तु उसका बहाव कम हो जाता है।

शीघ्र ही २० जुलाहों की जगह ५ ऐसे कारीगरों ने ले ली, जो मशीनों की सहायता से ४ गुना अधिक उत्पादन कर सकते थे। कस्बे के २० परिवार जुलाहे भी गायब हो गये। अब बच गए थे केवल ५० दुकानदार, १० हलवाई, ५ कारखानेदार, १० लोहार बढ़ई इत्यादि, १० अन्य नौकरी पेशे वाले लोग, और १० लकड़ी वाले बाबू। १० हलवाई का सामान खरीदने वाले ५० लकड़हारों और २० कुटीर उद्योगियों के भाग जाने से अब उनका सामान केवल ८५ व्यक्ति ही खरीदते थे। पहले उनका सामान १४० व्यक्ति खरीदते थे। यानी हलवाइयों के ग्राहक आधे के करीब हो गए, और इस प्रकार ५ हलवाइयों का भी गाँव से सफाया हो गया। पहले ५० दुकानदारों से उनका सामान खरीदने वाले १०० व्यक्ति थे। परन्तु अब केवल ४० व्यक्ति ही रह गए थे। निश्चय ही दुकानदारों की आधी संख्या का भी सफाया हो गया।

लकड़ी वाले बाबुओं पर इस जनसंख्या की सफाई का

बुरा असर पड़ा। कुल मिलाकर २५ दुकानदारों, १५ कुटीर उद्योगियों, और ५ हलवाइयों के गाँव छोड़ कर चले जाने का परिणाम यह निकला कि, उन बाबुओं की लकड़ी की खपत में ४५ मन की कमी आ गई। ४५ मन लकड़ी की कमी कोई मामूली बात न थी। कस्बे में कुल १०० मन तो लकड़ी ही खपती थी उसमें से भी यदि ४५ मन कम हो जाती तो लकड़ी वाले बाबुओं को मिलता ही क्या ? इस प्रकार प्रत्येक बाबू केवल ५ मन २० सेर लकड़ी बेचकर तो १ रुपए ६ आने ही कमा सकता था। फिर अपने स्तर के मुताबिक इस रुपए ६ आने में लकड़ी वाले बाबू अपना जीवन धारण नहीं कर सकते थे। अस्तु लाचार होकर, कम से कम अपना जीवन धारण करने के लिए ही, उन्होंने अपने लकड़ी की भाव ४ आने मन की बजाय ६ आने मन कर दिया। इस प्रकार प्रत्येक लकड़ी वाला बाबू ५ मन २० सेर लकड़ी बेचता हुआ, अब २ रुपए १ आने प्राप्त करने लगा। परन्तु यह रकम भी उसके लिए कम ही थी।

लकड़ी के तेज हो जाने से सर्वत्र हाहाकार मच गया। एक तो कस्बे के लोगों पर स्वयं ही आर्थिक संकट विराजमान था, दूसरे यह लकड़ी का भाव चढ़ने से उनपर और भी वज्र-पात हुआ। सभी एक स्वर से लकड़ी वाले बाबुओं को गाली देने लगे। परन्तु आखिर लकड़ी वाले बाबू भी क्या कर सकते थे ? ६ आने मन लकड़ी फिर भी गनीमत ही थी ! लकड़हारे लुटेरे तो ८ आने मन लकड़ी बेचा करते थे। यदि यह लकड़ी वाले बाबू भी चले गए तो भारी विपद् आ जायगी ! फिर से लकड़हारों को बुलाना पड़ेगा, और तब फिर से लकड़ी बहुत ज्यादा मँहगी बिकने लगेगी।

मशीन द्वारा उत्पादन करते हुए, बहुत उत्पादन के होते हुए भी खपत का न बढ़ना और उल्टे मँहगी का आने लगना, यह एक नवीन बात देखने में आई। हलवाइयों को अब लकड़ी का ज्यादा दाम देना पड़ता था, इसलिए उन्होंने अपने सामानों का दाम बढ़ा दिया। हलवाइयों के सामान मँहगे बिकने लगा। १० लुहार और बढ़ई वगैरह ने भी अपनी-अपनी मजदूरी की दर बढ़ा दी। १० अन्य नौकरी पेशा वाले व्यक्ति मंहगाई के भत्ते की माँग करने लगे। सर्वत्र मंहगाई का जमाना था। लोग कहते, मंहगाई इसलिए आई है क्योंकि सभी लोग ज्यादा से ज्यादा अब मुनाफा प्राप्त करना चाहते हैं। वह यह भी कहते, लोगों की भोग वासनाएँ बढ़ गई हैं, इसलिए उनको अब अधिक रुपए की जरूरत पड़ने लगी है, और इसी लिए सभी लोगों ने अपनी आमदनी बढ़ाने के लिए मँहगी चीजें बेचना शुरू कर दिया है। काश ! उन्हें यह मालूम हो पाता कि ५० लकड़हारों की मंहगी से मंहगी लकड़ी भी, इन लकड़ी वाले बाबुओं की सस्ती से सस्ती लकड़ी से भी सस्ती थी।

हम अपने इस कस्बे को अपने हाल पर ही छोड़कर आगे बढ़ते हैं। कस्बे की दुर्दशा पर हमारी आँखों में आँसू आ जाते हैं। हम स्वयं बेबस होते हैं, क्योंकि हम उसकी कोई सहायता नहीं कर सकते। हम जानते हैं, उसका आगे वाला भविष्य क्या होगा ! जनता के पलायन का क्रम जारी रहेगा, और यह तब तक जारी रहेगा जब तक कि समस्त कस्बा वीरान नहीं हो जायगा। इसी प्रकार यदि हम समस्त विश्व को कस्बे का रूप दे दें, तो समस्त संसार वीरान हो जायगा। फिर संसार की घोर जड़ता में केवल जड़ मशीनें मात्र ही रह जायेंगी !

कारखानेदारी की प्रथा में सस्ती तो आती है, परन्तु उसके शीघ्र ही बाद उतनी ही अधिक मात्रा में बेकारी और मंहगी भी आती है। जनता की क्रय शक्ति के घटने पर मंहगी का आना स्वाभाविक है। हमें तब उत्पादन का रोना नहीं रहता, रोना रहता है तो केवल जनता की घटी हुई क्रय शक्ति का। क्यों नहीं इस जनता की क्रयशक्ति को बढ़ाने के लिए सरकार और कारखानेदार बेकार व अर्धबेकार जनता को काम या खैरात प्रदान करते? निस्सन्देह दोनों ही बातों में उपरोक्त दोनों ही वर्ग नितांत असमर्थता का अनुभव करते हैं। इसी-लिए तो कहा जाता है "तुम सम्पत्ति का उत्पादन तो कर सकते हो, परन्तु आपस में बाँट नहीं सकते।" कारखानेदारों और सरकार दोनों की ही अपनी अपनी अलग भोग वासनाएँ होती हैं। कोई भी अपना धन दूसरे निठल्लों को मुफ्त में देना नहीं चाहता मुफ्त का खाने वाला भी अपनी नैतिकता से च्युत हो जाता है।

मँहगी उस समय आती है जब उपभोग सामग्रियों की आमद या तैयारी कम हो जाती है, और उसके उपभोक्ता ज्यादा हो जाते हैं। ऐसी हालत में चीजों का मूल्य चढ़ जाता है, और लाभ उठाने वाले लाभ उठा लेते हैं। इस प्रकार महँगी यदि माल की तगिश के कारण पैदा हुई हो, तो उससे हम सभी को निस्स-न्देह कष्ट उठाना ही पड़ता है। इसके साथ ही साथ में यह भी न भूलना चाहिए कि, महँगी और सस्ती का विषम झोंका आधुनिक युग के कारखानेदारी की प्रथा के अन्तर्गत ही आता है। कुटीर उद्योग की व्यवस्था में ऐसा विषम झोंका कभी नहीं आने पाता। लोगों को अत्यधिक लाभ या हानि तभी होती है, जब उन्हें ऐसा विषम झोंका प्राप्त होता रहता है। कुटीर उद्योग

में तो महंगी के होते हुए भी किसी को अत्यधिक लाभ उठाने का मौका नहीं मिलता। कुटीर उद्योग में जीवन व मूल्य का एक निश्चित व निश्चल प्रवाह सा रहता है।

मशीनों के स्थान पर कुटीर उद्योग की स्थापना के कारण सर्वप्रथम महंगी आती है। परन्तु इस महंगी का प्रभाव जनता में विशेष वास्तविक रूप से नहीं पड़ता, केवल दिखाऊ ही पड़ता है। कुटीर उद्योगियों के आ जाने से अन्य वस्तुओं की खपत बढ़ जातो है, जिससे अन्य वर्गों के लोगों की आमदनी बढ़ जातो है। इस प्रकार सर्वत्र आर्थिक सन्तुलन कायम रहता है और महँगी का बुरा असर किसी पर भी नहीं पड़ता। सभी व्यक्ति आपसी सहयोग से जीवन गुजारा अच्छी तरह कर लेते हैं और सात्विक जीवन व्यतीत करते हैं। उनके दिल दिमाग, शान्त व सुस्थिर रहते हैं। भोगों की उनमें कामना नहीं होती। वे उच्छृंखल नहीं हो पाते। जीवन उनके लिए केवल कर्म करने, रोजी कमाने, तथा दैनिक दिनचर्या का पालन करने के लिए ही हो जाता है। निस्सन्देह सृष्टि बड़ी आसानी से गुजरती जाती है। सम्पत्ति का पूर्ण उपभोग सभी व्यक्तियों को मिलता है। सम्पत्ति का नित्य उत्पादन लोगों को सम्पत्तिवान बनाता है। संक्रमणकालीन स्थितियाँ तो कभी नहीं आने पातीं।

हम अब जरा दूसरी ओर अपना मुख मोड़ते हैं। हमने कहा है कि, खेतों पर दबाव कम होने से काश्तकारी चमक जायगी। हमने यह भी कहा है कि, यह तभी सम्भव है, जब कुटीर उद्योगियों को प्रोत्साहन दिया जाय और समस्त उत्पादन उन्हीं के हाथों में दे दिया जाय। थोड़ी देर के लिए यदि हम इस बात को सत्य मान लें और ऐसी व्यवस्था को लागू करने

के लिए तैयार हो जायँ, तो ऐसी कल्पना मात्र से हमें हर्ष व रोमांच हो आता है और चेहरे पर लालिमा दौड़ पड़ती है ! कुटीर-उद्योगी स्थापना की जिम्मेदारी हमारे ही ऊपर आ जाती है ! अच्छे या बुरे नतीजे के जिम्मेदार तो अब हमी होने वाले हैं ! यह हमारा प्रयोग है ! मानव की आवश्यकता व उसकी आर्थिक स्थिति से खेलवाड़ नहीं किया जा सकता। हमें अपने प्रयोग के सफल होने का पूर्ण विश्वास है। इसलिए हमें इस प्रयोग को करने के लिए दिलको कड़ाकर, पूर्ण आत्म-विश्वास के साथ खड़े हो जाना चाहिए। हम यह देखना चाहते हैं कि, हमारे प्रयोग में कौन कौन सी कठिनाइयाँ, अड़चनें या कमजोरियाँ आ सकती हैं। यदि हम इन सभी बातों से बच निकले तो फिर हमारी विजय ध्रुव निश्चित है।

कारखानेदार ६२०,००० मजदूरों को मजदूरी के रूप में ६८ करोड़ ४० लाख रुपया देते हैं और स्वय भी माल की तैयारी के फलस्वरूप ४५ करोड़ ६० लाख का लाभ उठाते हैं। इस प्रकार १४४ करोड़ रुपए का लाभ कुल १ करोड़ ५७ लाख बुनकरों को ४१८ करोड़ ८० लाख गज कपड़ा बुनने पर १ रुपया ६ पैसे प्रतिगज की दर से मिल जायगा। यदि मिल मालिक के सामानों की कीमत जितनी होती है, उतना ही खर्च कुटीर उद्योग में भी सम्मिलित रूप से पड़ता हुआ मान लें, तो सभी बुनकर ३२१ करोड़ ६० लाख के माल को तैयार कर ४६५ करोड़ ६० लाख के मूल्य पर बेचेंगे और सम्मिलित रूप से १४४ करोड़ रुपया लाभ करेंगे। इस लाभ से ही वह अपनी रोजी चला सकेंगे। हमने कारखानेदारों की स्थिर पूँजी ६१ करोड़ ५० लाख का अभी तक कोई जिक्र नहीं किया है। हो सकता है कारखानेदारों को ५० लाख रुपया मुआविजा

देकर ६१ करोड़ रुपया, १ करोड़ ५७ लाख बुनकरों में बाँट देना पड़े। हिन्दुस्तान में कपड़े की कुल ६६३ फैक्टरियाँ हैं। यदि ५० लाख मुआविजा इनके मालिकों में बाँटा जाय, तो औसतन प्रति फैक्टरी के मालिकों को करीब ७५४१ रुपए ८ आने प्राप्त होंगे। ९१ करोड़ रुपया तो वास्तव में इन्हीं बुनकरों का ही था, जिसे फैक्टरी वालों ने इनका काम छीनकर शोषण कर लिया था। अस्तु यदि यह रुपया सभी बुनकरों में समान रूप से बाँट दिया जाय तो बुरी बात नहीं होगी! इस प्रकार इस स्थिर पूँजी से प्रत्येक बुनकर को करीब ५८ रुपए की सहायता मात्र मिल सकेगी। अब हमें यह देखना है कि, इन बुनकरों में से प्रत्येक को कितना लाभ होता है और प्रत्येक को कम से कम लागत के रुपयों की कितनी आवश्यकता पड़ती है।

१४४ करोड़ का लाभ १ करोड़ ५७ लाख बुनकरों को होता है। यानी प्रत्येक बुनकर को करीब ९२ रुपए साल भर में मिलता है, अर्थात् १ महीनें में ७ रुपये ८ आने। ७ रु० ८ आ० में एक महीने का गुजर-बसर कर सकना, यह तो जरा टेढ़ी खीर है। आर्थिक सन्तुलन की अवस्था प्राप्त करने के लिए उसे कोई न कोई उपाय तो करना ही पड़ेगा। ऐसा हो सकने का दो ही उपाय है। एक, या तो बुनकर कपड़ों का उत्पादन बढ़ावे, या दूसरे, वह कपड़ों का मूल्य-दर बढ़ा दे। अथवा वह दोनों ही उपायों को काम में ला सकता है। फिर भी इतना करने पर भी उसकी स्थिति स्वावलंबन की आ जाय, तब की बात है!

निश्चय ही हम यह देख चुके हैं कि, बुनकर अपने उत्पादन को ड्योढ़ा तो अवश्य ही आसानी से कर सकता है।

इसलिए पहले जब कि प्रत्येक बुनकर २७३ गज कपड़ा बुनता था, अब वह ४१० गज कपड़ा बुनने लगेगा। पहले जो उसे लाभ होता था उसका ड्योढ़ा लाभ अब मिलने लगेगा। यानी प्रत्येक बुनकर एक महीने में अब, पुराने बाजार भाव से ही ११ रु० ४ आ० लाभ करने लगेगा। और यदि बाजार भाव को भी वह ड्योढ़ा कर दे, तो उसे यही लाभ १६ रु० १४ आने का होने लग जायगा। उसे अब १६ रु० १४ आ० में ही अपना गुजारा महीने भर करना पड़ेगा। हिन्दुस्तान में तो आज कितनों को इससे भी कम खर्च में ही गुजर-बसर करना पड़ता है। अस्तु यह व्यवस्था बुनकरों की आर्थिक दृढ़ता की सूचक कही जा सकती है।

हमने देखा है कि, बुनकरों की स्थाई पूँजी, मिल मालिकों से प्राप्त, ५८ रुपए थी। हम यह भी जानते हैं कि ४१८ करोड़ ८० लाख गज कपड़ा तैयार करने में मिल मालिकों को ३२१ करोड़ ६० लाख रुपए की कीमत का सामान जुटाना पड़ा था। इस हिसाब से प्रत्येक बुनकर को भी ४१० गज कपड़ा बुनने के लिए ३१५ रुपयों की आवश्यकता पड़ेगी। यदि किसी तरह बुनकर अपना काम ५८ रुपयों के साथ चला ले जाय, तब तो कोई बात नहीं है, परन्तु यदि वह न चला सका तो उसे कर्ज या दूसरों से सहायता लेने की आवश्यकता पड़ जायगी।

उपरोक्त व्यवस्था के साथ ही एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण प्रश्न हमारे सामने आ जाता है। वह यह है कि, क्या इतना भर कर देने से, यानी ड्योढ़ा उत्पादन और ड्योढ़ा दाम बढ़ा देने से जनता को कुछ लाभ हुआ? कपड़े का दाम बढ़ाकर क्या हम जनता की क्रय शक्ति को भी बढ़ा सकते हैं? यही तो हमें अब देखना है—इस प्रकार १ करोड़ ५७ लाख बुन-

करों को काम देने से क्या क्या गुल खिलते हैं ! सच तो यह है कि, बुनकर का भविष्य भी तभी अच्छा हो सकता है, जब अनाज का भाव कम हो। अनाज का भाव कम होने से जनता की क्रय-शक्ति भी निःसन्देह बढ़ सकती है। अस्तु हमें सर्व-प्रथम यही देखना है कि क्या कुटीर उद्योग की स्थापना से अनाजों का भाव कम हो सकता है या नहीं ?

अनाज का भाव कम होने के लिए अन्न की उपज में अधिकता होनी चाहिए। हम यह विस्तार पूर्वक बता चुके हैं, और अभी भी हम बताते हैं कि, अन्न की अधिक उपज के लिए ही यह कुटीर उद्योग की स्थापना की गई है। इसलिए कुटीर उद्योग की स्थापना के साथ ही साथ अन्न का उत्पादन भी बढ़ना अवश्यम्भावी है। काश्तकारी इन बुनकरों का निर्माण कर देने मात्र से ही बहुत कुछ चमक जायगी।

हमने यह देखा है कि यदि खेती पर से आधा बोझ कम कर दिया जाय, तो प्रति किसान दूध, घी इत्यादि की अतिरिक्त आमदनी के साथ साथ २३ मन २६ सेर अनाज बाजार में बेच सकता है। इसके साथ हमें यह भी ख्याल रखना चाहिए कि चरखा यानी सूत कातना भी, कुटीर उद्योग के साथ ही एक राष्ट्रीय व्यवसाय हो जायगा। प्रत्येक असहाय, दीन, अबला भी सूत कात कर अपना पेट भर सकेगी। किसान भी अपने खाली समय में सूत काता करेगा, जिससे उसकी अतिरिक्त आमदनी और भी अधिक बढ़ती ही जायगी। यदि वह ५ सेर के हिसाब से गेहूँ अब बेचेगा तो उसे १८६ रु० का लाभ होगा। और तब १ रु० १० आ० १ पै० प्रति गज के हिसाब से २० रु० का १३ गज कपड़ा खरीद कर भी उसके पास १६६ रु० शेष रह जायेंगे। ऐसी अवस्था में वह २० गज

कपड़ा भी आसानी से खरीद सकता है, भले ही कपड़ा चाहे जितना भी महँगा क्यों न हो! वास्तव में यही तो आश्चर्य है कि, कुटीर उद्योग की स्थापना मात्र से आश्चर्यजनक प्रगति जनता की क्रय-शक्ति में, तत्काल ही नजर आने लगती है।

हमें यह अविश्वास नहीं करना चाहिए कि शीघ्र ही किसान १ रुपए का १० सेर या १५ सेर गेहूँ भी बेचने लग सकता है। एक जमाने में तो वह इस प्रकार बेचता भी था। अब जब कि ५ सेर का भाव अनाज का हो गया है, तो बुनकर को ढ़ाई गुना अपेक्षाकृत पहले से कम दाम में अनाज खरीदना पड़ता है। ६ मन अन्न खरीदने के लिए उसे केवल ७२ रु० की आवश्यकता पड़ती है, यानी महीने के ३० सेर खरीदने के लिए ६ रु० की आवश्यकता होती है। हमने देखा है, बुनकर की महीने की आमदनी या लाभ १६ रु० १४ आ० है, इसलिए अब वह ६ रु० का अनाज खरीद कर १० रु० १४ आ० बचा लेता है।

बुनकरों का कुल ६२८ करोड़ २० लाख गज कपड़ा, १ रु० १० आ० १ पै० की दर से प्रति व्यक्ति पीछे १८ गज की खपत हो जाने की हमें उम्मीद करनी चाहिए, जब कि प्रत्येक भारतीय के तन पर सफेद व स्वच्छ वस्त्र दिखलाई देने लगेगा। १२-१३ करोड़ की आबादी वाला खेतिहर वर्ग तो आसानी से २४० करोड़ गज से २६० करोड़ गज तक कपड़ा खरीद ही लेगा। इसके अतिरिक्त कुटीर उद्योगी अवस्था में जब कि सभी व्यक्ति उपयोगी काम करते रहेंगे, तो बाकी बचा हुआ कपड़ा खरीदने में उन्हें कोई अड़चन नहीं रहेगी। जनता की क्रय-शक्ति निश्चय ही व्यापक रूप से बढ़ेगी। किसान और कुटीर उद्योगी निरंतर अधिकाधिक उन्नति करते जायेंगे।

इसी प्रकार हम आटा बनाने वाली ६४ मिलों, चावल कूटने

वाली १६ मिलों, साबुन बनाने वाली ४५ फैक्टरियों आदि अनेकों काम करने वाली मशीनों को बन्द कर, उन कामों को हाथ द्वारा काम करने वालों को देकर आसानी से कुटीर उद्योग की स्थापना के निमित्त. अधिकाधिक लोगों को खेती से खींचकर इन कामों व धन्धों में लगा सकते हैं। जूते बनाना, तेल पेरना, बीड़ी-सिगरेट बनाना, बर्तन बनाना, दाल बनाना आदि अनेकों ऐसे कामों का कुटीर-उद्योगी-करण निरंतर होता ही जायगा। यह क्रम तब तक चालू रहेगा, जब तक कि कुटीर उद्योगों और खेती के धंधे का आपसी सन्तुलन कायम नहीं हो जायगा।

हमें कुटीर उद्योग की स्थापना के कारण बढ़े हुए मूल्य से नहीं घबड़ाना चाहिए। घबड़ाना तो चाहिए हमें क्रय-शक्ति के निरंतर क्षीण होते जाने से ! मशीन की व्यवस्था में क्रय-शक्ति निरंतर, सस्ती के अनुपात में भी, तेजी से घटती जाती है। परन्तु इसके विपरीत कुटीर उद्योग में मंहगी होने के अनुपात में जनता की क्रयशक्ति अधिक तेजी से बढ़ती जाती है। अस्तु, कुटीर उद्योग की अवस्था में ही मानव ज्यादा आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होने वाला है ! कुटीर उद्योग की स्थापना किसी भी समय से, किसी भी मात्रा में, प्रारम्भ की जा सकती है। उसके लिए मूहूर्त दिखाने की आवश्यकता नहीं ! शुभस्य शीघ्रम्। कुटीर उद्योग की स्थापना से इसके पीछे इतना जबर्दस्त और शीघ्र परिवर्तन और उन्नति होती है कि, मानव यह जान भी नहीं पाता कि कब और किस तरह उसकी आर्थिक स्थिति सन्तुलन का रूप धारण करती जा रही है। क्या मानव कुटीर उद्योग की स्थापना कर अपने से अपना भला करेगा ? मानव और मशीन का सम्बन्ध अन्ततः व वस्तुतः नीति विरुद्ध व दुराचार पूर्ण है। उसे शीघ्र से शीघ्र इस संबन्ध को विच्छेद कर लेना चाहिए।

उपसंहार

यदि हम इतिहास के विशाल लम्बे समय को देखें तो हमारा यह वर्तमान—जिस काल में हम रहते हैं—उसके सामने एक नाचीज सा नजर आएगा। इतिहास के मानव ने जितने भोगों को भोगा है, उसके सामने यह वर्तमान भोग एक तुच्छ सा प्रतीत होता है। समय के विशाल सागर में हमारा वर्तमान समय एक छोटी बूँद का भी हजारवाँ हिस्सा मालूम होता है। क्या हम इसी वर्तमान व स्वभोग के लिए इतने चिंतित हैं? हमें तो उपरोक्त वाक्यों के साथ-साथ वैराग्य का अनुभव होने लगता है। कितना नश्वर है यह संसार!

शायद हम भूलते हैं, 'वर्तमान' ने ही तो भूत का निर्माण किया। यदि वर्तमान अच्छा हो, तो भूत भी अच्छा कहा जा सकता है। इसलिए वर्तमान का महत्व सर्वोपरि है। जिस वर्तमान में हम रहते हैं, उसमें सुख और दुःख दोनों ही हमें भोगने पड़ते हैं। कभी लम्बे काल तक हमें सुख ही सुख मिलता है, तो कभी लम्बे काल तक हमें दुःख ही दुःख देखना पड़ता है। आज तो हम दुःखी जमाने से गुजर रहे हैं! आज का युग मशीन-युग कहा जा सकता है। इस मशीन युग में घोर अन्धकार हमारे सामने आता है। इस घोर अन्धकार की तुलना हम घोर कालिमा से कर सकते हैं। यदि इसी 'कालिमा' को 'कलियुग' कहा जाय तो यह कोई बहुत ज्यादा

अपभ्रन्श नहीं होगा। अस्तु आज का जमाना कलियुग है। कलियुग में मानव सिवा उत्पीड़न के और कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकता।

यदि मशीन को हटा दिया जाय और कुटीर उद्योग की स्थापना की जाय, तो हमारे सामने प्रकाश आ जाता है। समाज का आर्थिक सन्तुलन कायम हो जाता है और सर्वत्र खुशहाली का साम्राज्य होता है। ऐसी हालत में सर्वत्र सत्य-व्यवहार की स्थापना हो जाती है और इस युग का नाम 'सत्-युग' हो जाता है। सत्-युग में ही 'राम राज्य' होता है। अस्तु यदि हम कलियुग का नाश और सत्-युग का प्रादुर्भाव चाहते हैं, तो हमें मशीनों का नियन्त्रण और कुटीर उद्योग की स्थापना करनी चाहिए। फिर भी यदि हम ऐसा करने में असमर्थ हों, तो हमें अपने वर्तमान कष्टों को सहन करते हुए धीरज रखना चाहिए। हमें यह विश्वास कर कम से कम सन्तोष अवश्य करना चाहिए कि, कलियुग के शीघ्र बाद ही सत्-युग अपने आप आ जाता है।

मैं उस पाश्चात्य इतिहासकार से पूर्णतया सहमत हूँ, जिसने बड़े साहसपूर्ण शब्दों में यह घोषित किया है कि, वर्तमान मशीन युग की समाप्ति बीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण के सम सामयिक होगी और नयी शताब्दी का उदय-काल आत्मिक उत्कर्ष का प्रारम्भिक काल होगा। मशीन की सार्वभौम सत्ता के अस्तंगत होते ही, मनुष्य पुनः उस सुप्रशस्त आत्म कल्याण के मार्ग पर अग्रसर हो जायगा, जिसपर चलकर संसार की महान् आत्माओं ने मोक्ष और निवृत्ति प्राप्त की थी। आज के पदार्थवादी युग में जो शीर्ष-स्थान अमेरिका व अन्य पश्चिमी देशों को प्राप्त है, वही स्थान अगामी युग में भारत, चीन, मिश्र प्रभृति देशों को प्राप्त होगा। —डा० राधाकृष्णन् (नवनीत, हिंदी डाइजेस्ट, जनवरी १९५४, पृ० ४)

वास्तव में यह एक हर्ष की बात है कि, संहार की जिस स्पर्धा में पश्चिम की सैनिक शक्तियाँ प्राण-पण से जुटी हुई हैं, उससे हमारा देश अभी तक अछूता है। मैं चाहता हूँ—भविष्य में भी संहारक सामग्री के उत्पादन में अपनी शक्ति नष्ट करने के बजाय, भारतवर्ष के लिए यही अधिक गौरवास्पद होगा कि वह किसी महान् आदर्श को अक्षुण्णता के हेतु अपने को होम कर दे।—डा० राधाकृष्णन् (नवनीत, हिंदी डाइजेस्ट, जनवरी १९५४, पृ० ६)

प्रथम खण्ड समाप्त

मानव और मशीन

(MAN AND MACHINE)

द्वितीय खण्ड

पढ़िए

'रुपए की कहानी'

अतीव रोचक और मनोरंजक ।